आनंद सभा

सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर

पाठ्य पुस्तक (कक्षा १२)

राज्य आनंद संस्थान, आनंद विभाग, मध्य प्रदेश शासन

आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर
पाठ्य पुस्तक (कक्षा १२)

पहला संस्करण मई २०२२

राज्य आनंद संस्थान
आनंद विभाग, मध्य प्रदेश शासन
माध्यमिक शिक्षा मण्डल परिसर
शिवाजी नगर, भोपाल – ४६२०११

www.anandsansthanmp/in
anandsansthan@gmail.com
+91 755 255 3434

संदर्भ

- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (पाठ्यपुस्तकें)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (अभ्यास पुस्तिकाएं)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (शिक्षक मार्गदर्शिकाएं)
- आनंद सभा – सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों से आनंद की ओर (शिक्षकों, अभिभावकों के लिए तैयारी हेतु शिविर) – ऑनलाइन एवम् प्रत्यक्ष

हमारे अन्य कार्यक्रम

- अल्पविराम
- आनंद क्लब
- आनंद सभा
- आनंद उत्सव (ख़ुशी का त्यौहार)
- आनंदम केंद्र
- आनंद कैलेंडर
- आनंद शिविर
- ऑनलाइन आनंद कोर्स (अलोहा)
- आनंद फ़ेलोशिप

ज्ञान के सार्वभौमीकरण की भावना से हम यह पाठ्य सामग्री सभी को सर्वशुभ हेतु बिना शर्त उपलब्ध कराने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकाशन की विषयवस्तु यू एच वी टीम (uhv.org.in) के सहयोग के साथ विकसित की गई है। यह सामग्री औपचारिक (मुख्य धारा एवम वैकल्पिक) और अनौपचारिक, दोनो शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की जा सकती है।

अतएव यह कार्य CCO 1.0 के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।
लाइसेंस की प्रति देखने हेतु, कृपया देखें - https://creativecommons.org/publicdomain/zero/1.0

राष्ट्रगान

जन–गण–मन–अधिनायक जय हे
भारत–भाग्य–विधाता
पंजाब–सिन्धु–गुजरात–मराठा
द्राविड़–उत्कल–बंग
विंध्य–हिमाचल–यमुना–गंगा
उच्छल–जलधि–तरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष मागे,
गाहे तव जय–गाथा।
जन–गण–मंगल–दायक जय हे
भारत–भाग्य–विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।

(हर देश का अपना एक विशिष्ट झंडा और राष्ट्रगान होता है। ''तिरंगा झंडा'' भारतवर्ष का राष्ट्रध्वज है और ''जनगणमन'' राष्ट्रगान। राष्ट्रध्वज में ऊपर की पट्टी केसरिया रंग की और नीचे की हरे रंग की होती है। बीच की सफेद पट्टी के बीचों बीच २४ शलाकाओं का नीले रंग में गोल-चक्र होता है। केसरिया रंग त्याग का, सफेद शांति का और हरा रंग प्रकृति की सुन्दरता का प्रतीक है। चक्र का स्वरूप अशोक की सारनाथ-स्थित सिंहमुद्रा में अंकित चक्र की भाँति है यह चक्र सत्य और सब धर्मों का प्रतीक है।

राष्ट्रगान की रचना गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने की थी। इसमें संपूर्ण देश के लिए मंगल-कामना है। राष्ट्रगान और राष्ट्रध्वज का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है। जब राष्ट्रगान गाया जाये या उसकी धुन बजाई जाये अथवा राष्ट्रध्वज फहराया जाये, तब हमें सावधान की स्थिति में खड़े होकर इसे सम्मान देना चाहिए।)

विषयसूची

पुस्तक का एक परिचयात्मक अवलोकन एवं पाठक के लिये एक संदेश 13

अध्याय-1 18

मूल्य शिक्षा को समझना 18

मूल्य शिक्षा 18

कौशल-शिक्षा 18

मूल्य एवं कौशल की परस्पर- पूरकता 18

कौशल से अधिक मूल्य की वरीयता 19

मूल्यशिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय का महत्व 19

मूल्यशिक्षा के लिये दिशानिर्देश 19

मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु 20

मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया: स्व-अन्वेषण 20

अध्याय-2 22

स्व-अन्वेषण - मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया 22

स्व-अन्वेषण : स्वयं में संवाद 22

स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु 23

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया 23

सहज स्वीकृति - सही समझ का आधार 23

स्व-अन्वेषण के प्रमुख आशय 24

अध्याय-3 26

मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति 26

मानव की मूल चाहना- सुख समृद्धि और उसकी निरंतरता 26

मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये आधारभूत आवश्यकतायें 26

मानव चेतना का विकास.....27

समग्र विकास.....27

शिक्षा-संस्कार की भूमिका.....28

अध्याय_4 30

सुख और समृद्धि को समझना- इनकी निरंतरता एवं पूर्ति के लिये कार्यक्रम 30

सुख के अर्थ को समझना.....30

निरंतर सुख के लिये कार्यक्रम.....30

समृद्धि के अर्थ को समझना.....30

सुख की प्रचलित मान्यताओं पर एक दृष्टि.....31

सुख के लिये कार्यक्रम.....32

कार्यक्रम का सहज निष्कर्ष.....33

अध्याय-5 34

मानव को स्वयं और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में समझना 34

'स्वयं(मैं)' और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में मानव.....35

'स्वयं(मैं)', चैतन्य इकाई और शरीर, जड़ इकाई के रूप में.....39

अध्याय-6 42

स्वयं में व्यवस्था- 'स्वयं(मैं)' को समझना 42

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें.....42

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें निरंतर हैं.....43

क्रियाओं का संयुक्त रूप - कल्पनाशीलता.....43

कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति व्यवहार और कार्य में.....43

कल्पनाशीलता की स्थिति.....44

कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत- मान्यता, संवेदना और सहज-स्वीकृति.....45

तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम – स्वतंत्रता या परतंत्रता?.....46

आगे का मार्ग - स्व-अन्वेषण के माध्यम से 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था सुनिश्चित करना.....47

'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को विस्तार से समझना 47

अध्याय-7 49

'शरीर' के साथ 'स्वयं(मैं)' की व्यवस्था - स्वास्थ्य और संयम को समझना 49

'स्वयं(मैं)' दृष्टा-कर्ता-भोक्ता के रूप में ('शरीर' एक यंत्र के रूप में) 49

'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित प्रणाली और 'स्वयं(मैं)' के एक यंत्र के रूप में 49

'स्वयं(मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था 50

संयम एवं स्वास्थ्य के लिये कार्यक्रम 50

'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच व्यवस्था के प्रकाश में समृद्धि की पुनरावृत्ति 50

मेरे 'स्वयं(मैं)' और मेरे 'शरीर' के प्रति मेरी भागीदारी (मूल्य).....51

अध्याय-8 52

परिवार मे व्यवस्था- मानव-मानव संबंधों में मूल्य को समझना 52

मानव-मानव परस्परता में जीने की मूल इकाई-परिवार 53

संबंधों को समझना.....53

संबंधों में सहज-स्वीकार्य भाव (मूल्य) – नौ हैं और उन भावों के निर्वाह और इनके सही मूल्यांकन से उभय-सुख होता है। 53

संबंध के बारे में महत्वपूर्ण बिन्दु.....54

मानव-मानव संबंधों में आधार मूल्य- विश्वास 54

विश्वास से संबंधित मुख्य बिंदु.....55

मानव-मानव संबंधों में मूल्य- सम्मान.....55

मानव-मानव संबंधों में मूल्य- स्नेह, ममता और वात्सल्य 57

स्नेह.....57

ममता और वात्सल्य.....57

स्नेह, ममता और वात्सल्य से संबंधित मूल बिन्दु:.....58

मानव-मानव संबंधों में मूल्य-श्रद्धा, गौरव और कृतज्ञता 58

श्रद्धा 58

गौरव और कृतज्ञता 58

श्रद्धा, कृतज्ञता और गौरव से संबंधित मूल बिन्दु: 58

मानव-मानव संबंधों में पूर्ण मूल्य-प्रेम 59

प्रेम- पूर्ण मूल्य 59

न्याय की समझ 60

प्रेम एवं न्याय की समझ से संबंधित मूल बिन्दु: 60

अध्याय-9 61

समाज में व्यवस्था - सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को समझना 61

शिक्षा-संस्कार 62

स्वास्थ्य और संयम 63

उत्पादन-कार्य 64

न्याय-सुरक्षा 65

विनिमय- कोष 65

मानवीय समाज में व्यवसाय 66

सार्वभौम मानवीय व्यवस्था- परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक 66

विषय क्षेत्र -परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था-सार्वभौम मानवीय व्यवस्था 66

सही समझ के सहज निष्कर्ष 67

समाज में मेरी भागीदारी (मूल्य) 68

अध्याय-10 69

प्रकृति में व्यवस्था – अंतर्संबंध, स्व-नियंत्रण और परस्पर पूरकता को समझना 69

चारों अवस्थाओं को समझना 70

ज्ञान अवस्था के लिये शिक्षा-संस्कार का महत्व 73

प्रकृति में प्रचुरता 74

अध्याय-11 76

अस्तित्व में व्यवस्था - विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझना 76

'अस्तित्व'- व्यापक (शून्य) में इकाइयाँ....77

शून्य और इकाइयों को समझना 77

संपृक्तता को समझना....78

अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में - शून्य में संपृक्त इकाइयाँ 80

जड़ और चैतन्य इकाइयाँ 81

जड़ इकाइयों का वर्गीकरण 82

चैतन्य-इकाइयों का वर्गीकरण जड़-इकाइयों के साहचर्य में....83

अस्तित्वगत दृष्टि में विकास 84

विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व की अभिव्यक्ति 86

अस्तित्व में मानव की भागीदारी को समझना....88

समझ का सहज प्रतिफल 92

अस्तित्व में मेरी भागीदारी (मूल्य)....93

मुख्य बिंदु....94

अपनी समझ को जाँचे 95

अध्याय-12 98

सार्वभौम मानवीय मूल्य और नैतिक मानवीय आचरण का आधार 98

मानव के जीने के विभिन्न आयामों में मूल्य....99

सही समझ का सहज प्रतिफल सार्वभौम मूल्य....99

नैतिक मानवीय आचरण की निश्चितता.... 100

मानवीय चेतना का विकास 103

मूल्य आधारित जीने का आशय 104

अध्याय-13 107

सही समझ के प्रकाश में व्यावसायिक नैतिकता 107

पुनरावृत्ति..... 107

परिचय..... 107

व्यवसाय - समग्र मानव लक्ष्य के संदर्भ में 108

नैतिक योग्यता सुनिश्चित करना..... 109

व्यावसायिक नैतिकता के मुद्दे- वर्तमान परिदृश्य..... 111

व्यावसायिक नैतिकता को बढ़ावा देने के प्रचलित प्रयास - उनकी अपर्याप्तता 112

वर्तमान वैश्विक दृष्टि में अंतर्निहित विरोधाभास और दुविधायें एवं उनका समाधान..... 114

मुख्य बिंदु..... 115

अपनी समझ को जाँच 116

अध्याय-14 118

सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की ओर समग्र विकास 118

पुनरावृत्ति..... 118

समग्र मानवीय लक्ष्य को समझना..... 118

सार्वभौम मानवीय व्यवस्था और समग्र विकास के लिये दृष्टि..... 120

मानवीय परंपरा के लिये मार्ग प्रशस्त करना..... 120

मानवीय शिक्षा..... 121

मानवीय संविधान..... 122

महत्वपूर्ण बिन्दु 124

अपनी समझ को जाँचे 124

अध्याय-15 126

समग्र प्रौद्योगिकियों, उत्पादन व्यवस्थाओं एवं प्रबंधन मॉडलों के लिये दृष्टि 126

पुनरावृत्ति..... 126

परिचय..... 126

मूल्यांकन के लिये समग्रात्मक मापदंड..... 127

प्रौद्योगिकी के लिये मापदंड 127

उत्पादन व्यवस्थाओं के लिये मापदंड 128

प्रबंधन मॉडलों के लिये मापदंड 128

प्रचलित व्यवस्थाओं का विवेचनात्मक मूल्यांकन 129

प्राकृतिक व्यवस्थाओं एवं पारंपरिक अभ्यासों से सीख 130

पारंपरिक प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्थाओं के कुछ विशिष्ट उदाहरण 131

समग्र सामुदायिक मॉडल को समझना– सभी स्तरों पर व्यवस्था के लिये कार्य करना 131

केस-स्टडीज के विषय 132

मुख्य बिंदु 134

अपनी समझ को जाँचें 134

अध्याय-16 137

सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की ओर यात्रा- आगे का मार्ग 137

पुनरावृत्ति 137

मुख्य केन्द्रीय संदेश 137

स्व-अन्वेषण की आवश्यकता का अवलोकन 139

विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था को समझने में सहयोग 139

क्या यह संक्रमण बहुत कठिन है? 144

सारांश 145

परिशिष्ट A12-1: सार्वभौम मानव मूल्य 146

शब्दकोष 152

पुस्तक का एक परिचयात्मक अवलोकन एवं पाठक के लिये एक संदेश

स्नेही विद्यार्थीगण, हम इस अभिनव और महत्वपूर्ण प्रयास: "आनंद सभा– सार्वभौमिक मानवीय मूल्य से आनंद की ओर" के पाठ्यक्रम को पढ़ने व समझने के लिए आपकी रुचि और प्रतिबद्धता की सराहना करते हैं।

हम बच्चे, बड़े, बूढ़े सभी मानव सुखी रहना चाहते हैं; निरंतर सुखी रहना चाहते हैं| इसे हममे में से हर एक अपने में जांच कर देख सकते हैं| इस निरतर सुख को ही आनंद कहा है| नन्द शब्द का अर्थ है प्रसन्न रहना, सुखी रहना, आनंद का अर्थ है- सुख के अभाव का अभाव अर्थात निरंतर सुख
आनंद = अ + अ + नंद
= अभाव + अभाव + सुख
= सुख के अभाव का अभाव = निरंतर सुख
हम आनंद पूर्वक, निरंतर सुख पूर्वक रहना चाहते हैं| इसी के लिए हमारे जिन्दगी के सारे प्रयास हैं|

सुख के बारे आज की प्रचलित सोच यह है कि सुख मिलता है

- अनुकूल संवेदना के आस्वादन से
- दूसरे से भाव पाकर
- सुविधा से, उसके भोग से

इसलिए प्रचलित कार्यक्रम सुविधा-संग्रह (असीमित, किसी भी तरह) के रूप में दिखाई देता है! परन्तु, इन आधार पर कितना भी प्रयास किया जाय, कितनी भी उपलब्धि हो, इससे आनंद, सुख की निरंतरता, को सुनिश्चित नहीं किया जा पाता |

इस सोच के में मूल में मान्यता है कि मनाव केवल शरीर है तथा सुख शरीर से, बाहर से पायी जाने वाली कोई वस्तु |

जबकि वास्तविकता को सीधा सीधा देखने का प्रयास करें तो यह दिख पाता है कि

- मानव केवल शरीर ही नहीं है, परंतु मैं (चैतन्य) और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में है
- सुख = व्यवस्था में होना, व्यवस्था में जीना – स्वयं में, परिवार में, समाज में, प्रकृति में
- आनंद = निरंतर सुख = निरंतर व्यवस्था में होना, व्यवस्था में जीना – जीने के हर स्तर पर

अतः आनंद पूर्वक जीने का आधार

- व्यवस्थित मन – स्वयं में सही समझ, भाव-विचार – व्यवस्था का
- व्यवस्थित शरीर – शरीर में स्वास्थ्य, न केवल रोग का निवारण
- व्यवस्थित वातावरण
    - व्यवस्थित परिवार- संबंध व समृद्धि पूर्वक जीना
    - व्यवस्थित समाज – न्याय व व्यवस्था संपन्न, "सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय"
    - व्यवस्थित प्रकृति – परस्परपूरकता आधारित, समृद्ध प्रकृति

'सार्वभौमिक मानव मूल्य' के आधारभूत पाठ्यक्रम के माध्यम से हम सभी, शिक्षक, विद्यार्थी और अभिभावक आनंद पूर्वक जीने की सही समझ (उपरोक्त वर्णित) पर मनन-चिंतन व् अभ्यास करने का प्रयास करेंगे। इस महत्वपूर्ण कार्य में हम सबकी प्रमुख भागीदारी है, जिम्मेदारी है।

यह पुस्तक, लंबे प्रयोग, परामर्श और चिंतन के परिणामों पर आधारित है। जिसका उद्देश्य शिक्षा को मूल्य शिक्षा की एक ऐसी पद्धति से जोड़ना है, जो कि सार्वभौम रूप से सभी को स्वीकार्य हो। इस दिशा में पहला और महत्वपूर्ण कदम "आनंद सभा– सार्वभौमिक मानवीय मूल्य से आनंद की ओर" के पाठ्यक्रम को शुरू करना है, जिसके लिये यह विषय वस्तु तैयार की गई है।

इस पुस्तक में, मानव के साथ-साथ शेष-प्रकृति और अस्तित्व को समझने के लिये एक सुव्यवस्थित स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को प्रस्तावित किया गया है, जिसके स्वाभाविक परिणाम के रूप में सार्वभौमिक मानवीय मूल्य और निश्चित मानवीय आचरण की समझ सुनिश्चित हो पाती है। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, एक ओर मानव को स्वयं के आधार पर अपने में सही समझ सुनिश्चित करने के योग्य बनाती है, और दूसरी ओर यह प्रक्रिया, मानव को 'स्वयं' के विकास के साथ-साथ जीने में आवश्यक व्यवहार, कार्य को सीखने में सहयोग करती है। स्व-अन्वेषण की इस प्रक्रिया को, मूल्य शिक्षा की एक प्रभावी प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है।

इस पुस्तक को इस प्रकार लिखा गया है कि, पाठक के भीतर एक संवाद की प्रक्रिया शुरु हो सके। जिसके लिये एक सुव्यवस्थित तरीके से प्रस्तावों को एक-एक करके पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, ताकि वह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से इन प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन कर सकें। पूरी चर्चा इस विषय पर केन्द्रित है, कि मानव का तृप्ति पूर्वक जीना कैसे हो पाये? यह अध्ययन, मानव के जीने के सभी स्तरों पर अंतर्निहित व्यवस्था को समझने और जीने के अर्थ में है, जो कि मानव के तृप्ति पूर्वक जीने का आधार है।

पाठकों के ध्यान देने के लिये महत्वपूर्ण टिप्पणी (A Note to the Readers)

इस पुस्तक की विषय-वस्तु को, प्रस्तावों के एक समूह के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें याद करने या याद करके सुनाने या वाह्यरूप से इन्हें स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के बजाय, धीरे-धीरे इन्हें अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँचना है। इससे आपके भीतर एक संवाद शुरु होगा– 'जैसे आप है' और 'जैसा होना आपको सहज स्वीकार्य है' के बीच। जैसे-जैसे आप इस पुस्तक को पढ़ते जाते हैं, आप इस प्रस्तावित विधि से अध्ययन कर पाते हैं। और जैसे-जैसे आप इस अध्ययन की प्रक्रिया में आगे बढ़ते हैं, आपके अंदर कई प्रश्न बन सकते हैं, जिनमें से अधिकांश प्रश्न धीरे-धीरे इस स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के दौरान स्वतः ही हल हो जाएंगें; जो कि एक महत्वपूर्ण बात है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी भी उत्तर से तभी आश्वस्त हो पाता है, जब वह स्वयं में उत्तर देख पाये बजाय इसके कि बाहर से उस पर उत्तर थोपे जायें।

हमारी भूमिका, इन प्रस्तावों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने और आप में स्व-अन्वेषण एवं स्व-सत्यापन की प्रक्रिया को शुरू करने में सहयोग करने की है। स्व-अन्वेषण की इस प्रक्रिया से आप उन मूल्यों को स्वयं में देख सकेंगे, जो कि प्राकृतिक रूप से आप में अंतर्निहित हैं ही। यह आपको स्व-विकास, अर्थात् 'स्वयं' के विकास की ओर ले जायेगा, जिसके परिणाम स्वरूप, आपकी मूल चाहना की पूर्ति हो पायेगी। यहाँ आपकी ओर से एक ईमानदार एवं निष्ठापूर्ण प्रयास की अपेक्षा है। इसके लिये, इस पुस्तक को पढ़ते समय निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखा जा सकता है-

जागरूकता के साथ पढ़ें

(Read with Awareness)

इस पुस्तक को समझने की दृष्टि से, जागरूकता के साथ पढ़ना आवश्यक है। किसी बात को केवल याद कर लेना, वास्तव में, उसे समझना नहीं है। हमने कुछ वास्तविकता देखी है; उस वास्तविकता से जुड़े कुछ अर्थ हैं, और इन अर्थों के लिये हमने कुछ शब्दों का प्रयोग किया है। हमारी तरफ से, इन शब्दों को प्रस्ताव के रूप में, इस पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। जब आप कोई शब्द पढ़ते हैं, तो आप उसे किसी न किसी अर्थ से जोड़ते हैं। क्या आपके द्वारा जोड़ा गया अर्थ और हमारे द्वारा इंगित किया गया अर्थ, अनुरूप हैं? इसके अलावा, आप स्वयं में उस शब्द अथवा उसके अर्थ से इंगित वास्तविकता को देखने की कोशिश करते हैं। यदि आप उसी वास्तविकता को स्वयं में देखने में सक्षम हो पाते हैं, जिसे हमारे द्वारा इंगित किया गया है, तो वास्तव में यह संवाद सफल होता है। वास्तव में, हम वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं के अर्थ को जोड़ते हैं। हम आने वाले अध्यायों में, व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं)अर्थों (का वर्णन करेंगे, जिन्हें आप स्वयं में देख सकते हैं और वास्तविकता को स्वयं में समझ सकते हैं। हम सभी में समझने और जानने की प्राकृतिक क्षमता है ही।

अध्याय 5-7 'मानव में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-8 'परिवार में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-9 'समाज में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है, अध्याय-10 'प्रकृति में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है और अंततः अध्याय-11 'अस्तित्व में व्यवस्था' के अर्थ को स्पष्ट करता है। हमारा सुझाव यह है कि आप प्रस्तावों द्वारा इंगित किये जाने वाले अर्थ को समझने के लिये, इन प्रस्तावों को जागरूकता के साथ पढ़े और इन्हें, इंगित वास्तविकता)अस्तित्व सहज व्यवस्था (से जोड़ने का प्रयास करें। यदि आप अस्तित्व सहज वास्तविकता को समझने में सक्षम हो पाते हैं, तो इस पुस्तक के माध्यम से उस वास्तविकता को संप्रेषित करने का हमारा यह संयुक्त प्रयास सफल है।

पूर्व-निर्मित समाधान खोजने के प्रयास से बचें

(Avoid Jumps to Readymade Solutions)

हम कभी-कभी विभिन्न परिस्थितियों में तुरंत पूर्व-निर्मित (पहले से तैयार) समाधान प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, कुछ सूत्रों में पिरोने की कोशिश करते हैं जिससे समाधान मिल सके। इस पुस्तक में, मूल समझ के बारे में प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कि किसी भी स्थिति/परिस्थिति के लिये आपमें समग्र समाधान का एक आधार बन सकता है। यदि व्यक्ति इस मूल समझ से युक्त होता है, तो वह समस्याओं से मुक्त होकर जी सकता है। चूंकि, समस्यायें समय, स्थान, और व्यक्ति के साथ बदलती रहती हैं; इसलिये यह एक व्यक्तिगत जिम्मेदारी है कि हम अपने लिये इस मूल समझ के आधार पर समाधान सुनिश्चित करने का प्रयास स्वयं करें। मूल्यों की समझ से हमें ऐसे समाधानों को विकसित करने में मदद मिलेगी, जो निरंतरता में हमारे लिये परस्पर पूरक होंगे। इसे सुविधाजनक बनाने के लिये, उपयुक्त स्थानों पर कुछ उदाहरण भी दिये गये हैं, ताकि आप इन प्रस्तावों को अपने जीने के साथ जोड़कर देख सकें।

मौजूदा मान्यताओं/पूर्वाग्रहों के साथ तुलना से बचें

(Avoid Comparing with Existing Beliefs/Notions)

वैसे, हम सभी के पास लंबे समय से चले आ रहे पूर्वाग्रह अथवा मान्यतायें हैं ही। वे सही या गलत दोनों ही हो सकते हैं, लेकिन हम उन्हें बिना जाँचे ही स्वीकारे रहते हैं। यदि हम सावधान नहीं हैं, जागरूक नहीं हैं, तो जो कुछ भी इस पुस्तक में बताया जा रहा है, उसकी तुलना हम अपने मौजूदा पूर्वाग्रहों या मान्यताओं से करने लगते हैं। ऐसा हो सकता है, कि किसी वास्तविकता के बारे में यहाँ कुछ और कहा जा रहा हो, और आपकी मान्यता उसके संदर्भ में कुछ और हो। फिर आप कैसे तय करेंगे कि सही क्या है? क्या आप इस बात पर जोर देंगे कि केवल आपकी वर्तमान मान्यता ही सही है? या यहाँ जो प्रस्तावित किया जा रहा हैं, आप उसे समझने और जाँचने का प्रयास करेंगे, और साथ ही साथ अपनी वर्तमान मान्यता की भी जाँच करेंगे? यहाँ पर हम आपको, इन दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण करने के साथ-साथ, अपनी मान्यताओं का स्व-अन्वेषण करने का भी सुझाव दे रहे हैं। इससे आपको अपनी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों को स्व-सत्यापित करने में सहयोग मिलेगा।

प्रस्तावों की जाँच करें (सहमत या असहमत होने के बजाय)

Verify the Proposals (rather than agreeing or disagreeing)

हम अपनी वर्तमान मान्यताओं से तुलना के आधार पर प्रस्ताव से सहमत या असहमत हो सकते हैं, लेकिन, इस प्रक्रिया में हम वास्तविकता को देख नहीं पाते, अतः तुलना करने से बचना होगा। सहमत या असहमत होने के बजाय, हम आपको इन प्रस्तावों को सत्यापित करने /जाँचने का आग्रह कर रहे हैं।

हमने इस पुस्तक में कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर, 'रुकें और सोचें' नामक प्रतीक का प्रयोग किया है। आपसे अपेक्षा है कि आप इन विशेष बिंदुओं पर कुछ समय रुककर, स्वयं में देखने की कोशिश करें।

प्रत्येक अध्याय में, 'अपनी समझ को जाँचे' नामक एक अनुभाग भी दिया गया है। जिसमें, तीन उप-अनुभाग हैं। अनुभाग-1, प्रश्नों का एक समूह है, जो आपको यह जाँचने में मदद करेगा कि आपने अध्याय में प्रस्तुत प्रस्तावों को कितना समझा है। अनुभाग-2 में, इन प्रस्तावों को आपके दैनिक जीने से जोड़ने में सहयोग के लिये कुछ अभ्यास दिये गये हैं। अनुभाग-3 में, प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग से संदर्भित कुछ अभ्यासों का उल्लेख किया गया है, जिसमें आप अपनी समझ की एक रचनात्मक अभिव्यक्ति कर सकते हैं। अगले अध्याय में जाने से पहले यह महत्वपूर्ण होगा, कि आप इन दिये गये अभ्यासों को करने की कोशिश अवश्य करें। यदि आपके कुछ प्रश्न हों तो उन्हें लिख लें। यह संभव है कि, जैसे-जैसे आप स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया में आगे बढेंगे तो आप स्वयं ही उन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर प्राप्त कर पायेंगे। उस स्थिति में, जिन भी प्रश्नों का उत्तर आपको मिल जाता है, उन्हें चिह्नित कर लें। शेष बचे हुये प्रश्नों के उत्तर के लिये, स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया स्वयं में जारी रखना आवश्यक है, साथ ही आप अपने प्रश्न से संबंधित शीर्षकों को पुनः पढ़ सकते हैं, अपने शिक्षक के साथ चर्चा कर सकते हैं, वेबसाइट देखे सकते हैं अथवा वेबिनार या कार्यशाला में प्रतिभाग कर सकते हैं। निश्चित रूप से जब हमारे मूलभूत प्रश्नों के उत्तर स्वयं से प्राप्त होते हैं, तब वह अधिक तृप्ति दायक होते हैं।

इस पुस्तक में आप यह देखेंगे कि कुछ वक्तव्यों, अवधारणाओं और चित्रों को कई बार दोहराया गया है। ऐसा आपका ध्यान बार-बार उनकी ओर आकर्षित करने के लिये किया गया है, या पहले हो चुकी बातों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करने के अर्थ में किया गया है या जिन मुद्दों पर आपकी मान्यतायें बहुत

मजबूत हैं उनका मूल्यांकन करने में आपका सहयोग करने के अर्थ में किया गया है; क्योंकि आपकी ये मान्यतायें आपको वास्तविकता जैसी है, उसे वैसा समझने में बाधा उत्पन्न करती हैं।

यहाँ हमने कुछ समस्याओं का उल्लेख किया है, जिससे आपका ध्यान उन समस्याओं के सार्थक विश्लेषण की ओर जा पाये। जैसे परिवार और समाज में शासन की समस्या का विश्लेषण करना, यह परिवार या समाज में विघटन को बढ़ावा देने के लिये नहीं किया गया है और न ही यह आपकी अथवा दूसरों की निराशाजनक आलोचना करने के लिये ही किया गया, बल्कि ऐसा समस्याओं के मूल कारणों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने के लिये किया गया है; क्योंकि सामान्यतः वास्तविकता के कुछ हिस्से के बारे हम जागरूक ही नहीं रह पाते हैं, जिससे हम समस्या के मूल कारण को ठीक से नहीं देख पाते।

प्रस्तावों को समझने के लिये, हमने कुछ उदाहरणों और कहानियों का भी प्रयोग किया है। ये आपके जीने के साथ प्रस्तावों को जोड़ने में आपकी मदद करने के अर्थ में है। ये बने बनाये समाधान प्रस्तुत करने अथवा 'क्या करें या क्या न करें' के अर्थ में नहीं हैं। पढ़ते समय आप इस बात के लिये जागरूक रहें कि कहीं इन उदाहरणों में ही आप लिप्त न हों जायें और मूल बिन्दु ही छूट जाये।

इस पुस्तक में, सभी प्रस्तावों को एक क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन्हें इसी क्रम में पढ़ना अपेक्षित है, क्योंकि प्रस्तावों के एक समूह की समझ, आने वाले अगले प्रस्तावों को समझने में सहयोग करता है। एक प्रकार से, यह पूरी पुस्तक पहले पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक एक ही 'वाक्य' है। अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक निश्चित क्रम में पूरे वाक्य को पढ़ने से ही इसके अर्थ को सही ढंग से समझा जा सकता है।

प्रस्तावों का प्रयोगात्मक सत्यापन करें

(Experientially Validate the Proposals)

यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, एक सतत प्रक्रिया है। कार्यशालाओं में, हम आमतौर पर ऐसा कहते हैं कि "यह कार्यशाला शुरू तो होती है, लेकिन कभी समाप्त नहीं होती", क्योंकि एक बार जब आप अपने में, स्वयं के अधिकार पर जाँच शुरू कर देते हैं, तो यह जाँच सतत जारी रहती है। यह प्रक्रिया, स्व-विकास की प्रक्रिया के रूप में सतत चलती रहती है। यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, मात्र कक्षा तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि प्रस्तावों का विश्लेषण करने, इनको स्वयं के अधिकार पर जाँचने, और जीने में इनका स्व-सत्यापन करने इत्यादि के रूप में यह प्रक्रिया हमारे दैनिक जीने का एक अंग बन जाती है। मूल्य-शिक्षा के बारे में अच्छी बात यह है कि, आपको इसके लिये किसी विशेष प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं है -हमारा संपूर्ण जीना ही एक प्रयोगशाला है!

यह अध्ययन, समझने के लिये है; और समझना, तृप्ति पूर्वक जीने के लिये है। अतः यह स्पष्ट रहना अनिवार्य है कि हमारा अंतिम लक्ष्य भी यही है 'परस्पर तृप्ति पूर्वक जीना', स्वयं की तृप्ति, दूसरों की तृप्ति और अंततः सभी की तृप्ति। मूलतः हमारा जीना इस बात का प्रमाण है कि वास्तव में हमने कितना समझ लिया है!

अब, हम अध्ययन के लिये तैयार हैं।

अध्याय-1
मूल्य शिक्षा को समझना
(Understanding Value Education)

पिछली कक्षाओं में हमने विस्तार से उन सभी मूल मुद्दों पर चर्चा की जो हम सब के जीने से सीधे-सीधे जुड़े हुये हैं, जो हमारे सुख से, हमारे तृप्तिपूर्वक जीने से, हमारे लक्ष्य से, हमारी चाहनाओं (aspirations)से और हमारे संबंधों से जुड़े हुये हैं। यह भी स्पष्टता बनी कि मूल्य शिक्षा उन सभी बातों से जुड़ी है जो हम सब के लिये सार्वभौमिक रूप से (universally) मूल्यवान है– जो हमारे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से सुख-समृद्धि के लिए सहायक है। तृप्ति-पूर्वक जीने की समझ और इसे सुनिश्चित करने के लिये कार्यक्रम की समझ हेतु उपयुक्त शिक्षा की आवश्यकता है। मानव के लिये ये दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं -:

1. क्या करना है (What to do)? -मूल्य शिक्षा (Value Education)

2. कैसे करना है (How to do it)? -कौशल-शिक्षा (skill education)

हमने देखा था कि एक समग्र शिक्षा (holistic education) के लिये इन दोनों पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक है।

मूल्य शिक्षा
(Value Education)

किसी वस्तु का मूल्य उसकी बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है जिसका कि वह हिस्सा है।

शिक्षा का वह भाग, जो मानव की बड़ी व्यवस्था में भागीदारी को समझने और वैसा जीने को सुनिश्चित करता है, उसे मूल्य शिक्षा कहते हैं। यह बाकी शिक्षा के लिये आधार प्रदान करती है। अतः पूरी शिक्षा को ही मूल्य आधारित होने की आवश्यकता है।

कौशल-शिक्षा
(Skill Education)

कौशल (तकनीकी, प्रबंधन, औषधि आदि) हमारे जीवन में आवश्यक है। कौशल का हर क्षेत्र में समुचित विकास हुआ है। निश्चित रूप से कौशल की आवश्यकता है लेकिन यह भी समझना उतना ही महत्वपूर्ण है कि इसे किस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयोग किया जा रहा है।

मूल्य एवं कौशल की परस्पर- पूरकता
(Complementarity of Value and Skills)

मूल्य और कौशल दोनों की आवश्यकता साथ-साथ है ,दोनों में परस्पर-पूरकता है। तृप्ति-पूर्वक जीने के लक्ष्य के प्रति किसी भी मानवीय प्रयास की सफलता के लिये दोनों के बीच परस्पर-पूरकता आवश्यक है।

कौशल से अधिक मूल्य की वरीयता
(Priority of Values over Skills)

जैसा कि ऊपर बताया गया है ,'क्या करना है' को निर्धारित करने के लिये मूल्य की समझ आवश्यक है जबकि 'कैसे करना है? को निर्धारित करने के लिये कौशल आवश्यक है। आप ये देख पा रहे हैं कि कौशल से अधिक, मूल्य की वरीयता है हालांकि मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये ये दोनों ही आवश्यक हैं।

मूल्यशिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय का महत्व
(Appreciating the Need and Important Implication of Value Education)

मूल्य शिक्षा एवं कौशल शिक्षा की परस्पर-पूरकता और इनके वरीयता क्रम को समझने के उपरांत, अब हम मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रमुख आशय को समझते हैं जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

- हमारे लक्ष्य की सही पहचान (Correct Identification of Our Goals)
- समग्र दृष्टि का विकास (Development of Holistic Perspective)
  - समग्र दृष्टि के साथ जीने के लिये कार्यक्रम की स्पष्टता (Clarity of Programme to Live with Holistic Perspective)
- हमारी मान्यताओं का मूल्यांकन (Evaluation of Our Beliefs)
- वर्तमान समस्याओं का समाधान (Solution of Existing Problems)
- नैतिक योग्यता का विकास (Development of Ethical Competence)

मूल्यशिक्षा के लिये दिशानिर्देश
(Guidelines for Value Education)

अब तक हमने मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और इसके आशय को चिन्हित कर लिया है, अब हम इसके निश्चित, प्रभावी और व्यापक स्तर पर स्वीकार्य दिशा निर्देशों को फिर से जान लेते हैं

- **सार्वभौम (Universal):** मूल्य शिक्षा के अंतर्गत हम जो कुछ भी पढ़ते हैं वह सार्वभौम रूप से स्वीकार हो अर्थात् हर व्यक्ति को सभी स्थानों पर और हर समय एक जैसा स्वीकार हो।
- **तर्कसंगत (Rational):** मूल्य शिक्षा तर्कसंगत हो न कि मान्यताओं या रूढ़ियों पर आधारित हो ,एवं उससे जुड़े प्रश्नोत्तर के लिये अवसर हो।
- **स्वाभाविक और जाँचने योग्य (Natural and Verifiable):** मूल्य शिक्षा में हम जिन बातों का अध्ययन करना चाहते हैं वह हमारे लिये स्वाभाविक हो और उसको जाँचा जा सके। स्वाभाविक (natural) का अर्थ है कि यह हमें सहज स्वीकार्य हो और जब हम ऐसे मूल्यों के आधार पर जियें तो यह परस्पर-पूरक भी हो।

- **सर्व सम्मिलित (All Encompassing):** मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु में हमारे जीने के सभी आयाम (विचार, व्यवहार, कार्य, और समझ) और जीने के सभी स्तर (मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व) शामिल हों।
- **व्यवस्था को सुनिश्चित करने वाला (Leading to Harmony):** अंततः, मूल्य शिक्षा हमें स्वयं में व्यवस्था (harmony) तथा दूसरों के साथ भी व्यवस्था की स्थिति की ओर ले जाने में सहायक हो।

मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु
(Content of Value Education)

हमने यह देख लिया है कि मानव का मूल्य सम्पूर्ण अस्तित्व रुपी बड़ी व्यवस्था में उसकी भागीदारी है। अतः मानव मूल्यों को समझने के लिये अस्तित्व में जो भी है उन सभी का अध्ययन करने की आवश्यकता है। मानव की भागीदारी अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ उसका संबंध है। इसका अर्थ यह हुआ कि अध्ययन की विषय-वस्तु में सब कुछ सम्मिलित हो अर्थात्-

- इसमें मानव के जीने के सभी आयाम सम्मिलित हों- विचार, व्यवहार, कार्य और अनुभव (realization)।
- इसमें मानव के जीने के सभी स्तर सम्मिलित हों - मानव, परिवार, समाज, प्रकृति और अस्तित्व।

मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया: स्व-अन्वेषण
(Process of Value Education: Self-exploration)

मानवीय मूल्य को समझने के लिये स्व-अन्वेषण एक उचित प्रक्रिया है, क्योंकि ये क्षमता के रूप में हर मानव में विद्यमान है। मानव में पहले से ही मानवीय मूल्यों के लिये सहज स्वीकृति है। हमें तो सिर्फ उनको स्वयं में देखना है या उनके प्रति जागरूक होना है।

अध्याय-2

स्व-अन्वेषण - मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया

(Self-exploration as the Process for Value Education)

पिछली कक्षाओं में हमने मूल्य शिक्षा की प्रक्रिया स्व-अन्वेषण का विस्तार से अध्ययन किया। इस प्रक्रिया की विषय वस्तु के बारे मे यह स्पष्ट हुआ कि स्वयं मे तृप्तिपूर्वक जीने के लिए जो कुछ भी जानने की आवश्यकता है वह स्व-अन्वेषण के लिए विषय वस्तु है।

स्व-अन्वेषण : स्वयं में संवाद

(Self-exploration: Dialogue within)

स्व-अन्वेषण , स्वयं के अधिकार पर, स्वयं में निरीक्षण, परीक्षण तथा विश्लेषण के द्वारा वास्तविकताओं को देखने की प्रक्रिया है।

स्वयं में संवाद

(The Dialogue Within)

आप स्वयं में चल रहे संवाद को देखें ,यह संवाद 'जैसा मैं हूँ' और 'जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है' इसके बीच हो रहा है। चित्र 2-1 देखें

चित्र. 2-1. स्वयं में संवाद

अपनी वर्तमान स्थिति को देखने का प्रयास करें:

आपको अपनी सहज स्वीकृति के प्रति स्पष्टता हैं, और यही आपका मार्गदर्शन कर रही है

या

आपको अपनी सहज स्वीकृति के प्रति पूरी तरह से स्पष्टता नहीं हैं, और आप किसी अन्य आधार पर निर्णय ले रहे हैं।

जब हम स्वयं में संगीत में होते हैं तो हम सुख की स्थिति में होते हैं, और जब हम स्वयं में अंतर्विरोध में होते है तो हम दुःख की स्थिति में होते हैं। इसलिये :

स्वयं में संगीत की स्थिति ही सुख है।

(Happiness is to be in a state of harmony)

स्वयं में अंतर्विरोध की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दुःख है।

(Unhappiness is to be forced to be in a state of contradiction)

स्व-अन्वेषण के लिये विषय-वस्तु
(The content for self-exploration)

स्व-अन्वेषण के लिये विषय मे मूलतः दो भाग है:

चाहना - आपकी मूल चाहना क्या है?

कार्यक्रम - आपकी मूल चाहना को पूरा करने के लिये क्या करना है?

यदि हमारे पास इन दोनों प्रश्नों का उत्तर है, तो अब सिर्फ इसके अनुसार कार्य करना शेष है !

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया
(The process of self-exploration)

हमने स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को पहले ही पहचानना शुरू कर दिया है। चित्र. 2-3. को देखिये, यह स्व-अन्वेषण की पूरी प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है।

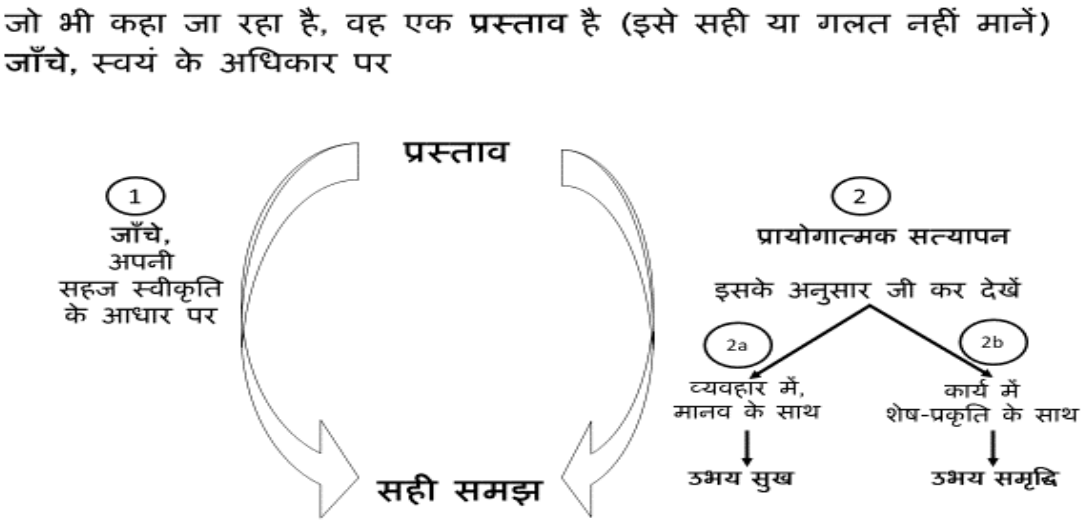

चित्र. 2-3. स्वान्वेषण की प्रक्रिया

सहज स्वीकृति - सही समझ का आधार
(Natural Acceptance- the Basis for Right Understanding)

सहज स्वीकृति मौलिक होती है, यह हमारे लक्ष्य, हमारी मूल चाहना से संबंधित है। सहज स्वीकृति के संदर्भ मे कुछ प्रमुख बातों को हमने पिछली कक्षाओं मे देखा था:

(a) सहज स्वीकृति समय के साथ नहीं बदलती

(b) सहज स्वीकृति स्थान के साथ नहीं बदलती

(c) सहज स्वीकृति व्यक्ति के आधार पर नहीं बदलती

(d) सहज स्वीकृति पसंद-नापसंद, मान्यताओं या पूर्वाग्रहों के आधार पर नहीं बदलती

(e) सहज स्वीकृति स्वाभाविक है; कृत्रिम तौर पर इसे उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं है

(f) सहज स्वीकृति निश्चित है

स्व-अन्वेषण के प्रमुख आशय
(Important Implications of Self-exploration)

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया, हमारा तृप्तिपूर्वक जीने की दिशा मे एक महत्वपूर्ण कदम हैं। इस प्रक्रिया से निम्न बिंदुओं पर समझ बनती है और तृप्ति-पूर्वक जीने मे अनुकूलता होती है।

1. यह प्रक्रिया स्वयं को जानने और उसके द्वारा, समग्र अस्तित्व को जानने की है।
2. यह प्रक्रिया अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानने और निर्वाह करने की है
3. यह प्रक्रिया मानवीय आचरण को जानने और उसके अनुसार जीने की है
4. यह प्रक्रिया 'स्वयं' में व्यवस्था और समग्र अस्तित्व के साथ व्यवस्था में जीने की है
5. यह प्रक्रिया अपने स्वत्व को पहचान कर स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक जीने की है
6. यह प्रक्रिया 'स्वान्वेषण' के द्वारा 'स्वयं' में विकास)एक मानव के रूप में विकसित होना (की है
7. स्व-अन्वेषण के माध्यम से स्वयं का विकास से लेकर सार्वभौम व्यवस्था तक की यात्रा के विभिन्न चरणों को चित्र 2- 4से समझ जा सकता है।

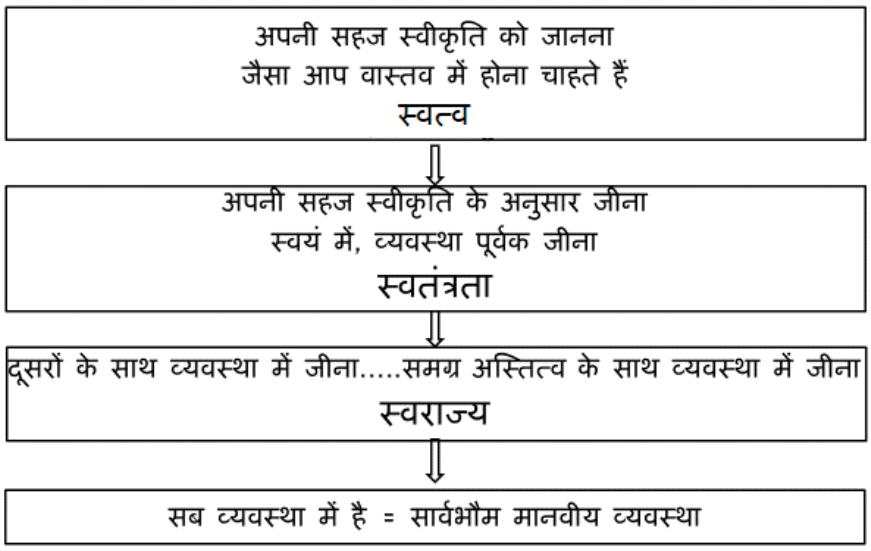

चित्र. 2-4. स्व–विकास और स्वराज्य

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के परिणाम-स्वरूप स्वयं मे सही समझ स्थापित होती है, सही समझ की विशेषताओं चित्र 2-5 मे दर्शाया गया हैं।

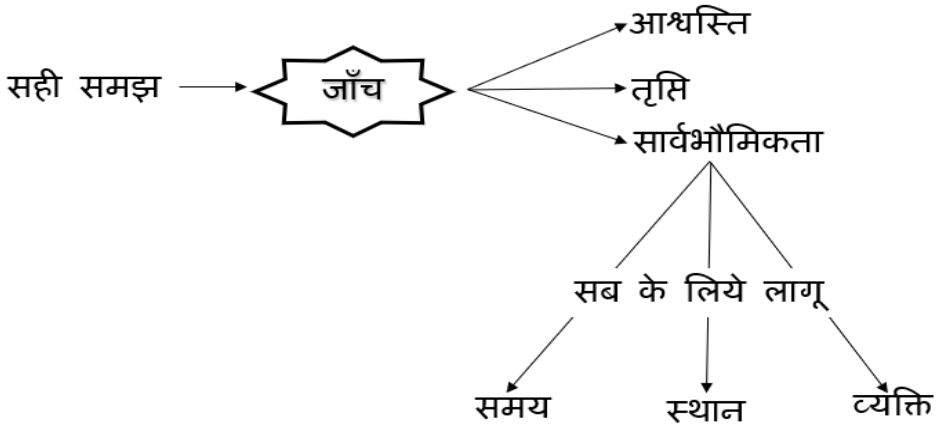

चित्र. 2-5. सही समझ की विशेषतायें

स्व-अन्वेषण के द्वारा समग्र अस्तित्व के बारे में सही समझ हो पाती है, अर्थात् "सह-अस्तित्व में अनुभव (realisation)", "व्यवस्था की समझ" और "संबंधों" में भागीदारी का चिंतन (contemplation)" हो पाता है। एक बार जब हममें सही समझ हो पाती है, और हमारी कल्पनाशीलता पूर्णतः इससे निर्देशित होने लगती है, तो हम निरंतर सुख की स्थिति में पहुँच पाते हैं। यही सही समझ प्रकृति की प्रत्येक इकाई के साथ हमारे व्यवहार, कार्य और भागीदारी में व्यवस्थापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त होती है। अंततः यह, अखंड समाज (undivided society) और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था (universal human order) के लिये आधार बनता है। इससे भी आगे जब यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचता है और फिर पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर आगे बढ़ता रहता हैतो ,इसके द्वारा प्रत्येक मानव के लिये निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने की मानवीय परम्परा (human tradition) स्थापित हो पाती है, मूल्य शिक्षा का यही प्रतिष्ठित परिणाम है।

इस अध्याय मे, स्व-अन्वेषण का अर्थ स्पष्ट हुआ। अगले अध्याय मे हम मानव की मूल चाहना और इसकी पूर्ति कैसे की जा सकती है, इसकी पुनरावृत्ति करेंगे, जिसके बारे मे कक्षा 9 और 10 में विस्तार से वर्णन किया जा चुका है।

अध्याय-3

मानव की मूल चाहना एवं उसकी पूर्ति

Basic Human Aspirations and their Fulfilment

पिछली कक्षाओं में हम स्व-अन्वेषण के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुचे कि मानव की मूल चाहना)Basic Human Aspiration (सुख, समृद्धि और इसकी निरंतरता है।

मानव की मूल चाहना- सुख समृद्धि और उसकी निरंतरता

(Continuous Happiness and Prosperity as Basic Human Aspirations)

अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर यह देख सकते हैं कि सुख एवं समृद्धि पूर्वक जीने के लिये ही हम सब कुछ कर रहे हैं। यहाँ पहुँचने के बाद इसे बदलना नहीं चाहते हैं, बल्कि इसकी निरंतरता को बनाये रखना चाहते हैं।

मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिये आधारभूत आवश्यकतायें

(Basic Requirements for Fulfilment of Human Aspirations)

मानव की मूल चाहना की पूर्ति के लिए तीन तरह कीआवश्यकताएं हैं – सही समझ, संबंध और सुविधा। जब इन्हे विस्तार से देखते हैं तो पाते हैं कि :-

- सही समझ से तात्पर्य अपने आप को समझना है, उन सभी को समझना है, जिनके साथ मैं जीता हूँ, और उनके साथ अपनी भागीदारी को समझना है अर्थात् स्वयं, परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व को समझना है।
- संबंध से तात्पर्य है सहज स्वीकृत भावों मे सभी के साथ जीना (परिवार में, समाज में)।
- सुविधा से तात्पर्य है सभी भौतिक रासायनिक वस्तुयें।

मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये इन तीनों की ही आवश्यकता होती है। किसी एक को दूसरे की जगह नहीं रख सकते हैं।

वरीयता- सही समझ, संबंध और सुविधा

(Priority- Right Understanding, Relationship and Physical Facility)

जैसा कि पहले की कक्षाओं मे चर्चा किया गया है, इनकी सही वरीयता क्रम है – सही समझ, संबंध, और सुविधा। यदि तीनों को सुनिश्चित कर लेते है तो परिणाम निम्नलिखित रूप मे आता है (चित्र 3-5 देखें)

संबंधों मे सही समझ पर आधारित सही भाव के द्वारा उभय सुख सुनिश्चित होता हैं -स्वयं मे सुख के साथ-साथ दूसरों में सुख

- सही समझ के साथ, हम भौतिक सुविधाओं की आवश्यकता की पहचान कर पाते हैं। हम यह भी सीखने मे समर्थ होते हैं कि कैसे आवर्तनशील (mutually enriching) विधि से उत्पादन करें। जब हम आवर्तनशील (mutually enriching) विधि के द्वारा आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधाओं

की उपलब्धता को सुनिश्चित कर पाते हैं तो हम समृद्धि का भाव महसूस करते हैं, साथ ही प्रकृति का भी संवर्धन कर पाते है जिससे उभय समृद्धि सुनिश्चित होती है।

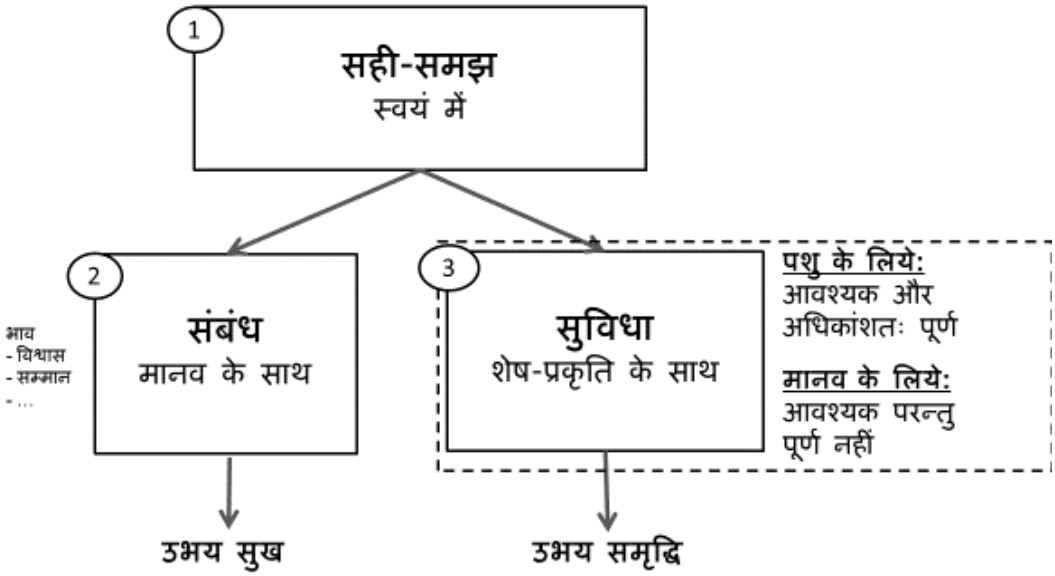

चित्र. 3-5. सही-समझ, संबंध और सुविधा के वरीयता क्रम में जीता हुआ मानव

मानव चेतना का विकास
(Development of Human Consciousness)

मानव की मूल-चाहना अर्थात् सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता की पूर्ति सही-समझ, संबंध और भौतिक सुविधाओं को सही वरीयता क्रम में रखते हुये ही सुनिश्चित होती है।

कोई भी मानव जो इन तीनों के लिये कार्य कर रहा है, वह तृप्त हो सकता है। अत: जो व्यक्ति इन तीनों के साथ जी रहा है वह मानव चेतना (Human Consciousnesses) में जी रहा है।

दूसरी तरफ, यदि कोई व्यक्ति केवल सुविधा-संग्रह के लिये जी रहा है तो वह जीव चेतना (Animal Consciousness) में जी रहा है क्योंकि सुविधा केवल पशुओं के लिये ही पर्याप्त हो सकती है, मानव के तृप्ति-पूर्वक जीने के लिये पर्याप्त नहीं है।

समग्र विकास
(Holistic Development)

सही समझ, संबंध एवं सुविधा की सही वरीयता के साथ, हम स्पष्ट रूप से समग्र विकास की परिकल्पना चेतना के संक्रमण)परिमार्जन (के रूप में कर सकते हैं -जीव-चेतना से मानव-चेतना के संक्रमण के रूप में चित्र 3- 6का संदर्भ लें।

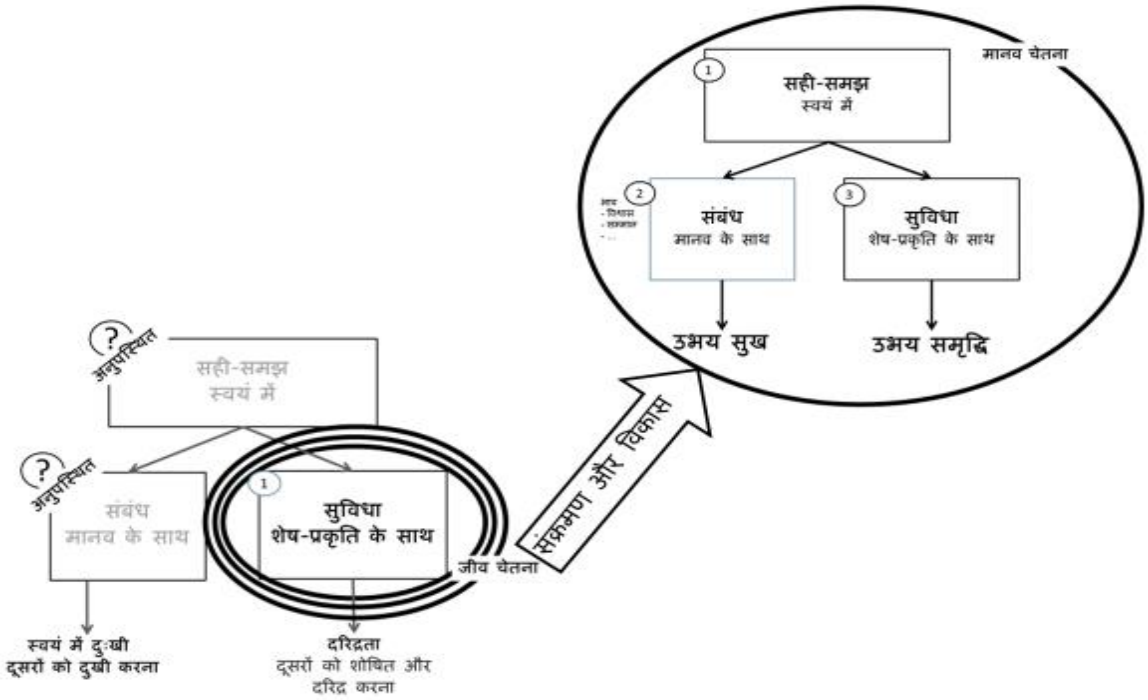

चित्र. 3-6. संक्रमण, विकास-क्रम, विकास

शिक्षा-संस्कार की भूमिका
)Role of Education-Sanskar(

शिक्षा की भूमिका, निश्चित मानवीय आचरण से जीने की योग्यता का विकास अर्थात् मानव-चेतना का विकास करना है। इसके लिये, शिक्षा-संस्कार द्वारा निम्न को सुनिश्चित करना होगा:

1. प्रत्येक बच्चे में सही-समझ
2. दूसरे मानव के साथ संबंध पूर्वक जीने की योग्यता तथा
3. सुविधाओं की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता, जितनी आवश्यकता है उससे अधिक उत्पादन करने के लिये आवर्तनशील विधि का अभ्यास एवं कौशल।

शिक्षा, व्यक्ति निर्माण के माध्यम से मानवीय समाज के निर्माण के अर्थ मे नेतृत्व व दिशा देती है। मानवीय शिक्षा-संस्कार की दीर्घकालिक क्षमतायें)long-term potential (निम्न हैं:

1. हर बच्चे में सही समझ - सही समझ में विकास की सहायता से मानव-चेतना से जीने की योग्यता में विकास होगा।
2. हर बच्चे में संबंध पूर्वक जीने की योग्यता- दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंध में उभय-सुख या न्याय से जीने की योग्यता विकसित करना, इससे परिवार में संबंध सुनिश्चित होगा; और यह संबंध बड़े परिवार और अंततः विश्व परिवार तक फैलेगा, अर्थात् अखण्ड समाज (undivided society) तक जाएगा।
3. हर बच्चे में सुविधा की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता विकसित करना, आवर्तनशील विधि के द्वारा आवश्यकता से अधिक सुविधा के उत्पादन के लिये कौशल एवं अभ्यास को विकसित करना, भौतिक सुविधाओं के सदुपयोग एवं श्रम के माध्यम से उत्पादन करने की मानसिकता का विकास करना, जिससे शेष प्रकृति के साथ उभय-समृद्धि सुनिश्चित होगी। इससे परिवार व्यवस्था सुनिश्चित होगी; और इसका फैलाव परिवार के सदस्यों की

भागीदारी के द्वारा बड़े समाज की व्यवस्था तक होगा; अंततः यह सार्वभौम मानवीय व्यवस्था (universal human order) तक जाएगा।

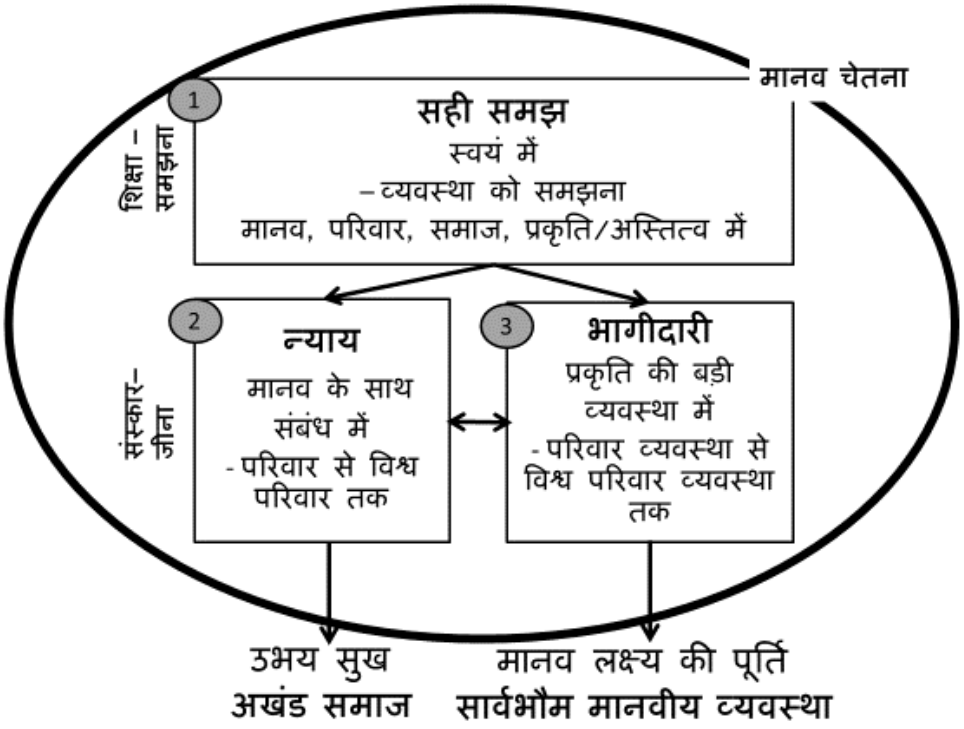

चित्र. 3-7. मानव चेतना में जीना

मानव का मानव-चेतना से जीने के परिणामों को चित्र 3-7 में दर्शाया गया है।

शिक्षा की भूमिका के बारे में यह एक प्रस्ताव है। यदि आप इसका अध्ययन करें तो आप पायेंगे कि मूल्य शिक्षा का मूल उद्देश्य समग्र विकास को सुनिश्चित करना है, अर्थात् मानव-चेतना की तरफ व्यक्ति का संक्रमण)individual transformation (और साथ ही साथ सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की तरफ सामाजिक संक्रमण)societal transformation(को सुनिश्चित करना है।

इस अध्याय मे हमने मानव की मूल चाहना सुख और समृद्धि, समग्र विकास, समग्र विकास मे शिक्षा की भूमिका की पुनरावृत्ति की, जिसकी विस्तार से चर्चा कक्षा 9मे कर चुके हैं। अगले अध्याय मे हम सुख - समृद्धि और इसकी निरंतरता के लिए कार्यक्रम की संक्षिप्त चर्चा करेंगें।

अध्याय-4

सुख और समृद्धि को समझना- इनकी निरंतरता एवं पूर्ति के लिये कार्यक्रम

(Understanding Happiness and Prosperity - Their Continuity and Programme for Fulfilment)

कक्षा 9,10 एवं 11 में अध्याय 4 में हमने सुख और समृद्धि को समझा एवं इनकी निरंतरता में पूर्ति के लिए कार्यक्रम का अध्ययन किया था। सुख के अर्थ को समझने का प्रयास विस्तार पूर्वक किया और इसके साथ सुख की प्रचलित मान्यताओं का आँकलन किया। अब हम सुख और समृद्धि को पुनः संक्षिप्त रूप में चर्चा करेंगे।

सुख के अर्थ को समझना
(Exploring the Meaning of Happiness)

जिस स्थिति/परिस्थिति में मैं हूँ, यदि उसमें संगीत/व्यवस्था है, तो उस स्थिति/परिस्थिति में जीना मुझे सहज स्वीकार्य होता है। ऐसी स्थिति/परिस्थिति में जीना, जो मुझे सहज स्वीकार्य है, यही सुख है। ऐसी स्थिति/परिस्थिति में रहने के लिये बाध्य होना, जो मुझे सहज स्वीकार्य नहीं है, यही दु:ख है। अर्थात् अंतर्विरोध/अव्यवस्था की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना ही दु:ख है।

निरंतर सुख के लिये कार्यक्रम
(Programme for Continuity of Happiness)

सुख की निरंतरता के लिये हमें अपने जीने के पूरे फैलाव को देखना होगा। स्वयं में जीने के साथ-साथ हम कई स्तरों पर जीते हैं, जैसे दूसरे व्यक्तियों के साथ परिवार में, समाज में, और प्रकृति के साथ भी हमारा जुड़ाव है ही। हमारा जीना निम्नलिखित चार स्तरों पर होता ही है:

1. व्यक्ति के रूप में
2. परिवार के एक सदस्य के रूप में
3. समाज के एक सदस्य के रूप में
4. प्रकृति/अस्तित्व की एक इकाई के रूप में

सुख की निरंतरता के लिये सभी स्तरों पर व्यवस्था को सुनिश्चित करना आवश्यक है। यदि हमारे जीने में कहीं भी, किसी भी समय अंतर्विरोध/अव्यवस्था हो तो, यह हमें दुख की तरफ ही ले जायेगा, यह हमारी सुख की निरंतरता को बाधित कर देगा।

समृद्धि के अर्थ को समझना
(Exploring The Meaning of Prosperity)

आवश्यकता से अधिक सुविधा के उत्पादन या उपलब्धता का भाव समृद्धि है।

समृद्धि के लिये दो मूलभूत आवश्यकताएं हैं-

1. सुविधा की आवश्यकता की सही-सही पहचान।
2. आवश्यकता से अधिक सुविधा की उपलब्धता या उत्पादन को सुनिश्चित करना।

जब आप में समृद्धि का भाव होता है तो आप स्वाभाविक रूप से दूसरों के पोषण और संवर्धन के बारे में ही सोचते हैं, दूसरी तरफ यदि आप में दरिद्रता का भाव हो तो आप दूसरों के शोषण और उन्हें दरिद्र बनाने के बारे में ही सोचते हैं।

सुख की प्रचलित मान्यताओं पर एक दृष्टि
(A Look at the Prevailing Notions of Happiness)

सुख की कुछ प्रचलित मान्यताओं में से एक मान्यता यह है कि सुख की निरंतरता सुविधा के भोग से ही संभव है। लोग अपनी अनुकूल संवेदनाओं का स्वाद लेने के लिये किसी भी स्तर तक चले जाते हैं। संवेदनायें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, या गंध किसी भी प्रकार की हो सकती हैं।

सुख की निरंतरता सुविधाओं से?
(Continuity of Happiness from Physical Facility?)

सुख की निरंतरता को सुविधा से मिलने वाली अनुकूल संवेदना के भोग से सुनिश्चित किया जाना संभव नहीं है।आप संवेदना से जो थोड़ा बहुत सुख पाते भी हैं, वह सुख क्षणिक होता है अर्थात् बहुत कम समय के लिये होता है, और यह निम्नलिखित स्थितियों से होकर गुजरता है-

रुचिकर-आवश्यक → रुचिकर-अनावश्यक → अरुचिकर-अनावश्यक →असहनीय

(Tasty-Necessary→Tasty-Unnecessary→Tasteless-Unnecessary→Intolerable)

अतः हम कह सकते हैं कि सुविधा, 'शरीर' के लिये आवश्यक है, परंतु यह सुख की निरंतरता को सुनिश्चित नहीं कर सकती है।

सुख की निरंतरता दूसरों के द्वारा मिलने वाले अनुकूल भाव से?
(Continuity of Happiness from Favourable Feeling from Others?)

यदि आप सुख, दूसरे व्यक्ति से अनुकूल भाव पाकर सुनिश्चित करने जाते हैं, तो यह सुख क्षणिक होता है तथा अनिश्चित भी होता है ।अतः हम कह सकते हैं कि दूसरे से मिलने वाले अनुकूल भाव से निरंतर सुख संभव नहीं है।

सुख आवेश के जैसा नहीं है
(Happiness is Not the Same as Excitement)

आवेश को सुख मानना एक भ्रम की स्थिति है। वास्तविकता यह है कि आवेश की स्थिति बहुत अल्पकालिक होती है, यह सतत् नहीं रहती, जबकि सुख अर्थात् स्वयं के अंदर संगीत की स्थिति निरंतर हो सकती है।

सुख के लिये कार्यक्रम

(The Program for Happiness)

हमने देखा है कि स्वयं में संगीत की स्थिति ही सुख है और हमारे जीने का फैलाव चारों स्तरों पर है- मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व। सुख के लिये अब कार्यक्रम यह हैं कि हम इन चारों स्तरों पर व्यवस्था को समझें और उसके अनुसार सभी चारों स्तरों पर व्यवस्था में जीने को सुनिश्चित करने का प्रयास करें। इसे चित्र· 4-4 और 4-5 में दिखाया गया है।

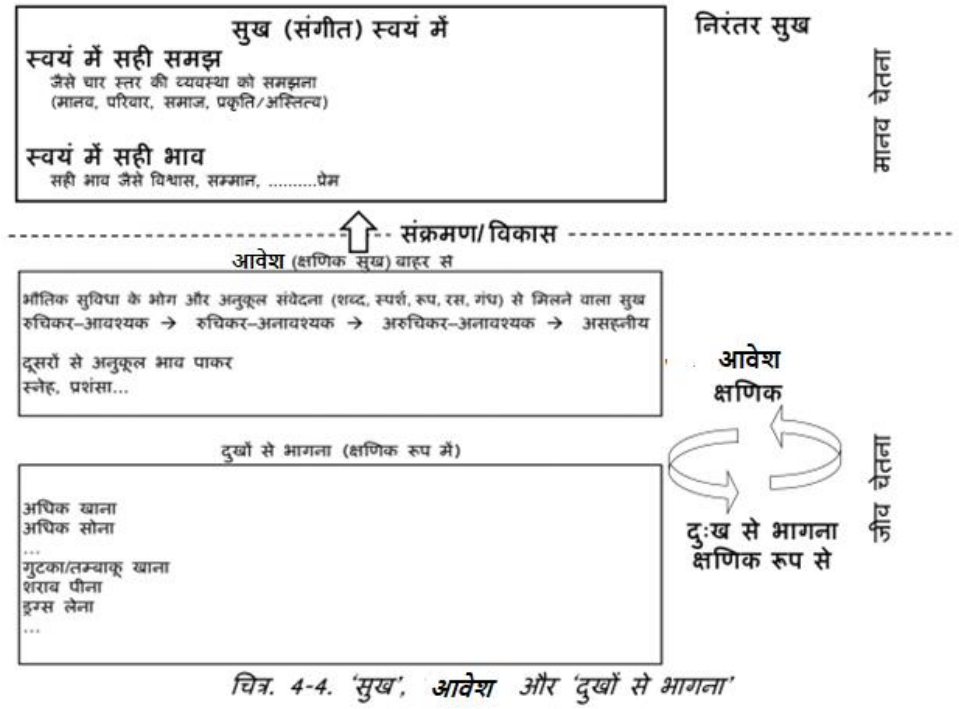

*चित्र. 4-4. 'सुख', **आवेश** और 'दुखों से भागना'*

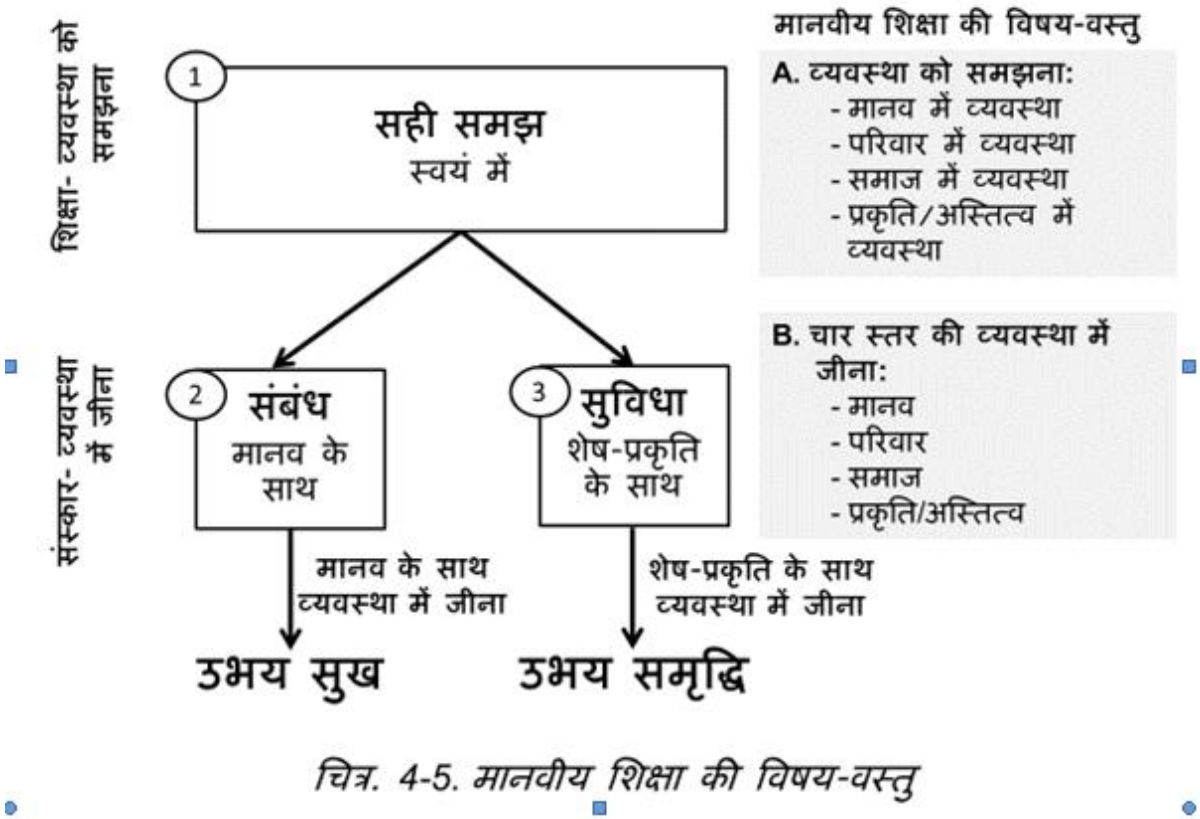

चित्र. 4-5. मानवीय शिक्षा की विषय-वस्तु

कार्यक्रम का सहज निष्कर्ष

(Natural Outcome of the Program)

हम यह देख पाते हैं कि व्यवस्था को समझना और व्यवस्था मे जीना ही सुख है। निष्कर्ष रूप में हमारी भागीदारी निम्न प्रकार से दिखती है:

- स्वयं में हमारी भागीदारी होगी- मानव के रूप में व्यवस्था में होना।
- परिवार में हमारी भागीदारी होगी- परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवस्था को सुनिश्चित करना।
- समाज में हमारी भागीदारी होगी- समाज में व्यवस्था सुनिश्चित करना।
- प्रकृति/अस्तित्व में हमारी भागीदारी होगी- प्रकृति/ अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ व्यवस्था को बनाये रखना।

इस अध्याय में हमने सुख, समृद्धि और उसकी निरंतरता को समझने का पुनः प्रयास किया।

अध्याय-5

मानव को स्वयं और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में समझना

(Understanding the human being as Co-existence of the Self and body)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

☞मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

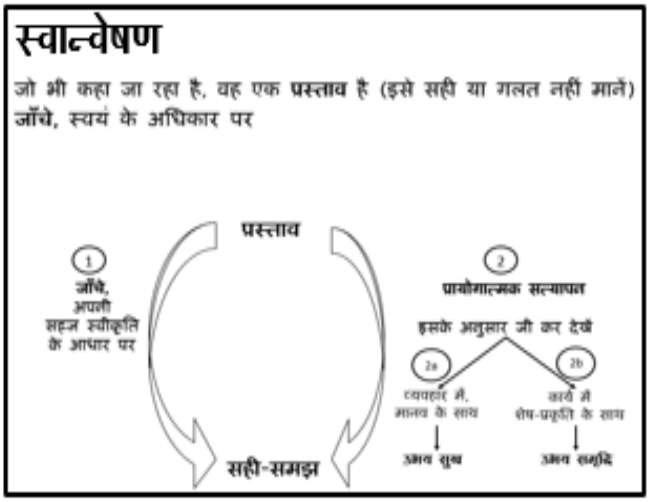

कक्षा 9,10 एवं 11 के अध्याय 5 में हमने देखा कि मानव स्वयं (मैं)और शरीर का सह-अस्तित्व है।' स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकताओं एवं उसकी पूर्ति को समझने का प्रयास किया था। इसी अध्याय में हमने स्वयं (मैं) और शरीर की क्रियाओं एवं अनुक्रियाओं का भी अध्ययन किया साथ ही यह भी देखा

कि स्वयं (मैं)चैतन्य इकाई और शरीर जड़ इकाई के रूप में है । हमने यह भी देखा की मानव को केवल शरीर मानना मुख्य भ्रम है यह भी जाना कि मानव के केंद्र में स्वयं (मैं) है।अब हम मानव के बारे में पुनः संक्षिप्त रूप में चर्चा करेंगे।

'स्वयं(मैं)' और शरीर के सह-अस्तित्व के रूप में मानव

(Human Being as Co-existence of the Self and the Body)

प्रस्ताव यह है कि **मानव, 'स्वयं(मैं)' और शरीर का सह-अस्तित्व है।**

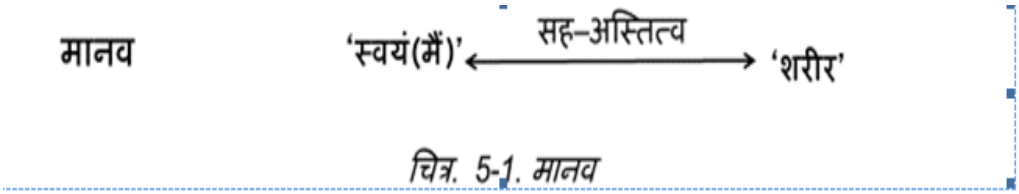

चित्र. 5-1. मानव

यहाँ 'मैं' का संदर्भ 'स्वयं' के लिये है न कि शरीर के लिये। 'स्वयं(मैं)' ही है जो संबंधों को पहचानता है, जो निर्णय लेता है कि क्या करना है और यही सुख या दुख को भी महसूस करता है। जब हम कहते हैं कि 'मैंने स्वादिष्ट भोजन खाया', तो यह देख सकते हैं कि भोजन का उपयोग शरीर के लिये हुआ और स्वाद 'स्वयं(मैं)' ने लिया।

'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकतायें

(The Needs of the Self and the Body)

'स्वयं(मैं)' और शरीर अलग-अलग हैं,इसे इनकी आवश्यकताओं के आधार पर समझा जा सकता है (चित्र 5-2 देखिये)।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान...)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन...)
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव है)	मात्रात्मक (सीमित मात्रा में)

चित्र. 5-2. मानव की आवश्यकतायें

|

'स्वयं(मैं)' की आवश्यकता सुख है। शरीर की आवश्यकता को देखें तो यह भौतिक सुविधा है। ये दोनों अलग-अलग प्रकार की आवश्यकतायें हैं और ये दोनों ही आवश्यक हैं; इसलिये मानव के लिये इन दोनों की अलग-अलग पूर्ति आवश्यक है।

आपको क्या लगता है कि किसी का एक तरह की आवश्यकता को दूसरे से पूरा कर सकते है ? उदाहरण के लिए यदि आपको बहुत स्वादिष्ट भोजन परोसा जाए लेकिन परोसते समय थाली को पटकते हुए तीखे स्वर में कहा जाए कि "ये ले खा"! तो क्या यह आपको स्वीकार होगा ? स्वादिष्ट भोजन से शरीर की आवश्यकता की पूर्ति तो हो जाएगी लेकिन इससे स्वयं (मैं) की आवश्यकता अर्थात् सम्मान की पूर्ति नहीं होगी।

आवश्यकताएँ- क्या ये सामयिक हैं या निरंतर?

(Needs – Are they Temporary or Continuous?)

'स्वयं(मैं)' से जुड़ी हुई आवश्यकतायें जैसे कि सम्मान, विश्वास, संबंध, सुख आदि; इन सभी की आवश्यकता समय के संदर्भ में निरंतर है। हम इनकी पूर्ति में क्षण भर की भी कोई बाधा नहीं चाहते। दूसरी तरफ शरीर से जुड़ी आवश्यकतायें जैसे कि भोजन, आवास, गाड़ी इत्यादि, इन सब की आवश्यकता सीमित समय के लिये होती है। यदि इनकी निरंतरता हो तो, ये हमारे लिये समस्या हो सकती है। हममे से कोई भी निरन्तर भोजन नहीं करना चाहता है न ही किसी कमरे मे निरन्तर रहना चाहता हैं।

आवश्यकताएँ - मात्रात्मक और गुणात्मक

(Needs – Quantitative and Qualitative)

इन दोनों के बीच के अंतर को समझने का दूसरा तरीका मात्रात्मक एवं गुणात्मक आधार पर हो सकता है। भोजन की आवश्यकता मात्रात्मक है। दूसरी तरफ सम्मान और विश्वास का भाव मात्रात्मक नहीं है। इस तरह की आवश्यकतायें गुणात्मक हैं।सुविधा की आवश्यकता शरीर से और सुख की आवश्यकता 'स्वयं(मैं)' से संबंधित है।

'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति

(Fulfilment of the Needs of the Self and the Body)

शरीर से जुड़ी हुई सभी आवश्यकताएं, सुविधा के रूप में हैं, जिनकी पूर्ति किन्हीं भौतिक-रासायनिक वस्तुओं के द्वारा ही हो सकती है। 'स्वयं(मैं)' से जुड़ी हुई सभी आवश्यकताएं भाव के रूप में हैं, जिनकी पूर्ति सही समझ और सही-भाव के द्वारा ही हो सकती है।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान....)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन....)
पूर्ति	सही-समझ और सही-भाव	भौतिक-रासायनिक वस्तु

चित्र. 5-3. मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति

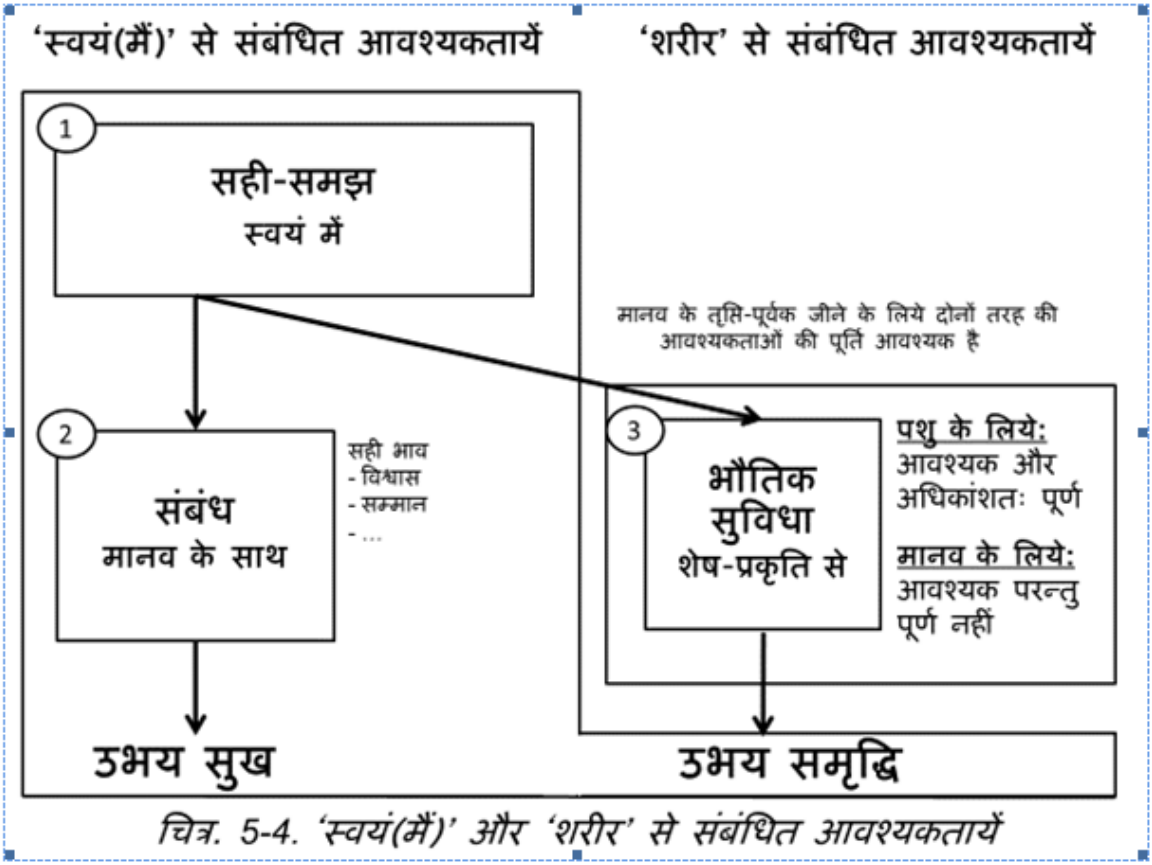

चित्र. 5-4. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' से संबंधित आवश्यकतायें

'स्वयं(मैं)' की आवश्यकताएँ निश्चित हैं

(Needs of the Self are Definite)

'स्वयं(मैं)' की आवश्यकतायें निश्चित होती हैं। एक बच्चे के लिये सुख वैसे ही आवश्यक है जैसे कि किसी बूढ़े व्यक्ति के लिये। दूसरे शब्दों में प्रत्येक 'स्वयं(मैं)' को सही-भाव और सही समझ की आवश्यकता है। यह शरीर की स्थिति या अवस्थाओं पर निर्भर नहीं करता है।

'स्वयं(मैं)' और शरीर की क्रियायें

(The Activities of the Self and the Body)

जब मानव को और गहराई से देखते हैं, तो हम मानव में चल रही क्रियाओं को भी देख पाते हैं। चित्र 5-5 को देखें।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
क्रियायें	इच्छा, विचार, आशा...	खाना, टहलना...
काल में	निरंतर	सामयिक

चित्र. 5-5. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की क्रियायें

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें इच्छा, विचार और आशा हैं। ये क्रियायें 'काल में निरंतर हैं। दूसरी तरफ, शरीर के द्वारा जो भी कार्य हम करते हैं जैसे खाना, चलना इत्यादि; ये सब काल में सामयिक हैं। हम इनको निरंतर नहीं कर सकते हैं।

'स्वयं(मैं)' और शरीर की अनुक्रिया

(The Response of the Self and the Body)

शरीर की अनुक्रिया, पहचानने और निर्वाह-करने पर आधारित है जबकि 'स्वयं(मैं)' की अनुक्रिया; जानने, मानने , पहचानने और निर्वाह-करने पर आधारित है।

जैसी वास्तविकता है, उसको संपूर्णता में वैसा ही समझना 'जानना' है। क्योंकि वास्तविकता निश्चित है, इसलिये 'जानना' भी निश्चित होगा।

मानव	'स्वयं(मैं)' ← सह अस्तित्व → 'शरीर'	
अनुक्रिया	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना	पहचानना, निर्वाह-करना

चित्र. 5-6. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' की अनुक्रिया

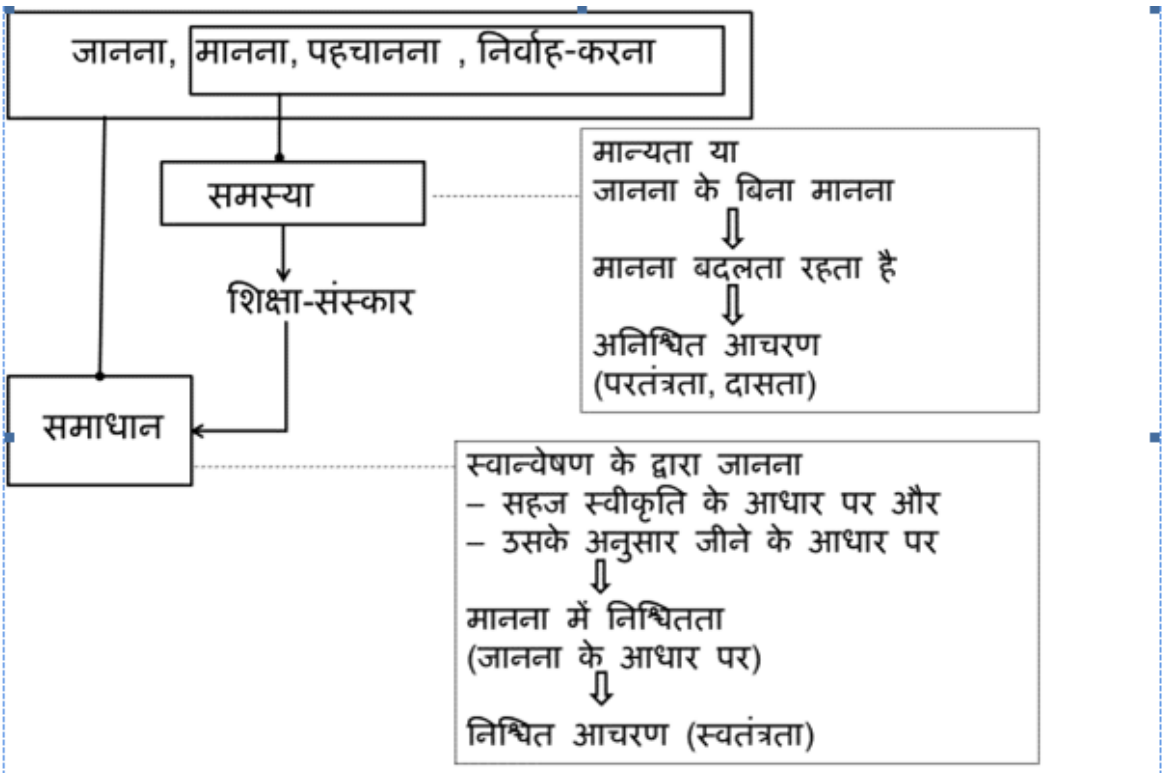

चित्र. 5-7. जानना के आधार पर अनुक्रिया या जानना के बिना मानना के आधार पर अनुक्रिया

'स्वयं(मैं)', चैतन्य इकाई और शरीर, जड़ इकाई के रूप में

(The Self as the Consciousness Entity, the Body as the Material Entity)

'स्वयं(मैं)' और शरीर की आवश्यकता, पूर्ति, क्रिया एवं अनुक्रिया पूर्णतः अलग-अलग हैं। अतः ये दो अलग प्रकार की वास्तविकतायें हैं। 'स्वयं(मैं)', जिसे जीवन भी कहते हैं, जो कि चैतन्य का क्षेत्र है जबकि शरीर, जड़ का क्षेत्र है।

मानव	'स्वयं (मैं)' ← सह-अस्तित्व → 'शरीर'	
आवश्यकता	सुख (जैसे सम्मान...)	भौतिक-सुविधा (जैसे भोजन...)
काल में	निरंतर	सामयिक
मात्रा में	गुणात्मक (भाव है)	मात्रात्मक (सीमित मात्रा में)
पूर्ति	सही समझ और सही भाव	भौतिक-रासायनिक वस्तु
क्रियायें	इच्छा, विचार, आशा...	खाना, टहलना...
काल में	निरंतर	सामयिक
अनुक्रिया	जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह-करना	पहचानना, निर्वाह-करना
	↓ चैतन्य	↓ जड़

चित्र. 5-8. मानव – 'स्वयं' (चैतन्य क्षेत्र) और 'शरीर' (जड़ क्षेत्र) का सह-अस्तित्व

मुख्य भ्रम - मानव को केवल शरीर मानना

(Gross Misunderstanding – Assuming Human Being to be only the Body)

मानव को केवल शरीर मानना ही मुख्य भ्रम है और इसी कारण सभी तरह की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास केवल सुविधाओं से करते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इससे मानव के जीने के विभिन्न स्तरों पर कई प्रकार के दुष्परिणाम आते हैं। जैसे एक तरफ तो अधिक से अधिक सुविधाओं के संग्रह के लिये प्राकृतिक स्रोतों का शोषण होता है, और दूसरी तरफ इस प्रक्रिया में मानव का भी शोषण होता है, क्योंकि उन्हें असीमित भौतिक आवश्यकताओं के लिए प्रतिस्पर्धा करने हेतु तैयार किया जाता है।

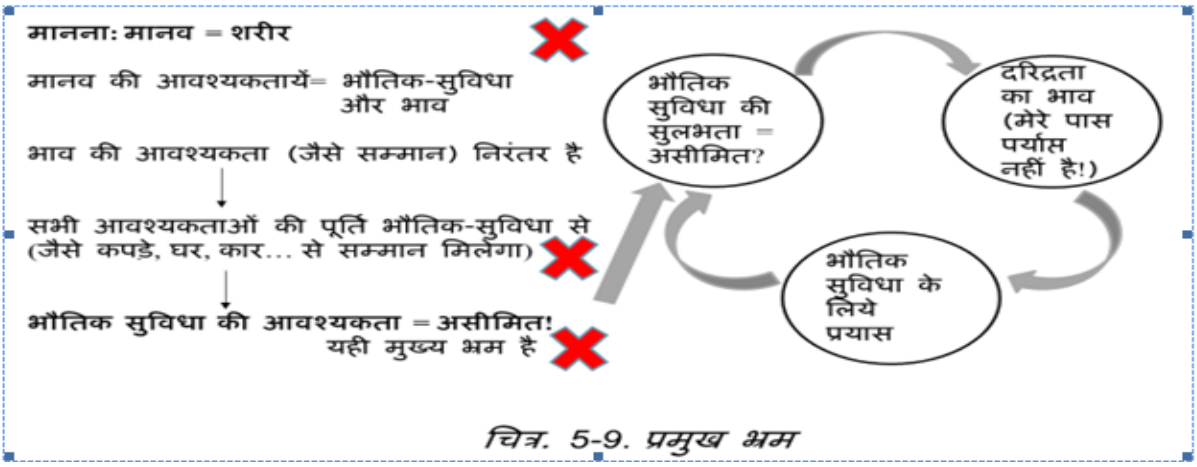

चित्र. 5-9. प्रमुख भ्रम

मानव के केंद्र में 'स्वयं(मैं)' है

(The Self is Central to the Human Being)

मानव को देखें तो इसमें स्वयं (चैतन्य) है, शरीर (जड़) है और दोनों का सह-अस्तित्व है।

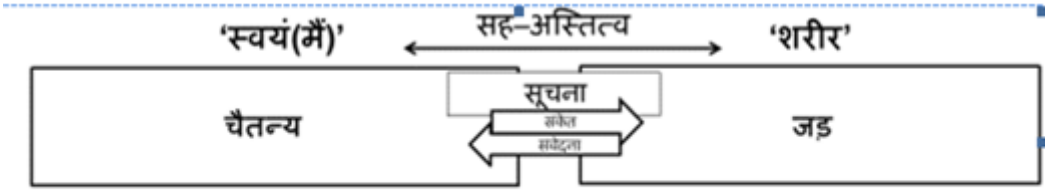

चित्र. 5-10. 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान

यह '**स्वयं(मैं)**' ही है जिसमें वास्तविकताओं को जानने की आवश्यकता और संभावना दोनों हैं- यह द्दष्टा (जानने वाला) है।

जब भी शरीर को सम्मिलित करने की आवश्यकता होती है तो 'स्वयं(मैं)', शरीर को निर्देश देता है और शरीर से संवेदनाओं को भी पढ़ता है ।अतः 'स्वयं(मैं)' ही निर्धारित करता है कि क्या करना है- यह कर्ता (निर्णय लेने वाला) है।'स्वयं(मैं)' ही सुख या दुख भोगता है- यह भोक्ता है।

इस तरह हम यह देख सकते हैं कि मानव के केंद्र में 'स्वयं(मैं)' है। शरीर का उपयोग तो एक यंत्र के रूप में होता है।

आशा है इस पूरी चर्चा के बाद आपका ध्यान स्वयं और शरीर के सह अस्तित्व की ओर बारीकी से गया होगा।

अध्याय-6
स्वयं में व्यवस्था- 'स्वयं(मैं)' को समझना
(Harmony in the Self – Understanding Myself)

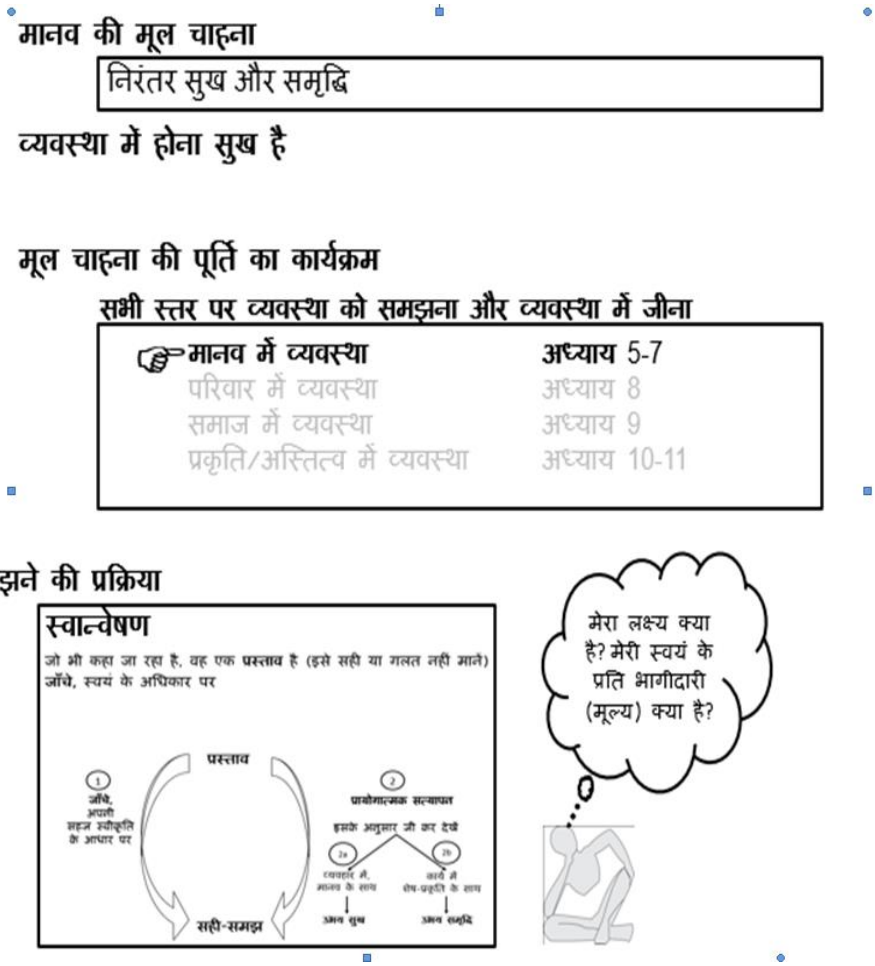

कक्षा 9,10, एवं 11 के अध्याय 6 "स्वयं में व्यवस्था- 'स्वयं(मैं)' को समझना" में हमने स्वयं (मैं) की क्रियाओं के बारे में विस्तार से अध्ययन किया और पाया कि स्वयं (मैं) की क्रियायें निरंतर हैं तथा इन क्रियाओं को संयुक्त रूप से कल्पनाशीलता कहा गया तथा यह भी देखा कि कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत मान्यता, संवेदना और सहज स्वीकृति है। हम यह भी देख पाए कि जब -जब कल्पनाशीलता मान्यता व संवेदना से प्रेरित होती है तो यह एक परतंत्रता की स्थिति है ,परंतु जब हमारी कल्पनाशीलता सहज स्वीकृति से प्रेरित होती है तब यह स्वतंत्रता की स्थिति है ।इस अध्याय में हम स्वयं की व्यवस्था पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें
(Activities of the self)

'स्वयं(मैं)' की क्रियाओं से आशय हमारी कल्पनाशीलता, हमारी निर्णय लेने की क्रिया, हमारी इच्छा, हमारे विचार, हमारी आशा इत्यादि से है।

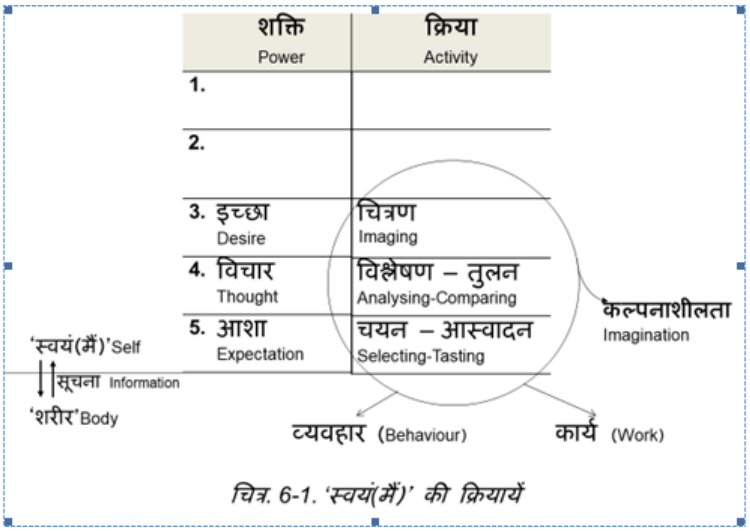

चित्र. 6-1. 'स्वयं(मैं)' की क्रियायें

इच्छा से तात्पर्य है 'जैसा आप होना चाहते हैं' उसका चित्रण। विचार इसके बारे में है कि इस इच्छा की पूर्ति कैसे करना है, ।आशा, आपके आस्वादन के आधार पर चयन करने की क्रिया है।

'स्वयं(मैं)' की क्रियायें निरंतर हैं

(Activities of the self are continuous)

हम में इच्छा की शक्ति है अर्थात् हम में चित्रण-क्रिया की क्षमता है, इसलिये चित्रण कर पाते हैं। हम में विचार की शक्ति है अर्थात् हम में विश्लेषण-क्रिया की क्षमता है, इसलिये विश्लेषण कर पाते हैं। हम में आशा की शक्ति है अर्थात् हम में चयन-क्रिया की क्षमता है, इसलिये चयन कर पाते हैं। यह शक्तियां हम में कभी भी समाप्त नहीं होती हैं, इसीलिये ये क्रियाएँ निरंतर हैं।आप में चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन* की क्रियायें सदैव चलती रहती हैं; भले ही आप इनके बारे में जागरूक हो या न हो; ये निरंतर हैं।

क्रियाओं का संयुक्त रूप - कल्पनाशीलता

(Activities Together Constitute Imagination)

जब आप इन क्रियाओं को एक साथ देखते हैं तो इसे कल्पनाशीलता कहते हैं। 'स्वयं(मैं)' में जो कुछ भी चल रहा है; उसे संयुक्त रूप में आसानी से देख सकते हैं; जिसे कल्पनाशीलता कह रहे हैं। कोई न कोई कल्पनाशीलता तो हर समय हम में चलती ही रहती है।

कल्पनाशीलता की अभिव्यक्ति व्यवहार और कार्य में

(Imagination gets Expressed in Behaviour and Work)

सभी इच्छायें, सभी निर्णय, सभी चयन, कल्पनाशीलता में ही होते हैं। यह मानव के साथ व्यवहार के रूप में और शेष-प्रकृति के साथ कार्य के रूप में व्यक्त होते हैं, जिसमें 'शरीर' का यंत्र के रूप में उपयोग होता है। कल्पनाशीलता, व्यवहार और कार्य से जुड़ती है। इस दृष्टि से कल्पनाशीलता (संग्रहित संस्कार) 'स्वयं(मैं)' के केंद्र में है।

कल्पनाशीलता की स्थिति

(State of Imagination)

यह कल्पनाशीलता बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे सभी निर्णय यहीं पर लिये जाते हैं ।हम जो भी महसूस करते हैं, सोचते हैं, और करते हैं, वह सब यहीं निर्धारित होता है। कल्पनाशीलता की स्थिति से हमें अपने जीवन के बारे में बहुत बारीकी से पता चल पाता है। यदि कल्पनाशीलता सुव्यवस्थित और संगीत में है, तो जीने में भी व्यवस्था होगी, अर्थात् जीना सुखमय होगा। दूसरी तरफ यदि कल्पनाशीलता अव्यवस्थित है तो जीना भी वैसा ही अव्यवस्थित होगा अर्थात् कभी सुख होगा और कभी दुख होगा।

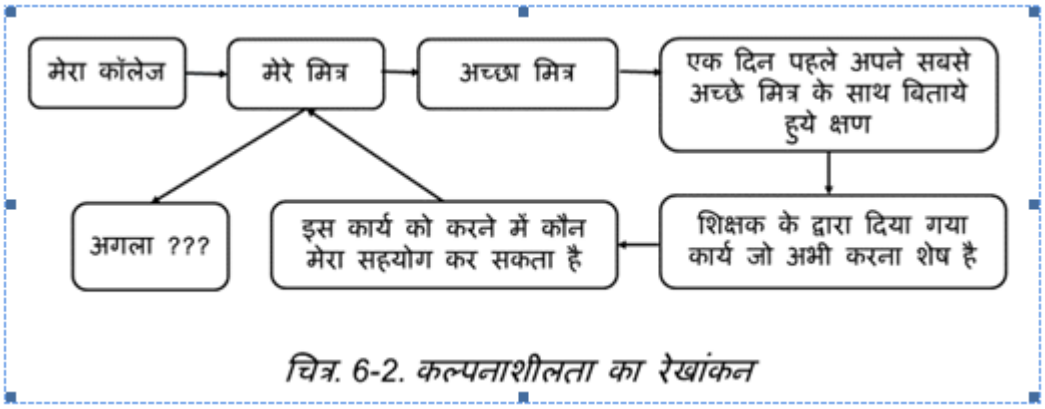

चित्र. 6-2. कल्पनाशीलता का रेखांकन

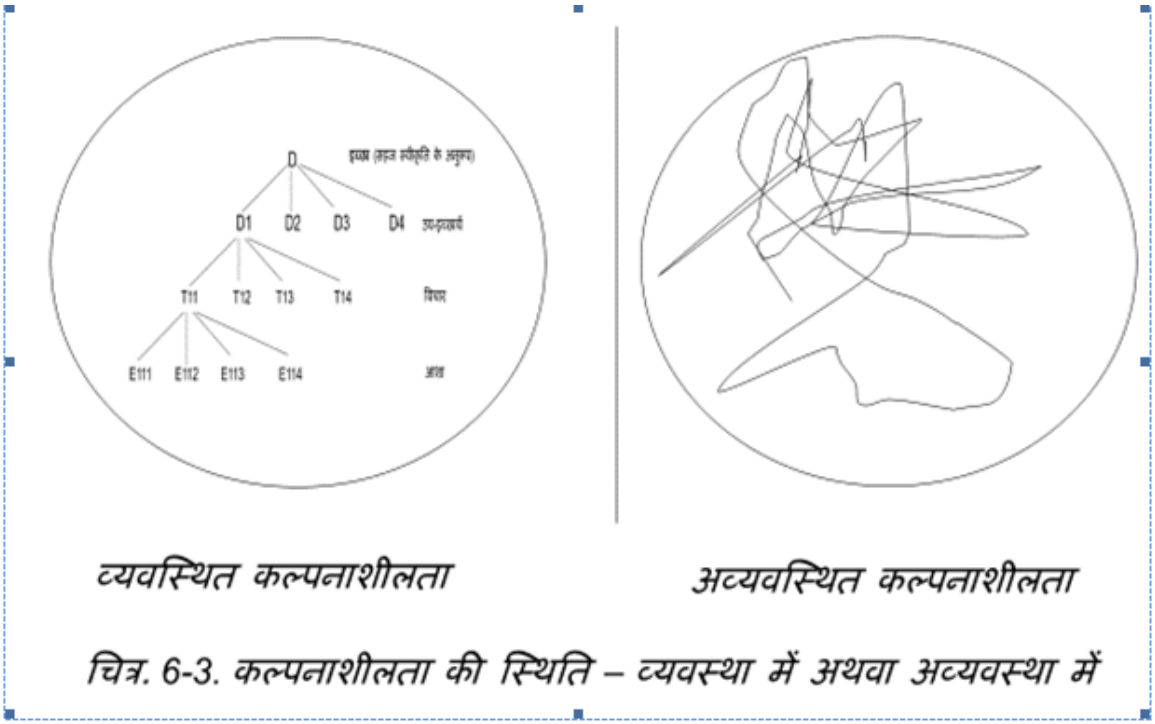

व्यवस्थित कल्पनाशीलता *अव्यवस्थित कल्पनाशीलता*

चित्र. 6-3. कल्पनाशीलता की स्थिति – व्यवस्था में अथवा अव्यवस्था में

कल्पनाशीलता के संभावित स्रोत- मान्यता, संवेदना और सहज-स्वीकृति

(Possible sources of Imagination - Preconditioning, Sensation and Natural Acceptance)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाले तीन संभावित स्रोत हैं- मान्यता, संवेदनायें और सहज-स्वीकृतियाँ।

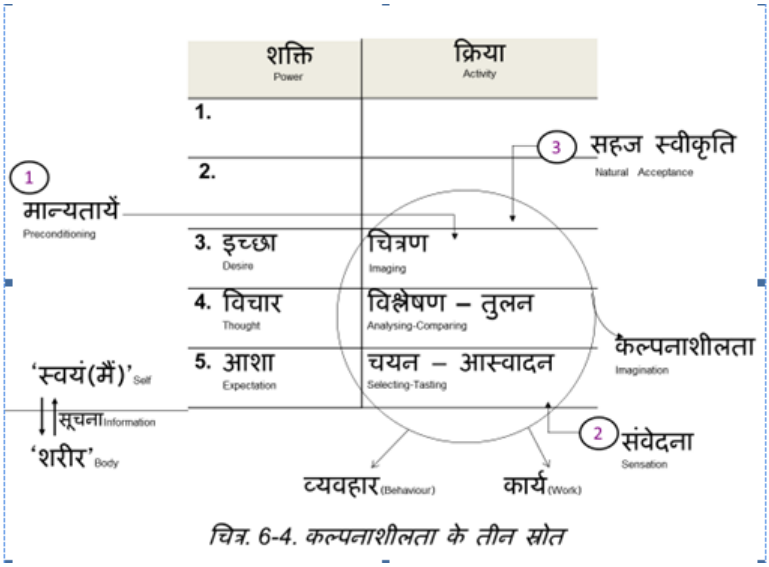

चित्र. 6-4. कल्पनाशीलता के तीन स्रोत

कल्पनाशीलता के प्रेरणा- स्रोत के रूप में मान्यतायें

(Preconditioning as a Source of Motivation for Imagination)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला एक प्रभावशाली स्रोत मान्यता है। मान्यता का अर्थ पूर्वाग्रह, सोच, अवधारणा, रीति-रिवाज, दृष्टि, कहावतें इत्यादि से है। इन्हें कोई व्यक्ति स्वयं चुनता है या परिवार, समाज में ये प्रचलित होती हैं और इनसे हमारी कल्पनाशीलतायें प्रभावित होती रहती हैं।

कल्पनाशीलता के दूसरे प्रेरणा-स्रोत के रूप में संवेदना

(Sensation as Another Source of Motivation for Imagination)

हमारी इच्छा और हमारी कल्पनाशीलता को प्रेरित करने वाला दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत संवेदना है। संवेदना एक तरह की सूचना है जिसे हमारा 'स्वयं(मैं)', हमारे 'शरीर' के पाँचों संवेदी तंत्र, जैसे ध्वनि (कानों के द्वारा), स्पर्श (त्वचा के द्वारा), रूप (आँखों के द्वारा), रस (जीभ के द्वारा), और गंध (नाक के द्वारा) से प्राप्त करता है।

कल्पनाशीलता के सर्वाधिक प्रामाणिक प्रेरणा-स्रोत के रूप में सहज-स्वीकृति

(Natural Acceptance as the Most Authentic Source of Motivation for Imagination)

कल्पनाशीलता को प्रेरित करने का तीसरा स्रोत हमारी सहज-स्वीकृति है। कुछ लोग इसे अपनी अंतरात्मा की आवाज या अंतःकरण भी कहते हैं। अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर स्व-सत्यापन करना तीसरा संभावित स्रोत है। वर्तमान में यह स्रोत, आप में कल्पनाशीलता को प्रेरित करने के सर्वाधिक प्रभावकारी स्रोत के रूप में हो भी सकता है या नहीं भी। लेकिन यही हमारी इच्छाओं और हमारी कल्पनाशीलताओं को सही रूप में प्रेरित करने वाला एक प्रामाणिक स्रोत है, जो हमेशा हम सभी में प्राकृतिक रूप से बना ही रहता है, चाहे हम इसका संदर्भ लें या न लें।

तीनों स्रोतों से प्रेरित कल्पनाशीलता के परिणाम – स्वतंत्रता या परतंत्रता?

(Consequences of Imagination from the three Sources- Self-organisation or Enslavement?)

जब कल्पनाशीलता, मान्यता या संवेदना के द्वारा प्रेरित होती है तो यह किसी बाह्य स्रोत के अधीन रहती है, यही परतंत्रता है। जब कल्पनाशीलता, सहज-स्वीकृति के द्वारा निर्देशित होती है तो यही 'स्वयं(मैं)' में संगीत (व्यवस्था) की स्थिति है, यही स्वतंत्रता है।

जब कल्पनाशीलता सहज-स्वीकृति के अनुरूप होती है, केवल तभी इसमें निश्चितता होती है और यह 'स्वयं(मैं)' में संगीत की तरफ बढ़ती है और जब यह मान्यताओं या संवेदनाओं के द्वारा प्रेरित होती है, तो इसमें अनिश्चितता होती है और अंतर्द्वंद या अव्यवस्था की तरफ बढ़ती है।

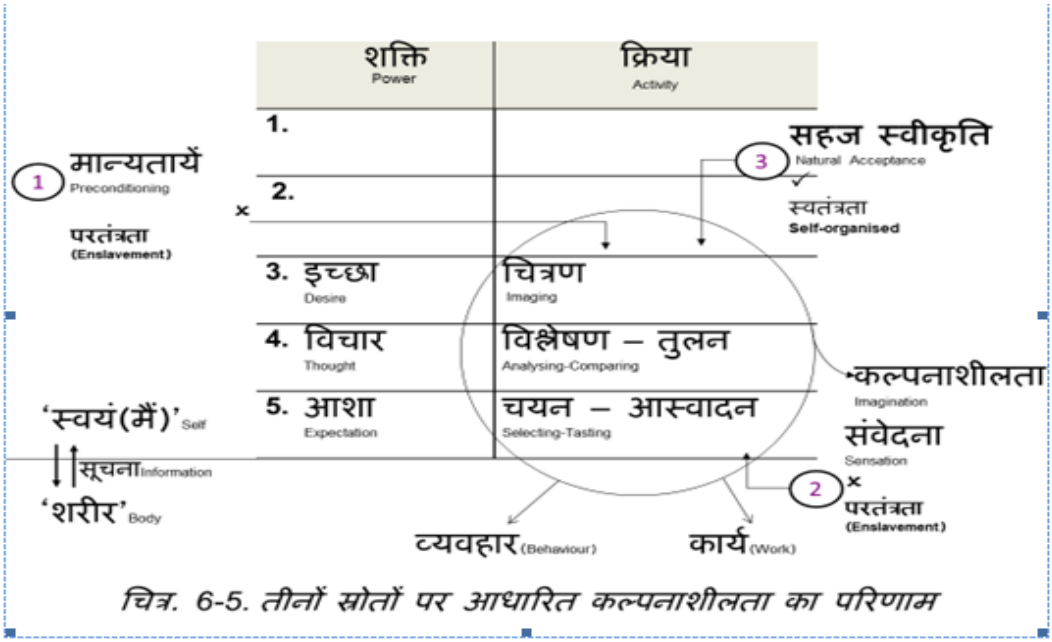

चित्र. 6-5. तीनों स्रोतों पर आधारित कल्पनाशीलता का परिणाम

आगे का मार्ग - स्व-अन्वेषण के माध्यम से 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था सुनिश्चित करना

(The Way Ahead – Ensuring Harmony in the Self by way of Self-exploration)

चूंकि सहज-स्वीकृति, संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व के लिये है, अतः जब कल्पनाशीलता (अर्थात् इच्छा, विचार, आशा) संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व से निर्देशित होती है तो 'स्वयं(मैं)' में संगीत होता है और यही 'स्वयं(मैं)' में सुख की स्थिति है। यदि हम यह सुनिश्चित कर सकें कि हमारी कल्पनाशीलता संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व से ही निर्देशित हो तो 'स्वयं(मैं)' में निरंतर संगीत होगा और 'स्वयं(मैं)', निरंतर सुख की स्थिति में रहेगा।

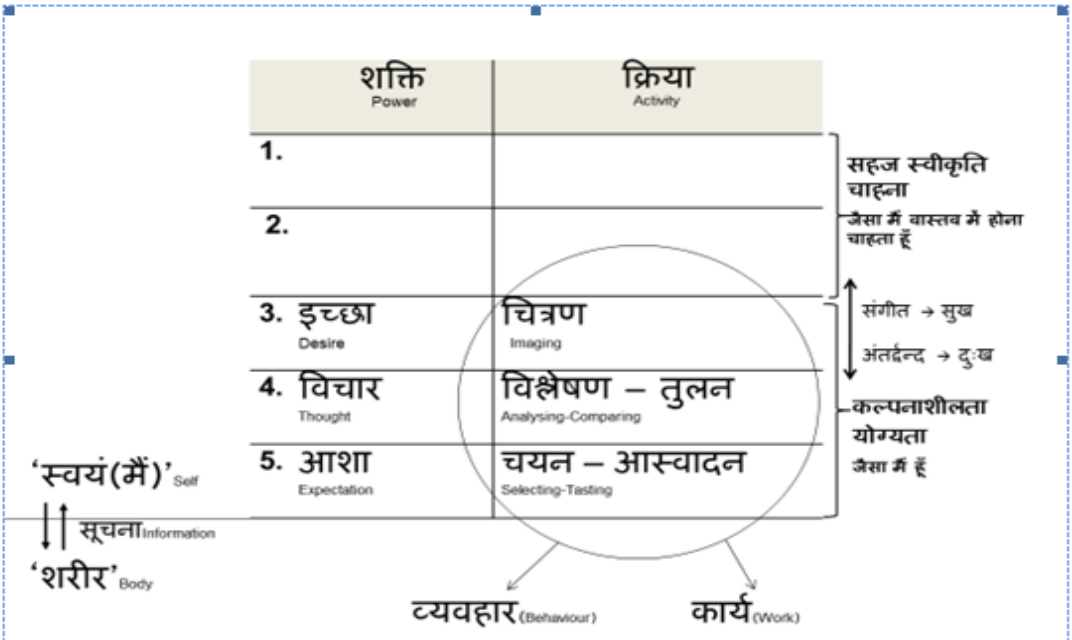

चित्र. 6-6. 'मेरी सहज स्वीकृति' और 'जैसा मैं हूँ' के बीच संगीत ही सुख है

'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को विस्तार से समझना

(Understanding Harmony in the Self in Detail)

संस्कार वो 'स्वीकृतियां' हैं जो हमारी सभी कल्पनाओं के योगफल से निर्धारित होती है।

संस्कार= ∑ [इच्छा(सभी) + विचार(सभी) + आशा(सभी)] से निर्धारित स्वीकृतियाँ।

समय के साथ इनमें नवीनीकरण होता रहता है किसी क्षण (**t**) पर एक तरह का संस्कार रहता है और अगले क्षण (**t+**1) पर हमारे संस्कारों में निम्नलिखित आधार पर परिवर्तन होता है:

संस्कार(t+1) = संस्कार(t)+ वातावरण(t)+ अध्ययन(t)

अगले क्षण के संस्कार सहज-स्वीकृति के अनुरूप हो भी सकते हैं और नहीं भी। यदि हम अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर स्व-अन्वेषण कर रहे हैं, तो इससे नवनिर्मित संस्कार सद्भाव पूर्ण होंगे अर्थात् संगीत में होंगे और व्यवस्था में होंगे।

आशा है इस पूरी चर्चा के बाद आपका ध्यान स्वयं की व्यवस्था की ओर बारीकी से गया होगा।

अध्याय-7

'शरीर' के साथ 'स्वयं(मैं)' की व्यवस्था - स्वास्थ्य और संयम को समझना

(Harmony of the self with the Body - Understanding Self-regulation and Health)

कक्षा 9,10 एवं 11 के अध्याय 7 में हमने यह समझने का प्रयास किया कि मानव स्वयं (मैं) और शरीर (जड़) का सह-अस्तित्व है। मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं(मैं)' ही है।शरीर' एक स्व-व्यवस्थित, जड़ इकाई है, जिसका उपयोग 'स्वयं(मैं)' यंत्र या उपकरण के रूप में करता है। इस स्पष्टता के साथ 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी को स्वीकारता है। जिम्मेदारी का यह भाव, संयम का भाव कहलाता है। इसका अध्ययन करने से यह भी पता चलता है कि भौतिक-सुविधा 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग (स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हेतु) के लिए सीमित मात्रा में आवश्यक है, इस स्पष्टता के साथ अब हम समृद्धि का अर्थ समझ सकते हैं। कक्षा 12 में हम पुनरावर्ति करते हुए समग्र मानव स्वास्थ्य के कार्यक्रम के बारे में अध्ययन करेंगे।

यदि हम मानव को देखें तो इसमें 'स्वयं' (चैतन्य) है, 'शरीर' (जड़) है; एवं यह 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। 'स्वयं(मैं)', अपनी और 'शरीर' दोनों की आवश्यकता पूर्ति का उत्तरदायित्व निभाता है एवं दोनों इकाईयों के बीच सह-अस्तित्व बना रहता है।

'स्वयं(मैं)' में निरंतर सुख पूर्वक जीने की आशा है, जो कि इसकी आवश्यकता भी है। इसकी पूर्ति 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था को सुनिश्चित करके होती है, इसके लिये 'स्वयं(मैं)' में सही समझ और सही-भाव को विकसित करना आवश्यक है। इस प्रक्रिया में 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' का आवश्यकतानुसार यंत्र की तरह प्रयोग करता है।

पिछले अध्याय में हमने 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था के बारे में चर्चा की थी। 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था के साथ ही यह, 'शरीर' के साथ व्यवस्था को बनाए रख पाता है। इस अध्याय में हम 'स्वयं(मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था पर चर्चा करेंगे। इससे समृद्धि को भी विस्तार पूर्वक समझने में सहायता मिलेगी।

'स्वयं(मैं)' दृष्टा-कर्ता-भोक्ता के रूप में ('शरीर' एक यंत्र के रूप में)

(The Self as the Seer-Doer-Enjoyer (Body as an Instrument))

मानव के अस्तित्व के केंद्र में 'स्वयं(मैं)' ही है। यही दृष्टा है (समझने वाला) यही कर्ता है (निर्णय लेने वाला) यही भोक्ता है (भोगने वाला) सुख या दुख महसूस करने वाला । 'स्वयं (मैं)' की आवश्यकता निरंतर सुख के रूप में सभी स्तरों पर अर्थात् मानव , परिवार , समाज और प्रकृति। अस्तित्व में व्यवस्था को समझने और व्यवस्था में जीने से सुनिश्चित होता है।

'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित प्रणाली और 'स्वयं(मैं)' के एक यंत्र के रूप में

(Body as a Self-organised System and an Instrument of the Self)

'शरीर' एक स्व-व्यवस्थित, जड़ इकाई है, जिसका उपयोग 'स्वयं(मैं)' यंत्र या उपकरण के रूप में करता

है। इस स्पष्टता के साथ 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी को स्वीकारता है। जिम्मेदारी का यही भाव, संयम का भाव कहलाता है।

'स्वयं(मैं)' की 'शरीर' के साथ व्यवस्था

(Harmony of the Self with the Body)

संयम के भाव के साथ 'स्वयं(मैं)', 'शरीर' के साथ व्यवस्था को सुनिश्चित करने के योग्य हो पाता है जिससे 'शरीर' में स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है, अर्थात् 'शरीर' 'स्वयं(मैं)' के अनुसार कार्य कर पाता है और 'शरीर' के अंग-प्रत्यंग में व्यवस्था बनी रह पाती है।

संयम एवं स्वास्थ्य के लिये कार्यक्रम

(Programme for self-regulation and Health)

संयम और स्वास्थ्य के लिये निम्नलिखित कार्यक्रम हैं-

1a· आहार	1b· विहार
2a· श्रम	2b· व्यायाम
3a· आसन	3b· प्राणायाम
4a· औषधि	4b ·चिकित्सा

'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच व्यवस्था के प्रकाश में समृद्धि की पुनरावृत्ति

(Revisiting Prosperity in the Light of the Harmony between the Self and the Body)

भौतिक-सुविधा 'शरीर' की आवश्यकता है, इसलिये भौतिक-सुविधा का उत्पादन, संरक्षण और सदुपयोग (स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हेतु) मानव के कार्यक्रम का एक भाग है।

भौतिक-सुविधा 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग (स्वयं के लक्ष्य की पूर्ति हेतु) के लिये सीमित मात्रा में आवश्यक है, इस स्पष्टता के साथ अब हम समृद्धि का अर्थ समझ सकते हैं।

आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने का भाव ही समृद्धि है ('शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये)।हम यह भी समझ सकते हैं कि समृद्धि के लिये निम्नलिखित की आवश्यकता है:

1.आवश्यक भौतिक-सुविधा की मात्रा की पहचान- सही समझ के द्वारा

2.आवश्यकता से अधिक भौतिक-सुविधा के उत्पादन या उपलब्धता को सुनिश्चित करना- सही कौशल के द्वारा

मेरे 'स्वयं(मैं)' और मेरे 'शरीर' के प्रति मेरी भागीदारी (मूल्य)

(My Participation (Value) Regarding my Self and my Body)

'स्वयं(मैं)' के लिये मेरी भागीदारी (मूल्य) श्रेष्ठता के लिये प्रयास करना है, अर्थात् अपने जीने के सभी स्तरों में व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना है।

ये मूल्य सुख, शांति, संतोष एवं आनंद के रूप में व्यक्त होते हैं।

मेरी भागीदारी (मूल्य), मेरे 'शरीर' के साथ निम्नलिखित विधियों से व्यवस्था सुनिश्चित करता है:

- 'स्वयं(मैं)' में संयम के भाव को सुनिश्चित करना
- 'शरीर' का पोषण, संरक्षण और सदुपयोग को सुनिश्चित करना
- उपरोक्त के लिये आवश्यकता से अधिक भौतिक-सुविधा का उत्पादन या उपलब्धता को सुनिश्चित करना

इन तीनों को सुनिश्चित करने से मेरा 'शरीर' निरंतर व्यवस्था में रह पाता है। यही मेरे 'शरीर' के साथ मेरी भागीदारी (मूल्य) है।

यह मूल्य संयम के भाव के रूप में व्यक्त होता है।

अध्याय-8

परिवार मे व्यवस्था- मानव-मानव संबंधों में मूल्य को समझना

(Harmony in the Family – Understanding Values in Human-Human Relationship)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
☞ **परिवार में व्यवस्था**	**अध्याय 8**
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

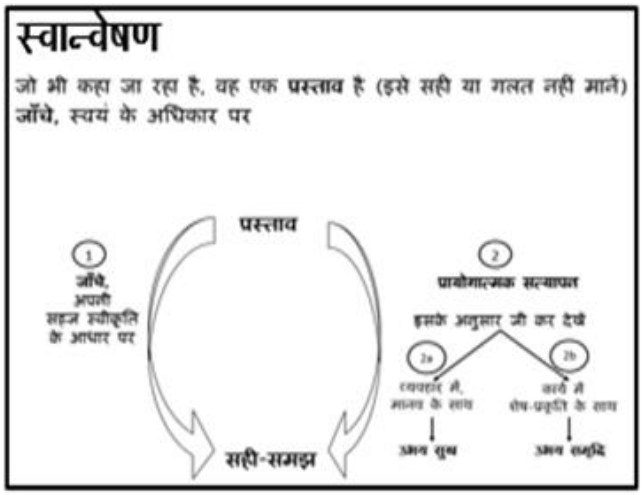

कक्षा 9 में अध्याय 8 में हमने परिवार में व्यवस्था का अध्ययन शुरू किया था और सम्बन्ध में सहज स्वीकृत भावों को समझना शुरू किया था। इस क्रम में हमने विश्वास, सम्मान और स्नेह के भाव का अध्ययन किया था। यह दिखता है कि विश्वास का भाव हर सम्बन्ध का आधार है। जब मैं यह देख पाता हूँ कि दूसरा सहज रूप से मुझे सुखी करना चाहता है तो मैं दूसरे का सम्मान कर पाता हूँ, उसका सही आंकलन कर पाता हूँ। विश्वास और सम्मान के भाव के साथ ही दूसरे को सम्बन्धी के रूप में स्वीकार

पाता हूँ, अर्थात् स्नेह के भाव के साथ जुड़ पाता हूँ।कक्षा 10 में अध्याय 8 में हमने अन्य भाव ममता, वात्सल्य, श्रद्धा, गौरव, कृतज्ञता तथा प्रेम (पूर्णमूल्य) का अध्ययन किया। हमने देखा कि प्रेम,सभी के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव है।यह एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से जुड़े होने की पहचान से और उनके बीच संबंध की स्वीकृति से प्रारंभ होता है, जो सहज रूप से सभी मानव तक और फिर प्रकृति की प्रत्येक इकाई तक विस्तारित होता चला जाता है।जब हम सम्बन्धों में जीते हुए इन भावों का निर्वाह करते हैं तो न्याय होता है और हम देख सकते हैं कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति हर क्षण, हर पल संबंध में न्याय चाहता ही है। हमने कक्षा 11 में इन भावों की पुनरावृत्ति की थी और यहाँ संक्षेप मे पुनरावृत्ति कर रहे हैं।

मानव-मानव परस्परता में जीने की मूल इकाई-परिवार

(Family as the Basic Unit of Human Interaction)

हमारे संबंधपूर्वक जीने की योग्यता का विकास परिवार में ही शुरू होता है। हमारे जीवन के प्राथमिक कुछ वर्ष, जिन्हें हम अपने जीवन के निर्माणाधीन वर्ष कहते हैं, परिवार में ही बीतता है। परिवार वह जगह है जहाँ पर जीते हुये हम परिवार के बड़े-बुजुर्गों, भाई-बहनों, पड़ोसियों और मित्रों के द्वारा, अपने संस्कारों का महत्वपूर्ण भाग ग्रहण करते हैं। परिवार हमारी समझ के सत्यापन के लिये भी एक उपयुक्त स्थान है।परिवार, मानव संगठन की मूल इकाई है। यह व्यवस्था एवं संबंध में जीने के लिये एक अभ्यास स्थली भी है।

परिवार में व्यवस्था का आधार - संबंधों में भाव

(Feeling of Relationship as the Basis for Harmony in the Family)

परिवार में व्यवस्था का प्राथमिक रूप, एक सदस्य का दूसरे सदस्य के साथ संबंधों मे निर्वाह है। संबंधों में निर्वाह के लिये हमें संबंध को समझना आवश्यक है।

संबंधों को समझना

(Understanding Relationship)

संबंधहै-

- एक' स्वयं (मैं 1)' और दूसरे 'स्वयं (मैं2)' के बीच है।
- संबंध में भाव है- एक' स्वयं(मैं 1)' में दूसरे 'स्वयं(मैं2)' के लिये
- इन भावों को पहचाना जा सकता है–ये निश्चित हैं
- इन भावों के निर्वाह और इनके सही-मूल्यांकनसे उभय-सुख होता है

संबंधों में सहज-स्वीकार्य भाव (मूल्य) – नौ हैं और उन भावों के निर्वाह और इनके सही मूल्यांकन से उभय-सुख होता है।

(Fulfilment of feelings in relationship and their evaluation leads to mutual happiness)

नौ भाव इस प्रकार हैं-

- विश्वास (आधार मूल्य)
- सम्मान
- स्नेह
- ममता
- वात्सल्य
- श्रद्धा
- गौरव
- कृतज्ञता
- प्रेम (पूर्ण मूल्य)

संबंध के बारे में महत्वपूर्ण बिन्दु

(Salient Points regarding Relationship)

- संबंध और व्यवस्था में जीने के लिये 'परिवार' मानवीय संगठन की मूल इकाई है।
- संबंधों में सही-सही निर्वाह के लिये संबंध को समझना आवश्यक है। संबंध को बिना समझे सिर्फ मानना के आधार पर इसका ठीक-ठीक निर्वाह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता।
- संबंध पहले से हैं ही। संबंध एक स्वयं(मैं$_1$) और दूसरे स्वयं(मैं$_2$) के बीच होता है। हम संबंधों में जुड़े हुये ही रहते हैं चाहे हम इन्हें पहचान पायें या न पहचान पायें। जब हम संबंधों को पहचान पाते हैं तो इनको स्वीकार भी पाते हैं और इनके निर्वाह के बारे में सोच भी पाते हैं। जब हम संबंधको नहीं समझते तब भी संबंध तो रहता ही हैं बस हम इन्हें देख नहीं पाते और न ही स्वीकार पाते हैं, अतः हम संबंधों के निर्वाह में सफल नहीं हो पाते।
- परिवार में ज्यादातर दुख संबंधों में ठीक-ठीक निर्वाह न हो पाने के कारण है; भौतिक सुविधाओं की कमी के कारण कम है। संबंधों में मूल समस्या भावों के अभाव के कारण अधिक हैं, न कि भौतिक सुविधाओं की कमी के कारण। कोई भी सुविधा,भाव के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकती।
- संबंधों का आधार भाव है- एक स्वयं(मै$_1$) में दूसरे स्वयं(मैं$_2$) के लिये। भाव 'स्वयं(मैं)' में होते हैं न कि 'शरीर' में। संबंधों के निर्वाह में भाव ही मौलिक हैं।
- ये भाव निश्चित होते हैं। अतः इन्हें समझ सकते हैं। संबंधों में कुल नौ सहज-स्वीकार्य भाव हैं। विश्वास (आधार मूल्य) से लेकर प्रेम (पूर्ण मूल्य) तक।
- जब हम 'स्वयं(मैं)' में इन सहज-स्वीकार्य भावों को सुनिश्चित कर पाते हैं; दूसरे से साझा कर पाते हैं;और इन भावों का सही-सही मूल्यांकन कर पाते हैं तब उभय-सुख सुनिश्चित होता है।

मानव-मानव संबंधों में आधार मूल्य- विश्वास

Foundation Values in Human-Human Relationship- Trust

विश्वास-आधार मूल्य

(Trust as the Foundation Value)

विश्वास का आशय है आश्वस्त होना अर्थात् दूसरा मेरे सुख और समृद्धि के अर्थ में है, ऐसा स्पष्ट होना। जब आप में इस बात की स्पष्टता होती है कि दूसरा आपको सुखी और समृद्ध करना चाहता है तो क्या आप उसके प्रति आश्वस्त महसूस करते हैं?

विश्वास से संबंधित मुख्य बिंदु

(Salient Points regarding Trust)

- विश्वास का अर्थ है,आश्वस्त होना अर्थात् यह स्पष्टता होना कि दूसरे की चाहना (सहज-स्वीकृति) मुझे सुखी और समृद्ध करने के अर्थ में है।जब मैं स्पष्ट रूप से यह देख पाता हूँ कि मेरी चाहना (सहज-स्वीकृति) स्वयं को सुखी और समृद्ध करने के साथ-साथ दूसरों को भी सुखी और समृद्ध करने की है तब मैं यह निष्कर्ष निकाल पाता हूँ कि स्वयं के स्तर पर दूसरा भी मेरे जैसा ही है और उसकी चाहना (सहज-स्वीकृति) भी मेरे जैसी ही है।
- मैं दूसरे को अपने जैसा स्वीकार पाता हूँ। दूसरा मेरे जैसा ही है - हमारी चाहना एक जैसी है, मेरी ही तरह उसकी योग्यता में भी कमी हो सकती है।
- चाहना पर विश्वास के साथ मैं दूसरों के साथ संबंध महसूस कर पाता हूँ और इसके आधार पर दोनों की वर्तमान योग्यता का आंकलन कर कार्यक्रम बना पाता हूँ। चाहना पर विश्वास के साथ मैं दूसरों को आश्वस्त करने का प्रयास भी कर पाता हूँ। चाहना पर विश्वास संबंधों में परस्पर-विकास का प्रारंभिक बिंदु भी है।
- संबंध का आधार विश्वास का भाव है। इस भाव के अभाव में हम एक दूसरे के साथ संबंध महसूस नहीं कर पाते जिससे संबंध बनते–बिगड़ते रहते हैं। संबंधों में सामान्यतः यह गलती होती रहती है कि हम अपना आंकलन अपने चाहना के आधार पर करते हैं और दूसरों का आंकलन उनकी योग्यता के आधार पर करते हैं।ऐसा करते हुये हम यह मान लेते हैं कि हम अच्छे व्यक्ति हैं और समस्यायें तो दूसरों में है।

मानव-मानव संबंधों में मूल्य- सम्मान

(Human-Human Relationship- Respect)

सम्मान- सही आंकलन

(Respect as Right Evaluation)

विश्वास के भाव की स्पष्टता के बाद, हमने सम्मान के भाव को समझा था हम ने यह भी देखा कि हम स्वयं में सम्मान का भाव कब महसूस करते हैं और दूसरों का सम्मान किस प्रकार से करते हैं

सही आंकलन ही सम्मान है।

गलत आंकलन --अधिमूल्यन, अवमूल्यन या अमूल्यन अपमान है।

(Over Evaluation, Under Evaluation and Otherwise Evaluation Leading to Disrespect)

अधिमूल्यन-वास्तविकता जैसी है उससे अधिक आंकलन करना

अवमूल्यन-वास्तविकता जैसी है उससे कम आंकलन करना

अमूल्यन-वास्तविकता जैसी है उससे अन्यथा आंकलन करना

सम्मान की संपूर्ण वस्तु - हमारी परस्पर पूरकता है

(Complete Content of Respect – We are Complementary to Each Other)

यदि हम 'स्वयं(मैं)' में देखें तो लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता के साथ-साथ हममें योग्यता भी है। योग्यता का अर्थ है कि हमने अपनी क्षमता को कितना क्रियान्वित कर लिया है।ऐसा हो सकता है कि कोई एक व्यक्ति अपनी क्षमता को अधिक क्रियान्वित कर पाया हो, जबकि दूसरा व्यक्ति उसकी तुलना में कम कर पाया हो। अतः योग्यता के अर्थ में हम सभी एक समान ही हो यह आवश्यक नहीं है; योग्यता हम सब की अलग-अलग हो सकती है।

हमारा लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता एक जैसी है, यह समझने के साथ हम अपनी योग्यताओं के इस अंतर का उपयोग एक दूसरे के विकास के अर्थ में कर सकते हैं। इस तरह से हम एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं।इसलिये अब यह देख सकते हैं कि "दूसरा मेरे जैसा है और हम एक दूसरे के परस्पर-पूरक हैं" यही सम्मान संपूर्ण वस्तु है।

हम एक दूसरे के विकास के लिये संयुक्त कार्यक्रम बना कर अपनी इस परस्पर-पूरकता को परिभाषित कर सकते हैं और इसका निर्वाह भी कर सकते हैं,जैसे कि यदि मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा है और किसी दूसरे व्यक्ति ने उसे समझ लिया है तो मैं वह समझने के लिये दूसरे की मदद ले सकता हूँ। इसी तरह से यदि मैंने कुछ समझ लिया है और दूसरा नहीं समझ पा रहा है तो मैं समझने में उसका सहयोग कर सकता हूँ। इस प्रकार, योग्यता का यह अंतर आपस में भेद का कारण न बनकर हमारे लिये परस्पर-पूरकता का अवसर बन जाता है।

आइये इस परस्पर-पूरकता को विस्तार से समझते हैं:

- यदि दूसरा मुझसे अधिक समझदार और जिम्मेदार है तो मैं उससे समझने के लिये तत्पर रहता हूँ।
- यदि मैं दूसरे से अधिक समझदार, जिम्मेदार हूँ तो बिना किसी शर्त उसके व्यवहार से आहत हुये बिना, अपनी समझ के आधार पर उसके साथ जिम्मेदारी पूर्वक जीता हूँ और जब दूसरा मेरे जिम्मेदारी पूर्वक जीने से आश्वस्त हो जाता है और मुझसे समझने को तत्पर होता है तब मैं उसका समझने में सहयोग करता हूँ। जब तक दूसरा संबंध में मेरे जीने से आश्वस्त नहीं हो पाता मैं उसे समझाने का प्रयास नहीं करता।

सम्मान से संबंधित मुख्य बिंदु

(Salient Points regarding Respect)

- सम्मान का आशय, सही मूल्यांकन है (स्वयं के आधार पर लक्ष्य, कार्यक्रम, क्षमता एवं योग्यता का)। हम लक्ष्य, कार्यक्रम और क्षमता में एक जैसे हैं एवं योग्यता के स्तर पर एक दूसरे के पूरक हैं। मैं अपनी इस परस्पर पूरकता को, निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर पाता हूँ:
- यदि दूसरा मुझसे अधिक समझदार, जिम्मेदार है तो मैं उससे समझने के लिये तत्पर रहता हूँ और अपनी तरफ से इसी अर्थ में प्रयास करता हूँ।
- यदि मैं दूसरे से अधिक समझदार, जिम्मेदार हूँ तो

- *मैं दूसरे के साथ बिना किसी शर्त उसके व्यवहार में होने वाली गलतियों से विचलित हुये बिना ही, उसके साथ जिम्मेदारी से जीता हूँ। जिससे दूसरा मेरे साथ संबंध में सहज हो पाता है और समझने को तत्पर हो पाता है। कई बार इसमें लम्बा समय भी लग सकता है।*
- *मैं दूसरे को समझने में सहायता करने के लिये प्रतिबद्ध हूँ (जब दूसरा संबंध में आश्वस्त हो जाता है तभी समझाने में सहयोग करता हूँ न कि इससे पहले)। संवाद केवल तभी संभव है, जब दूसरा संबंध में आश्वस्त हो और मुझे सुनने के लिये तैयार हो।*

- अधिमूल्यन, अवमूल्यन या अमूल्यन अपमान है और शरीरगत (आयु, लिंग, वंश, शारीरिक बल), सुविधागत (धन, पद) और मान्यतागत (वाद, संप्रदाय, सूचना) भेद भी अपमान है। अपमान की छोटी-छोटी घटनाओं के परिणाम बहुत दीर्घकालिक हो सकते हैं, जैसे एक दूसरे से बात न करने से शुरू होकर विरोध, संघर्ष, संबंध-विच्छेद, तलाक, और यहाँ तक की युद्ध के कारण भी बन सकते हैं।
- जब मैं 'स्वयं(मैं)' की केन्द्रीय भूमिका को देख पाता हूँ, तो अपने साथ-साथ दूसरे का भी मूल्यांकन 'स्वयं' के आधार पर ही करता हूँ, न कि शरीर, सुविधा या मान्यता के आधार पर।

मानव-मानव संबंधों में मूल्य- स्नेह, ममता और वात्सल्य

(Human-Human Relationship- Affection, Care and Guidance)

स्नेह

(Affection)

दूसरे को संबंधी के रूप मे स्वीकारने का भाव 'स्नेह' है। (Affection is the feeling of being related to the other)

ममता और वात्सल्य

(Care and Guidance)

अब हम यह देख सकते हैं कि जब हम में स्नेह का भाव होता है, तो संबंध में निर्वाह के लिये स्वयं में जिम्मेदारी और निष्ठा सहज ही आ जाती है। यही ममता और वात्सल्य के भाव के रूप में परिलक्षित होती है।

ममता, अपने संबंधी के शरीर के पोषण, संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है। (Care, is the feeling to nurture and protect the body of our relative.)

वात्सल्य, अपने संबंधी के 'स्वयं(मैं)' में सही समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने के प्रति जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है। (Guidenace, is the feeling of ensuring right understanding and feelings in the self of my relative.)

स्नेह, ममता और वात्सल्य से संबंधित मूल बिन्दु:

(Salient Points regarding Affection, Care and Guidance)

- स्नेह, दूसरे के साथ संबंध की स्वीकृति का भाव है। यदि किसी व्यक्ति में दूसरे के प्रति विश्वास और सम्मान का भाव है तो सहज रूप से ही उस व्यक्ति में दूसरे के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव भी होता ही है। ईर्ष्या या विरोध का भाव मूलतः स्नेह के भाव का अभाव है। स्नेह का भाव संबंधों में परस्पर निर्वाह के अर्थ में जिम्मेदारी और निष्ठा के रूप में व्यक्त होता है।
- ममता अपने संबंधियों के शरीर के पोषण एवं संरक्षण के प्रति जिम्मेदारी एवं निष्ठा का भाव है। ममता के भाव की पूर्ति के लिये सुविधा की आवश्यकता होती हैं जो मात्रा में सीमित है।
- वात्सल्य, अपने संबंधियों के स्वयं(मैं)' में सही समझ और सही-भाव सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी और निष्ठा का भाव है।
- मानव को सिर्फ शरीर मानने का परिणाम यह होता है कि हमारा अधिकतर ध्यान शरीर के अर्थ में ममता के भाव के निर्वाह पर ही बना रहता है जबकि दूसरे के 'स्वयं(मैं)' के लिये आवश्यक वात्सल्य के भाव के निर्वाह पर कम रहता है।

मानव-मानव संबंधों में मूल्य-श्रद्धा, गौरव और कृतज्ञता

(Human-Human Relationship- Reverence, Glory and Gratitude)

श्रद्धा

(Reverence)

श्रेष्ठता की स्वीकृति का भाव 'श्रद्धा' है। (Reverence is the feeling of acceptance for excellence.)

गौरव और कृतज्ञता

(Glory and Gratitude)

जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है, उनके प्रति स्वीकृति का भाव 'गौरव' है। (Glory is the feeling for someone who has made efforts for Excellence.)

जिन्होंने मेरी श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया हैं, उनके प्रति स्वीकृति का भाव 'कृतज्ञता' है। (Gratitude is the feeling of acceptance for those who have made efforts for my Excellence.)

श्रद्धा, कृतज्ञता और गौरव से संबंधित मूल बिन्दु:

(Salient Points regarding Reverence, Gratitude and Glory)

- श्रद्धा, श्रेष्ठता की स्वीकृति का भाव है। श्रेष्ठता का अर्थ है जीने के सभी स्तरों (मानव, परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व) में व्यवस्था को समझना एवं व्यवस्था में जीना अर्थात् निरंतर सुखपूर्वक जीना।

- गौरव, जिन्होंने श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया उनके प्रति भाव है- भले ही ये व्यक्ति पूर्ण रूप में श्रेष्ठता को प्राप्त न कर पाए हों।
- कृतज्ञता, जिन्होंने मेरी श्रेष्ठता के लिये प्रयास किया है उनके प्रति भाव है- इस प्रक्रिया में उन्होंने मेरे साथ सही समझ का प्रस्ताव साझा किया हो या सही-भाव के साथ जिया हो या आवश्यक सुविधा उपलब्ध कराई हो।
- आप उन लोगों की सूची बनायें जिन्होंने आप को सही समझ, सही भाव और सुविधायें उपलब्ध करवाई हो तो यह सूची बहुत लंबी बन सकती है।इस सूची में किसी न किसी रूप में सभी व्यक्ति सम्मिलित होंगे,जो इस धरती पर हैं। इस प्रकारसे आप अन्य व्यक्तियों के साथ आपसी-जुड़ाव और आपसी-संबंध को देख पाने के योग्य हो पाते हैं। जिससे धीरे-धीरे संपूर्ण समाज के लिये ही कृतज्ञता का भाव विकसित हो पाता है।

मानव-मानव संबंधों में पूर्ण मूल्य-प्रेम

(Complete Value in Human-Human Relationship-Love)

प्रेम- पूर्ण मूल्य

(Love as the Complete Value)

पहले आठ मूल्यों पर चर्चा के उपरांत अब हम प्रेम मूल्य की बात कर सकते हैं जिसमें अन्य सभी मूल्य समाहित होते हैं। इसलिये इसे पूर्ण मूल्य भी कहते हैं।

हर एक के साथ संबंध की स्वीकृति का भाव 'प्रेम' है। (Love is the feeling of being related to all.)

सही भाव- स्वयं के आधार पर या दूसरे से?

(Right Feeling- within Myself or from the Other?)

निःसंदेह, जब हम यह प्रश्न पूछते हैं तो उत्तर बहुत स्पष्ट दिखाई देता है कि स्वयं में सही-भाव की निरंतरता तभी हो सकती है, जब यह हमारी सही समझ पर आधारित हो। केवल तभी ये सही भाव मेरे में निरंतर सुनिश्चित हो पाते हैं। और जब हम दूसरे से सही-भाव पाने की अपेक्षा रखते हैं, तो ये भाव कभी हमें मिल पाते हैं और कभी नहीं अतः दूसरे से मिलने वाले भाव में निश्चितता या निरंतरता नहीं हो पाती है।

संबंध के निर्वाह में भौतिक-सुविधाओं की भूमिका

(Role of Physical Facility in Fulfilment of Relationship)

अब आप यह देख सकते हैं कि मानव-मानव संबंध में भाव के निर्वाह के लिये भौतिक सुविधाओं की भूमिका बहुत ही सीमित है। सिर्फ ममता के भाव के निर्वाह के लिये ही सुविधा अनिवार्य है क्योंकि आपके या आपके परिवार के सदस्यों के शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये सीमित मात्रा में भौतिक-सुविधाओं की आवश्यकता तो है ही।

ममता के भाव के अतिरिक्त, अन्य भावों के निर्वाह में सुविधा की भूमिका केवल प्रतीक के रूप में है।

न्याय की समझ

(Understanding Justice)

इस पृष्ठ भूमि के साथ अब हम संबंधों में न्याय के बारे में बात कर सकते हैं। हम में से प्रत्येक व्यक्ति हर क्षण, हर पल संबंध में न्याय चाहता ही है;आपको क्या लगता है, ऐसा है अथवा नहीं ? अब हम न्याय के प्रस्ताव पर चर्चा के साथ-साथ परिवार व्यवस्था की इस पूरी चर्चा का भी निष्कर्ष निकलने का प्रयास करेंगे न्याय, मानव-मानव संबंध की पहचान, उसका निर्वाह एवं मूल्यांकन है जिससे उभय-सुख सुनिश्चित होता है।

प्रेम एवं न्याय की समझ से संबंधित मूल बिन्दु:

(Salient Points regarding Love as the Complete Value and Understanding Justice)

- प्रेम,सभी के लिये संबंध की स्वीकृति का भाव है।यह एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से जुड़े होने की पहचान से और उनके बीच संबंध की स्वीकृति से प्रारंभ होता है, जो धीरे-धीरे सभी मानव तक और फिर प्रकृति की प्रत्येक इकाई तक विस्तारित होता चला जाता है। प्रेम का भाव सभी के लिये स्वयं में बना रहता है और करुणा के रूप में उन सभी के साथ व्यक्त होता है जो हमारे संपर्क में आते हैं। यह बिना किसी शर्त के निरंतरता में बना रहता है। प्रेम का भाव वह अंतिम बिंदु है जहाँ प्रत्येक मानव पहुँचना ही चाहता है और वहाँ पहुँच कर निरंतरता में बने रहना चाहता है।इस दृष्टि से, प्रेम पूर्ण मूल्य है।
- प्रेम के बारे में सामान्य भ्रम यह है किये संवेदना अर्थात् इंद्रिय सुख पर आधारित है; और वास्तव में यह केवल मोह अर्थात् आसक्ति है।
- प्रेम का भाव अखंड-समाज का आधार है।प्रेम के भाव के साथ ही परिवार में न्याय सुनिश्चित हो पाता है एवं यही न्याय परिवार से शुरू होकर विश्व परिवार की तरफ अग्रसर हो पाता है जो अंततः अखंड-समाज के रूप में अभिव्यक्त होगा।

आशा है इस पूरी चर्चा के बाद आपका ध्यान मानव- मानव संबंध के सभी(नौ) मूल्यों की ओर बारीकी से गया होगा।

अध्याय-9

समाज में व्यवस्था - सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को समझना

Harmony in the Society – Understanding Universal Human Order

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
☞ **समाज में व्यवस्था**	**अध्याय 9**
प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था	अध्याय 10-11

समझने की प्रक्रिया

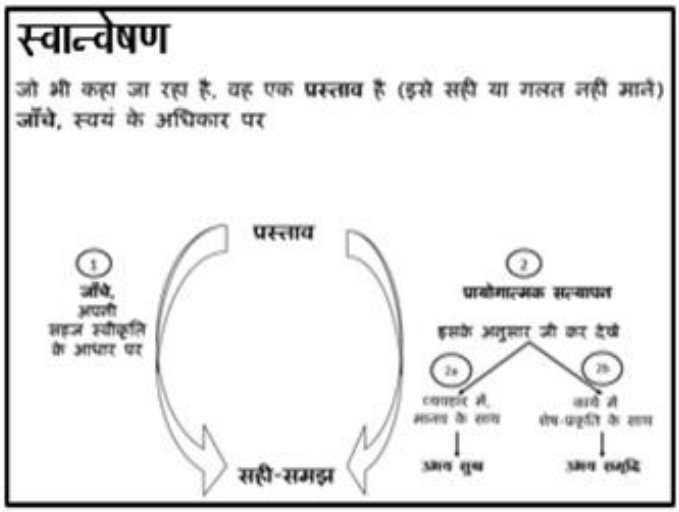

कक्षा 9,10 और 11 में हमने देखा कि

- समाज एक साथ जीने वाले परिवारों का समूह है, जिनके लक्ष्य (मानव लक्ष्य) एक समान होते हैं। व्यवस्थित समाज का आधार परिवार में व्यवस्था है, जिसका आधार मानव में व्यवस्था है।
- समाज में रहने वाले मानव के लक्ष्य हैं:
    1. प्रत्येक व्यक्ति में सही समझ और सही-भाव (सुख)।
    2. प्रत्येक परिवार में समृद्धि ।
    3. समाज में अभय (विश्वास)।
    4. प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता)।

जिससे इन लक्ष्यों की पूर्ति होती है, वह सही वरीयता क्रम 1 से 4 है। बिना सही समझ और सही-भाव के सुविधा की आवश्यकता की पहचान करना संभव नहीं है, अत: समृद्धि से पूर्व सही समझ और सही-भाव होना आवश्यक है। इसी प्रकार से संबंधों की स्वीकार्यता और प्रत्येक परिवार में समृद्धि के साथ ही अभय हो पाता है। चौथे लक्ष्य की पूर्ति तो इन पहले तीनों लक्ष्यों की पूर्ति के परिणाम स्वरूप एक सहज प्रतिफल के रूप में होती है।

- चारों मानव लक्ष्यों की पूर्ति के लिये ये पाँच व्यवस्थायें या आयाम आवश्यक हैं:
    1. शिक्षा-संस्कार
    2. स्वास्थ्य-संयम
    3. उत्पादन-कार्य
    4. न्याय-सुरक्षा
    5. विनिमय-कोष

अब हम प्रत्येक आयाम या प्रणाली का अध्ययन विस्तार से करेंगे; एक-एक करके अब हम इनका और अधिक विस्तार करेंगे।

शिक्षा-संस्कार

(Education-Sanskar)

शिक्षा का उद्देश्य मानव के जीने के सभी स्तरों अर्थात् व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, प्रकृति/अस्तित्व तक में व्यवस्था की सही समझ को विकसित करना है। संस्कार का अर्थ मानव के जीने के विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था में जीने की मूल स्वीकृतियों को विकसित करना है। इसके लिये निम्नलिखित तीनों को सुनिश्चित करना आवश्यक है:

1. सही समझ अर्थात् मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था की समझ होना, अर्थात् इस बात की सही समझ होना कि इन सभी स्तरों पर व्यवस्था में जीने के लिये मानव को क्या करना है।
2. सही-भाव, दूसरे मानवों के साथ परिवार में और समाज में संबंध पूर्वक रहने की योग्यता है।
3. समृद्धि के लिये सही कौशल, जैसे:
    - सुविधा की आवश्यकता की पहचान करने की योग्यता
    - आवश्यकता से अधिक का आवर्तनशील विधि से उत्पादन करने का अभ्यास एवं कौशल (श्रम के माध्यम से चक्रीय एवं परस्पर-संवर्धन की प्रक्रिया से)
    - समृद्धि का भाव

शिक्षा-संस्कार के ये तीन प्रमुख परिणाम हैं। यह शिक्षा तीनों वास्तविकताओं को अर्थात् 'स्वयं(मैं)' में सही-समझ, मानव के साथ संबंध और शेष-प्रकृति के साथ सुविधा को सुनिश्चित करती है, परिणामस्वरूप एक ऐसा समाज बनता है जिसमें सभी चारों मानव लक्ष्यों की पूर्ति सुनिश्चित हो पाती है। इसे चित्र 9-5 के ऊपरी भाग में दिखाया गया है।

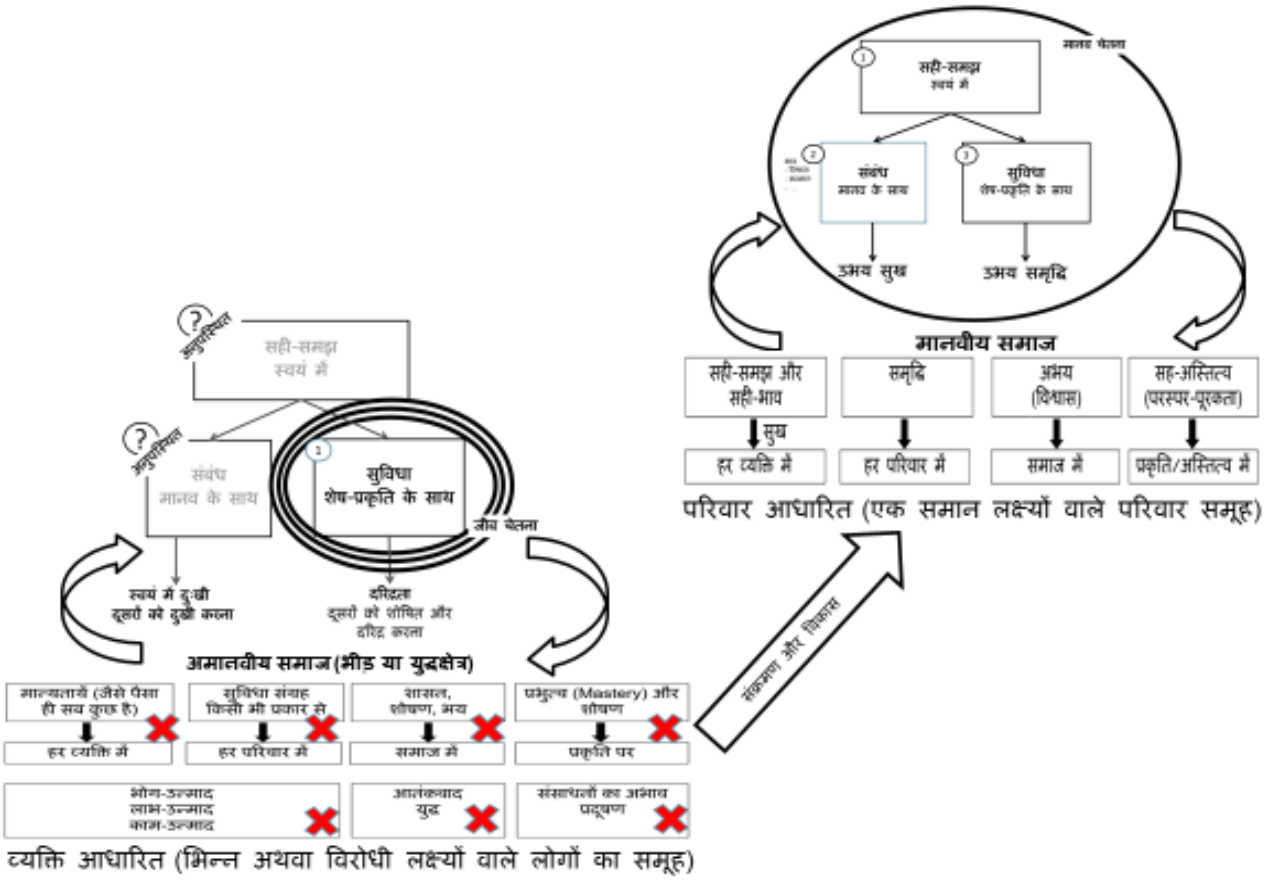

चित्र. 9-5. मानवीय शिक्षा संस्कार की भूमिका- संक्रमण

स्वास्थ्य और संयम

(Health and Self-regulation)

संयम 'स्वयं(मैं)' में, 'शरीर' के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग करने की जिम्मेदारी का भाव है। 'शरीर' का स्वास्थ्य इस तथ्य से इंगित होता है कि 'शरीर', 'स्वयं(मैं)' के निर्देशों के अनुसार कार्य करने में सक्षम है और इसके विभिन्न अंग व्यवस्था में हैं।

संयम के भाव का 'स्वयं(मैं)' में 'शरीर' के प्रति जिम्मेदारी को पहचानने और शरीर के लिये निम्न भावों को सुनिश्चित करने की निष्ठा है:

- शरीर का पोषण
- शरीर का संरक्षण

- शरीर का सदुपयोग

समाज के स्तर पर, हम ऐसी सामाजिक प्रणालियों के बारे में सोच सकते हैं जो हमारे पारिवारिक और सामाजिक प्रयासों का सहयोग, संरक्षण और संवर्धन कर सकें। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

1. **शिक्षा व्यवस्था** - यह आवश्यक है, कि बच्चों को स्वास्थ्य के सभी आयामों के लिये तैयार किया जाए जिससे कि वे अपने शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक अभ्यास कर सकें और 'स्वयं(मैं)' में संयम के भाव को विकसित कर सकें।
2. **परिवार व्यवस्था** - यह एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। परिवार में व्यवस्था अनुकूल वातावरण प्रदान करती है।
3. **सामाजिक स्तर पर स्वास्थ्य व्यवस्था**- सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख भाग मुख्य धारा की शिक्षा है। जिसे हमने बिंदु एक में चिन्हित किया है। स्वास्थ्य प्रणाली में केवल बीमारी के उपचार की बजाय स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने और रोगों की रोकथाम सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित किया जाना आवश्यक है।
4. **सामाजिक स्तर पर औषधि एवं चिकित्सा व्यवस्था** - चिकित्सा और औषधि की समग्र व्यवस्था को विकसित करना आवश्यक है, जो कि वर्तमान में प्रचलित विभिन्न औषधियों और चिकित्सा व्यवस्थाओं के निचोड़ पर आधारित हो ।

उत्पादन-कार्य

(Production-Work)

कार्य, मानव द्वारा शेष-प्रकृति पर किया गया श्रम है; और उत्पादन, इस कार्य से प्राप्त सुविधा है।

कोई भी उत्पादन करने के लिये दो वस्तुओं की आवश्यकता होती है - शेष-प्रकृति *(प्राकृतिक संसाधन)* और मानव का प्रयास *(कार्य)* ।

उत्पादन-कार्य के संबंध में दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं*:*

- क्या उत्पादन करना है*?*
- कैसे उत्पादन करना है*?*

क्या उत्पादन करना है, इसके बारे में हमने पहले ही समृद्धि, स्वास्थ्य और संयम के बारे में प्रस्तावों की जाँच करते समय चर्चा की है - हमें शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के लिये आवश्यक सुविधा का उत्पादन करना होगा।

कैसे उत्पादन करना है के संबंध में दो मापदंड हैं:

1. प्रक्रिया, चक्रीय और परस्पर–संवर्धन करने वाली हो-यह पर्यावरण के अनुकूल (*eco-friendly*) हो।
2. मानव के साथ संबंधों में न्याय सुनिश्चित करने वाली हो- यह लोगों के अनुकूल (people-friendly) हो।

कोई प्रक्रिया, चक्रीय तब होती है जब वह प्रकृति में जो चक्र है उसके अनुसार होती है। ऐसी प्रक्रिया में, उपयोग किये गये संसाधन अपने जीवन-चक्र (lifecycle) के अनुसार, अपनी मूल अवस्था में लौट पाते हैं। कोई भी प्रक्रिया परस्पर-पूरक तभी कहलाती है, जब उस में भागीदारी करने वाली प्रत्येक इकाई समृद्ध हो रही हो। निःसंदेह, कार्य में सम्मिलित व्यक्तियों के लिये न्याय अनिवार्य है। इसलिये, एक उत्पादन प्रक्रिया को सतत् (sustainable), पर्यावरण-अनुकूल और मानव-अनुकूल होने के लिये, प्रक्रिया को:

- चक्रीय
- परस्पर-पूरक
- और मानव के साथ न्याय सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

शेष-प्रकृति पर मानव के श्रम के परिणामस्वरूप सुविधा का उत्पादन होता है। चक्रीय एवं परस्पर-संवर्धन करने वाली प्रक्रियाओं के द्वारा, शेष-प्रकृति पर मानव अपने श्रम से, अपने लिये प्रचुर मात्रा में सुविधाओं का उत्पादन कर सकता है।

न्याय-सुरक्षा

(Justice-Preservation)

न्याय= मानव-मानव संबंध की पहचान, निर्वाह और मूल्यांकन; जिसके फलस्वरूप उभय-सुख होना

न्याय प्रणाली की जिम्मेदारी होगी कि वह न्याय को समझने और उसके अनुसार जीने के लिये हर व्यक्ति में योग्यता के विकास को सुगम बनाये।

अब यदि आप सुरक्षा को देखें तो इसका आशय शेष-प्रकृति के साथ मानव के संबंधों को सुनिश्चित करना है।

सुरक्षा = शेष-प्रकृति के साथ मानव के संबंधों की पहचान इसका निर्वाह और मूल्यांकन है, जिसके फलस्वरूप उभय समृद्धि होती है।

संक्षेप में, सुरक्षा का आशय पूरी प्रकृति के संवर्धन, संरक्षण और सदुपयोग से है।

सुरक्षा =

- मानव में समृद्धि
- प्रकृति का संवर्धन, संरक्षण और सदुपयोग

न्याय से समाज में अभय *(विश्वास)* सुनिश्चित होता है और सुरक्षा से प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व सुनिश्चित होता है।

विनिमय- कोष

(Exchange-Storage)

विनिमय का अर्थ है, सुविधा को परस्पर-पूरकता के दृष्टि से साझा करना या आदान-प्रदान करना।

सुविधा परिवार के अंदर या जहाँ तक संबंधों की स्वीकार्यता होती है, वहाँ तक साझा होती है। इसके आगे विनिमय होता है।

कोष, परस्पर-पूरकता की दृष्टि से सुविधा का संचय करने से है न कि लाभ-उन्माद, संग्रह या शोषण के लिये।

यह कोष, सुविधा के संरक्षण के लिये है, जिससे कि परस्पर-पूरकता के अर्थ में जब भी इसकी आवश्यकता हो इसको उपलब्ध कराया जा सके।

विनिमय-कोष, जब परस्पर-पूरकता की दृष्टि से किया जाता है तो, वह समृद्धि सुनिश्चित करता है और समाज में अभय सुनिश्चित करने की प्रक्रिया में भी सहायक होता है। और दूसरी तरफ यदि वह लाभ उन्माद के लिये या शोषण के लिये किया जाये तो वह समृद्धि के स्थान पर दरिद्रता और समाज में भय का कारण बनता है।

लेकिन जब उत्पादन और सदुपयोग का भाव, देने का भाव इत्यादि, हमारे पास-पड़ोस और समाज तक फैलता है तो, ये सब मानवीय व्यवस्था में आश्वस्ति को सुनिश्चित कर पाते हैं। ऐसे पास-पड़ोस या समाज में आश्वस्ति का भाव रहता है जो कि, विश्वास के आधार पर अभय को और मजबूती देता है।

मानवीय समाज में व्यवसाय

(Professions in a Human Society)

समाज की एक या एक से अधिक व्यवस्थाओं में, मानव की भागीदारी ही व्यवसाय है। हम अपनी भागीदारी का चयन अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार कर सकते हैं। संबंध, भाव और लक्ष्य की एकरूपता से हमारे व्यवसाय भी परस्पर-जुड़ पायेंगे अर्थात् परस्पर-पूरक हो पायेंगे और इस तरह प्रत्येक व्यक्ति समाज व्यवस्था में सार्थक भागीदारी करने में सक्षम हो पायेगा। इसमें शिक्षक, डॉक्टर, किसान इत्यादि सभी शामिल हैं। इस पर हम अध्याय-12-16 में विस्तार से चर्चा करेंगे।

सार्वभौम मानवीय व्यवस्था- परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक

(Harmony from Family Order to World Family Order – Universal Human Order)

समाज, साथ-साथ रहने वाले परिवारों का समूह होता है, जिनके लक्ष्यों में एकरूपता होती है। हर एक स्तर पर व्यवस्था अगले उच्च स्तर की व्यवस्था में योगदान करती है। व्यक्तिगत स्तर पर व्यवस्था में जीते हुये मानव, परिवार में व्यवस्था के लिये योगदान करते हैं। और जो परिवार व्यवस्था में होते हैं वे समाज व्यवस्था के लिये योगदान करते हैं और इस तरह से विश्व परिवार व्यवस्था तक की संकल्पना बनती है, जिसे सार्वभौम मानवीय व्यवस्था कहते हैं।

विषय क्षेत्र -परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था-सार्वभौम मानवीय व्यवस्था

(Scope – From Family Order to World Family Order (Universal Human Order)

परिवार व्यवस्था ⇒ परिवार समूह व्यवस्था ⇒ ग्राम व्यवस्था ⇒ ग्राम समूह व्यवस्था ⇒ शहर व्यवस्था ⇒..... राष्ट्र व्यवस्था ⇒ विश्व परिवार व्यवस्था

इस तरह, हर मानव की अपनी एक योग्यता है और सामाजिक व्यवस्था में एक या एक से अधिक आयामों में उसकी भागीदारी है। सभी की सार्थक भागीदारी है, परिवार व्यवस्था में; परिवार व्यवस्था से

परिवार समूह व्यवस्था में और इसी तरह बढ़ते हुये राष्ट्र परिवार व्यवस्था में और अंततः विश्व परिवार व्यवस्था में। मानवीय समाज में व्यवस्थाओं का यही दायरा है।

सही समझ के सहज निष्कर्ष

(Natural Outcome of Right Understanding)

सुख-समृद्धि से रहने की परंपरा, परिवार व्यवस्था से शुरू होती है और अंततः इसकी निरंतरता, सार्वभौम मानवीय व्यवस्था से सुनिश्चित होती है। अतः, एक अर्थपूर्ण जीवन का आशय यह है कि हम उपरोक्त के लिये प्रयास करें। यदि हम व्यवस्था में हैं तो परिवार व्यवस्था में योगदान कर सकते हैं। और जिन परिवारों में व्यवस्था है, वह परिवार मिलकर एक ऐसा परिवार समूह बना सकते हैं, जिसमें भी व्यवस्था हो। और इन परिवार समूह व्यवस्थाओं से मिलकर विश्व परिवार व्यवस्था बनती है, जिसे हम सार्वभौम परिवार व्यवस्था कह रहे हैं, यही समाज में व्यवस्था का अर्थ है।

चित्र.9-10. का संदर्भ लीजिये। मानवीय शिक्षा, मानव को, मानव-चेतना के साथ जीने के लिये तैयार करेगी। ऐसे व्यक्ति, मानवीय मूल्यों के साथ जी पायेंगे और इनमें मानवीय आचरण होगा। मानवीय आचरण के साथ जीने वाले व्यक्ति अंततः मानवीय समाज को बढ़ावा देंगे। इस प्रकार का मानवीय समाज, स्वाभाविक रूप से अगली पीढ़ी को मानवीय शिक्षा प्रदान करेगा और इस प्रकार से मानवीय समाज की निरंतरता सुनिश्चित होती रहेगी।

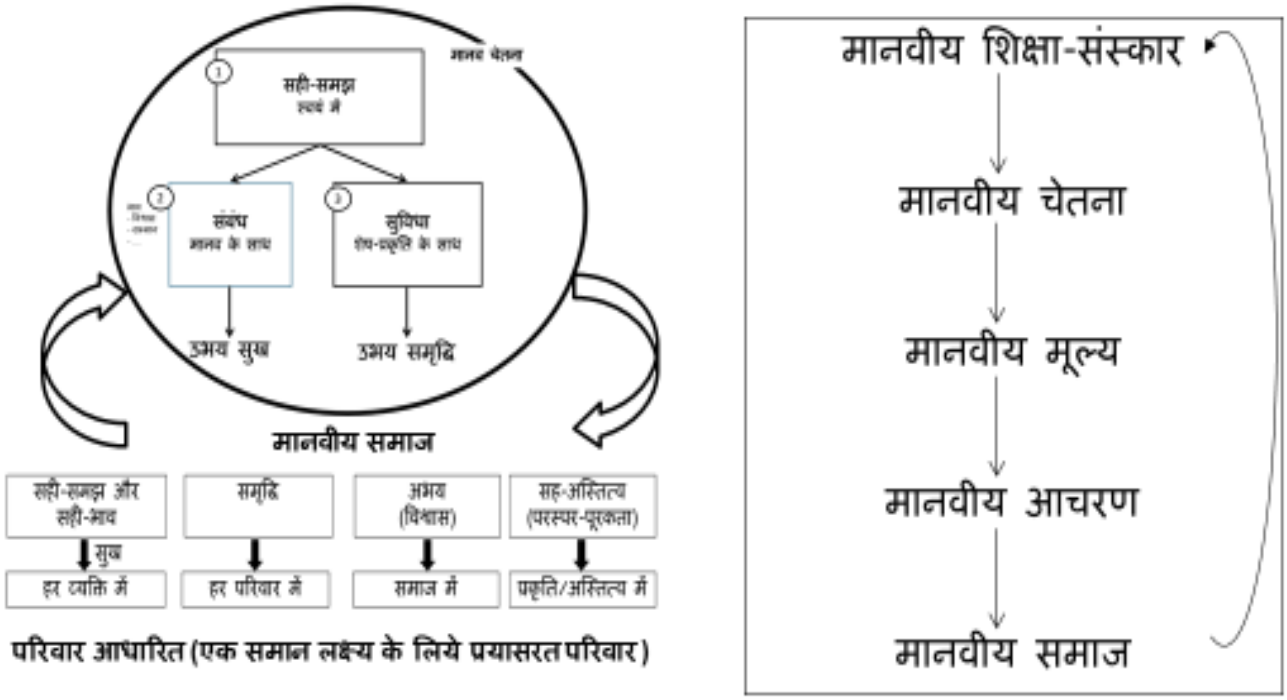

चित्र. 9-10. मानवीय शिक्षा और मानवीय समाज के बीच अंतर्संबंध

समाज में मेरी भागीदारी (मूल्य)

(My Participation (Value) in the Society)

समाज में मेरी भागीदारी (मूल्य), समाज के बारे में स्पष्टता एवं इसके लक्ष्यों, कार्यक्रमों और दायरे की स्पष्टता को विकसित करना है; और इसके साथ परिवार व्यवस्था और उसके बाद बड़े समाज व्यवस्था में अपनी भूमिका का निर्वाह करना है।

परिवार व्यवस्था में मेरी भागीदारी (मूल्य) है*:*

- परिवार में सुख सुनिश्चित करने के लिये परिवार के प्रत्येक सदस्य, विशेषकर अगली पीढ़ी के सदस्यों में सही समझ और सही-भाव के विकास में सहायता करना।
- परिवार में प्रत्येक सदस्य के शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के माध्यम से उनके स्वास्थ्य को सुनिश्चित करना।
- परिवार में समृद्धि को सुनिश्चित करने के लिये, परिवार के प्रत्येक सदस्य की सुविधा की आवश्यकता की पहचान करने एवं इसके उत्पादन, संरक्षण और सदुपयोग करने में सहायता करना।
- परिवार में एक या एक से अधिक सदस्यों का बड़े समाज में एक या एक से अधिक मानवीय व्यवस्था के आयामों में भागीदारी के लिये उपलब्ध होने में सहयोग करना।

बड़े समाज में मेरी भागीदारी *(*मूल्य*)* है*:*

- मानवीय व्यवस्था के एक या एक अधिक आयामों (शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम, उत्पादन-कार्य, न्याय-सुरक्षा और विनिमय-कोष) में भूमिका निभाना।

इस प्रकार, समाज के प्रत्येक व्यक्ति में सुख, प्रत्येक परिवार में समृद्धि, समाज में अभय *(*विश्वास*)*, प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता) सुनिश्चित होता है। समाज में मेरी यही भागीदारी *(*मूल्य*)* है।

अध्याय-10

प्रकृति में व्यवस्था – अंतर्संबंध, स्व-नियंत्रण और परस्पर पूरकता को समझना

(Harmony in Nature – Understanding the Interconnectedness, Self-regulation and Mutual Fulfilment)

कक्षा 10 और 11 के अध्याय 10 (प्रकृति में व्यवस्था) के अंतर्गत इकाइयों के समूह के रूप में प्रकृति और इकाइयों के समूह का चार अवस्थाओं (पदार्थ अवस्था, प्राण अवस्था, जीव अवस्था, ज्ञान अवस्था) में वर्गीकरण का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया था। अब उसकी संक्षेप में पुनरावृत्ति करेंगे ।

चारों अवस्थाओं को समझना

(Understanding the Four Orders)

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9 ✓
☞ **प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था**	**अध्याय 10-11**

समझने की प्रक्रिया

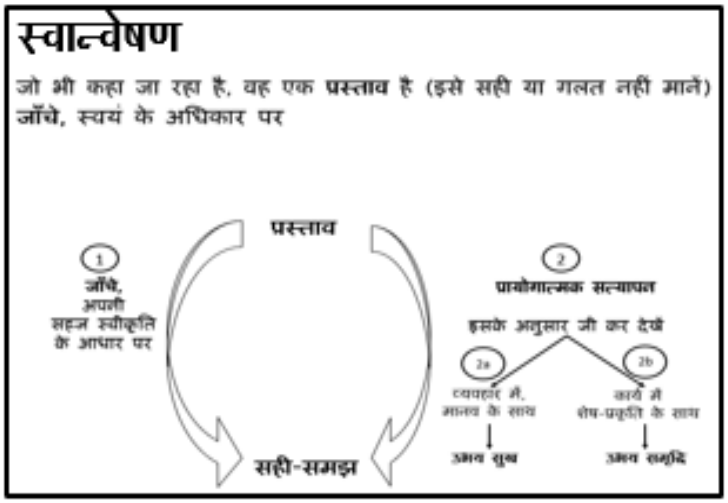

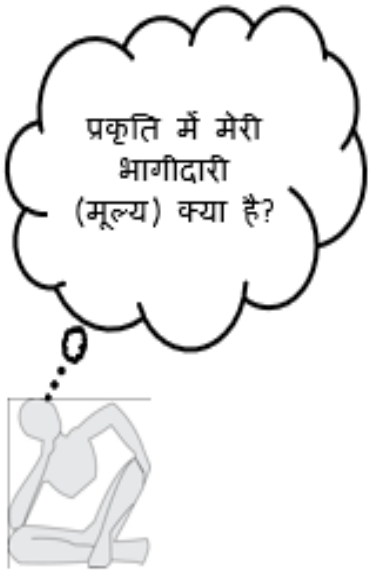

अब हम चारों अवस्थाओं में से प्रत्येक के गुण और उनकी मूल पहचान को देख सकते हैं, जिनके आधार पर इकाइयों का वर्गीकरण किया गया है।

चित्र. 10-6. में हम चारों अवस्थाओं का विवरण देख सकते हैं। प्रत्येक अवस्था की इकाइयों के उदाहरण (दूसरे कॉलम में), उनकी क्रियाएं (तीसरे कॉलम में), उनकी प्रकृति सहज धारणायें (चौथे कॉलम में), उनका स्वभाव (पांचवे कॉलम में) और उनकी अनुषंगीयता (अंतिम छठे कॉलम में) दिखाये गये हैं।

चार अवस्थायें	इकाई	क्रिया	धारणा	स्वभाव	अनुषंगीयता
पदार्थ अवस्था	मिट्टी, धातु...	रचना-विरचना	अस्तित्व	संघटन-विघटन	परिणाम-अनुषंगी
प्राण अवस्था	पेड़, पौधे ...	"-" + - श्वसन	" + पुष्टि	" + सारक-मारक	बीज-अनुषंगी
जीव अवस्था	पशु, पक्षी ..	"-", " शरीर में चयन-आस्वादन (स्वयं में)	", " शरीर में जीने की आशा (स्वयं में)	", " शरीर में क्रूरता, अक्रूरता (स्वयं में)	वंश-अनुषंगी
ज्ञान अवस्था	मानव	";", " शरीर में चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन (स्वयं में) चिंतन, बोध, अनुभव की क्षमता (स्वयं में)	", " शरीर में निरन्तर सुख पूर्वक जीने की आशा (स्वयं में) सही-समझ, सही भाव और विचार (स्वयं में)	", " शरीर में धीरता, वीरता, उदारता दया, कृपा, करुणा (स्वयं में)	शिक्षा – संस्कार अनुषंगी

चित्र. 10-6. चारों अवस्थाओं का विवरण

चारों अवस्थाओं की क्रियायें

(Activity in the Four Orders)

हम प्रत्येक अवस्था की कुछ निश्चित क्रियाओं को पहचान सकते हैं। पदार्थ-अवस्था की इकाइयों की पहचान रचना-विरचना की क्रिया से होती है; प्राण-अवस्था में रचना-विरचना के अतिरिक्त श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया भी होती है; जीव-अवस्था, 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। पशु का 'शरीर' मूलतः प्राण-अवस्था की ही एक इकाई है, पशु-शरीर के साथ जुड़े हुये स्वयं में चयन-आस्वादन की क्रिया प्रमुख है। ज्ञान-अवस्था की इकाई मानव भी 'शरीर' और 'स्वयं(मैं)' का सह-अस्तित्व है। मानव-शरीर, प्राण-अवस्था की एक इकाई है इसलिये इसमें रचना-विरचना एवं श्वसन-प्रश्वसन की

क्रियाएं होती हैं। मानव के 'स्वयं(मैं)' में चित्रण, विश्लेषण-तुलन, चयन-आस्वादन जैसी क्रियाओं को देखा जा सकता है (जैसा कि अध्याय-6, 'स्वयं में व्यवस्था, में हमने चर्चा की थी)।

इस तरह से सभी चारों अवस्थाओं का अलग-अलग पहचान उनकी क्रियाओं के आधार पर कर सकते हैं। यह एक विधि है, जिससे प्रकृति की इकाइयों का वर्गीकरण हो सकता है।

चारों अवस्थाओं में अंतर्निहित प्रकृति-सहज धारणायें

(Innateness of the Four Orders)

तीसरा कॉलम प्रत्येक अवस्था में अंतर्निहित प्रकृति-सहज धारणा की व्याख्या करता है। 'धारणा' किसी भी इकाई की अपने होने की निश्चित व्यवस्था है। इस निश्चित व्यवस्था के आधार पर इकाई अपने निश्चित आचरण को प्रदर्शित करती है। इकाई और उसकी धारणा अविभाज्य है, अर्थात् इकाई को उसकी धारणा से अलग नहीं किया जा सकता है। पदार्थ-अवस्था की धारणा 'अस्तित्व' है। यहाँ 'अस्तित्व' का अर्थ इकाई के होने या एक निश्चित व्यवस्था में होने से है। प्राण-अवस्था की धारणा(स्वयं में व्यवस्था) अस्तित्व और पुष्टि है। जैसे एक पौधा, पौधे के रूप में बना रहता है और बढ़ता भी रहता है। यदि हम जीव-अवस्था में देखते हैं तो, हम यह पाते हैं कि इनका 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' अलग-अलग हैं और इन दोनों सह-अस्तित्व में हैं। पशु-शरीर की धारणा पेड़-पौधों की भाँति ही अस्तित्व एवं पुष्टि है। पशु के 'स्वयं(मैं)' की धारणा 'जीने की आशा' है अर्थात् वे जीना चाहते हैं। यही इनकी धारणा है। अब ज्ञान-अवस्था पर आते हैं, मानव भी 'शरीर' और 'स्वयं(मैं)' का सह-अस्तित्व है। इसके 'शरीर' (प्राण-अवस्था की एक इकाई) की धारणा अस्तित्व और पुष्टि है। स्वयं के स्तर पर मानव में 'निरंतर सुख पूर्वक जीने की आशा' है। यही उसकी धारणा है अर्थात् मानव में स्वयं के स्तर पर स्वतंत्रता या स्वयं में व्यवस्था उसकी धारणा हैं। मानव में 'निरंतर सुख पूर्वक जीने की आशा' स्वयं का एक अभिन्न अंग है; जिसको उसके स्वयं से अलग नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि यह स्वयं में सही समझ और सही-भाव के साथ जीने की आशा है।

चारों अवस्थाओं के स्वभाव

(Natural Characteristic of the Four Orders)

किसी इकाई के स्वभाव का अर्थ, उससे बड़ी व्यवस्था में उसकी प्रकृति सहज भागीदारी है। बड़ी-व्यवस्था का आशय उस बड़ी इकाई से है, जिसके एक अंग के रूप में वह इकाई है। पदार्थ-अवस्था का स्वभाव संघटन-विघटन है। पदार्थ-अवस्था की इकाइयाँ इस अवस्था की अन्य इकाइयों के साथ या दूसरी अवस्था की अन्य इकाइयों के साथ संघटन-विघटन के रूप में भागीदारी करती रहती हैं। प्राण-अवस्था, अन्य प्राण-अवस्थाओं के साथ पोषण एवं शोषण करने के रूप में भागीदारी करती है। जब बात जीव-अवस्था की आती है तो, हमें पशु-शरीर और उसका 'स्वयं(मैं)' दोनों का स्वभाव देखना होता है। 'शरीर', प्राण-अवस्था की एक इकाई है, अतः यह उसी प्रकार से भागीदारी करती है जैसा बताया गया है, अर्थात् प्राण-अवस्था की अन्य इकाइयों का पोषण या शोषण करती है। पशु का 'स्वयं(मैं)', अन्य जीव-अवस्था की इकाइयों के साथ क्रूरता या अक्रूरता के रूप में भागीदारी करता है। पशु जैसे शेर, चीता, भेड़िये इत्यादि क्रूरता के साथ भागीदारी करते हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि वे अपनी आवश्यकताओं को अन्य पशुओं के 'शरीर' को खाकर पूरी करते हैं। पशु जैसे गाय और भेड़ इत्यादि अक्रूरता के साथ भागीदारी करते हैं। वे अपनी आवश्यकतायें, बिना बल और हिंसा के पूरी करते हैं। अतः जीव अवस्था का स्वभाव क्रूरता या अक्रूरता है। ज्ञान-अवस्था में मानव, 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' का सह-अस्तित्व है। शरीर-प्राण अवस्था से संबंधित है अतः इसमें प्राण-अवस्था का स्वभाव है। मानव के 'स्वयं(मैं)' का स्वभाव धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा है। जैसा हमने पहले भी देखा है, कि

व्यवस्थित मानव ही अपने स्वभाव का प्रदर्शन कर पाता है, अर्थात् मानव-चेतना में जीता हुआ मानव ही अपने स्वभाव की अभिव्यक्ति कर पाता है। जबकि यदि कोई मानव, व्यवस्था में नहीं है तो वह अपने स्वभाव के बजाय दीनता, हीनता, क्रूरता के गुण को अपना लेता है। यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि जीव अवस्था का स्वभाव क्रूरता है, लेकिन यह ज्ञान-अवस्था का स्वभाव नहीं है। वास्तव में यह ज्ञान-अवस्था में गंभीर समस्या बन जाता है।

चारों अवस्थाओं की अनुषंगीयता

(Inheritance of the Four Orders)

अनुषंगीयता का आशय इकाइयों में होने वाली उस विधि से है, जिससे वे अपने निश्चित आचरण की निरंतरता को पीढ़ी दर पीढ़ी सुनिश्चित बनाये रखती हैं। पदार्थ-अवस्था की इकाइयों का आचरण उनके परिणाम (constitution) अर्थात् बनावट के आधार पर सुनिश्चित होता है। प्राण-अवस्था के आचरण की निरंतरता उसके बीज के द्वारा निर्धारित होती है। अतः जब तक पौधे का बीज संरक्षित रहता है, पौधे का आचरण भी संरक्षित रहता है। जीव-अवस्था की इकाइयों के आचरण की निरंतरता वंश विधि से सुनिश्चित होती है; अतः जब तक पशु का वंश संरक्षित रहेगा, उसका आचरण भी सुनिश्चित रहेगा। पशुओं का निश्चित आचरण तब तक बना रहता है, जब तक उनका वंश संरक्षित रहता है। मानव का आचरण, शिक्षा-संस्कार से सुनिश्चित होता है। एक मानव को यदि मानवीय शिक्षा-संस्कार दिया जाये, तो वह निश्चित मानवीय आचरण के साथ जियेगा, दूसरी तरफ यदि अमानवीय शिक्षा-संस्कार मिलता है, तो वह अमानवीय आचरण से अर्थात् अनिश्चित आचरण से जीयेगा। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ज्ञान-अवस्था की अनुषंगीयता शिक्षा-संस्कार पर आधारित है।

ज्ञान अवस्था के लिये शिक्षा-संस्कार का महत्व

(Significance of Education- Sanskar for Human Order)

इस स्पष्टता के साथ अब हम यह देख सकते हैं कि पदार्थ, प्राण और जीव-अवस्था की इकाइयाँ अपना निश्चित आचरण बनाये रखती हैं। वे स्वयं में व्यवस्था में पहले से ही हैं और अपना सहज स्वभाव प्रदर्शित करती रहती हैं। केवल मानव ही है जो स्वयं में व्यवस्थित नहीं है; जिसका आचरण अमानवीय और अनिश्चित है, जो अपने स्वभाव के अनुसार जीने के योग्य अभी नहीं हो पाया है।

निश्चित मानवीय आचरण को सुनिश्चित करने के लिये मानवीय शिक्षा-संस्कार आवश्यक है। मानवीय शिक्षा-संस्कार के माध्यम से, हम स्वयं में सही समझ सुनिश्चित कर सकते हैं। जिससे स्वयं में सही-भाव सुनिश्चित होगा। सही समझ और सही-भाव के साथ हम स्वयं में व्यवस्था और सुख की निरंतरता सुनिश्चित कर पायेंगे और यदि इसके अनुसार जी पाये, तो हम अगली पीढ़ी के लिये मानवीय शिक्षा-संस्कार का एक स्रोत बन पाएंगे। यदि ऐसा होता है तो प्रकृति-चक्र पूर्ण हो पायेगा (चित्र. 10-7 . को देखें)। एक बार पूर्ण होने पर, यह पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर चलता रहेगा।

इस प्रकार से मानवीय आचरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में, पीढ़ी दर पीढ़ी सुनिश्चित होता है। एक बार जब यह प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है, तो पीढ़ी दर पीढ़ी इसकी निरंतरता बनी रह पाती है और ज्ञान-अवस्था में भी पीढ़ी दर पीढ़ी स्वयं में निरंतर सुख और व्यवस्था की परंपरा बन पाती है, अर्थात् मानव

भी शेष तीनों अवस्थाओं और ज्ञान-अवस्था के दूसरे मानवों के साथ परस्पर-पूरकता का निर्वाह, अपने स्वभाव और अपनी प्रकृति सहज धारणा के अनुसार कर पाता है।

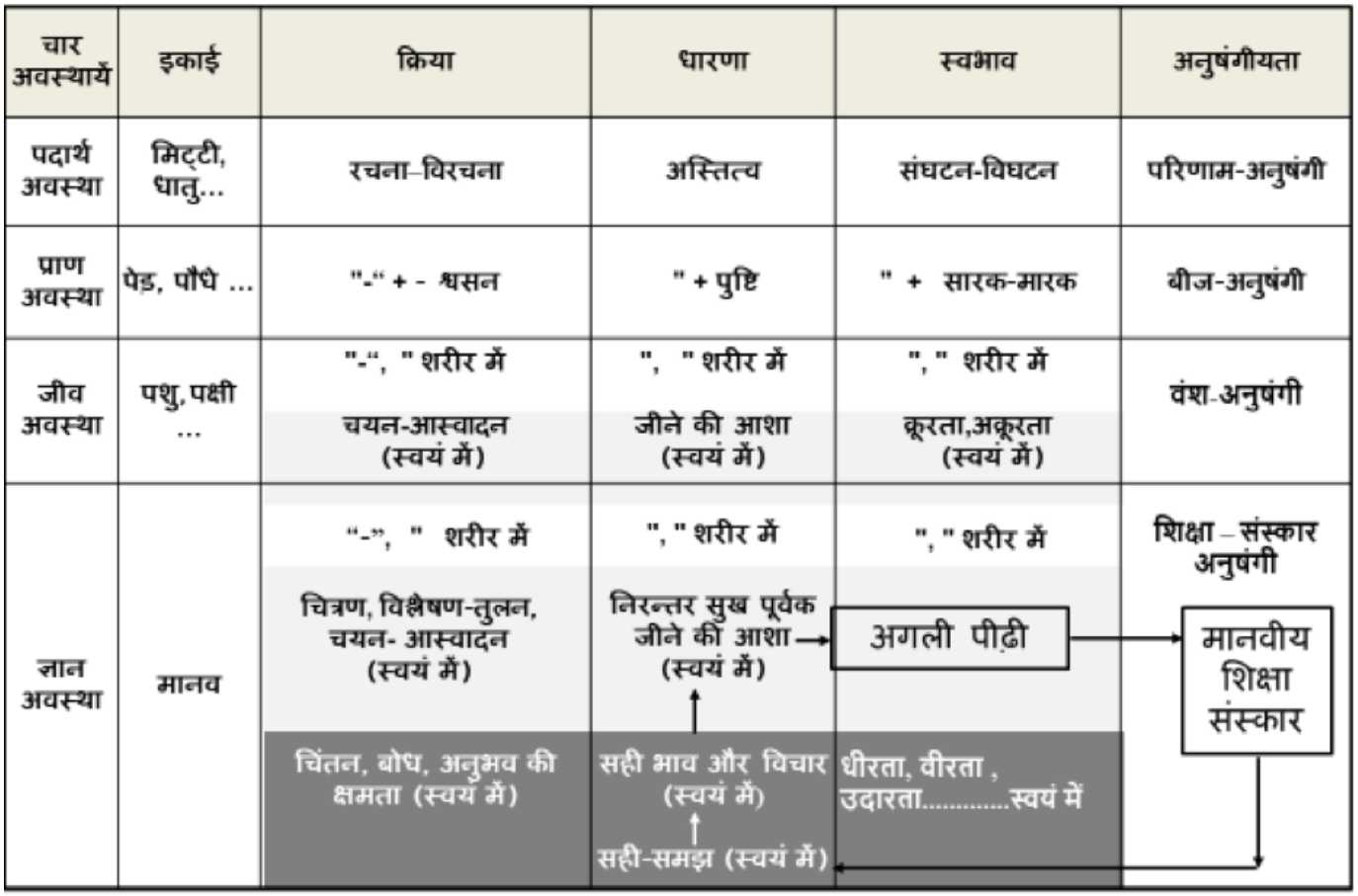

चित्र. 10-7. प्रकृति की व्यवस्था में मानवीय शिक्षा-संस्कार की भूमिका

प्रकृति में प्रचुरता

(Abundance in Nature)

प्रकृति इस प्रकार से व्यवस्थित है कि इसमें अन्य अवस्थाओं के लिये आवश्यक भौतिक सुविधाएं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। जिस अवस्था को जो भी चाहिए, वह पहले से ही उसके लिए प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। प्राण-अवस्था की मात्रा से कहीं अधिक मात्रा पदार्थ-अवस्था की है। प्रकृति इसी प्रकार से व्यवस्थित है।इसी प्रकार से पशु-पक्षियों को जीवित रहने के लिये पदार्थ-अवस्था और प्राण-अवस्था दोनों की आवश्यकता है। उनके लिये वायु, पानी, भोजन, आश्रय इत्यादि की आवश्यकता इन्हीं दो अवस्थाओं से पूरी होती है। प्रकृति में पशु-पक्षियों की मात्रा की तुलना में ये दोनों अवस्थायें बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। जीवित रहने के लिए मानव को इन तीनों अवस्थाओं की आवश्यकता है। मानव की संख्या की तुलना में इन तीनों अवस्थाओं की मात्रा कहीं अधिक है। प्रकृति अपने होने के रूप में इस प्रकार से व्यवस्थित है कि इन चारों अवस्थाओं की मात्रा एक अनुक्रम में निम्न रूप से व्यवस्थित है: भौतिक-अवस्था>> प्राण-अवस्था>> पशु-अवस्था>> मानव-अवस्था (चित्र. 10-8. देखिये)। इसलिये, प्रकृति में किसी भी अवस्था की आवश्यकता की पूर्ति के लिये पहले से ही प्रचुर मात्रा में उपलब्धता है।

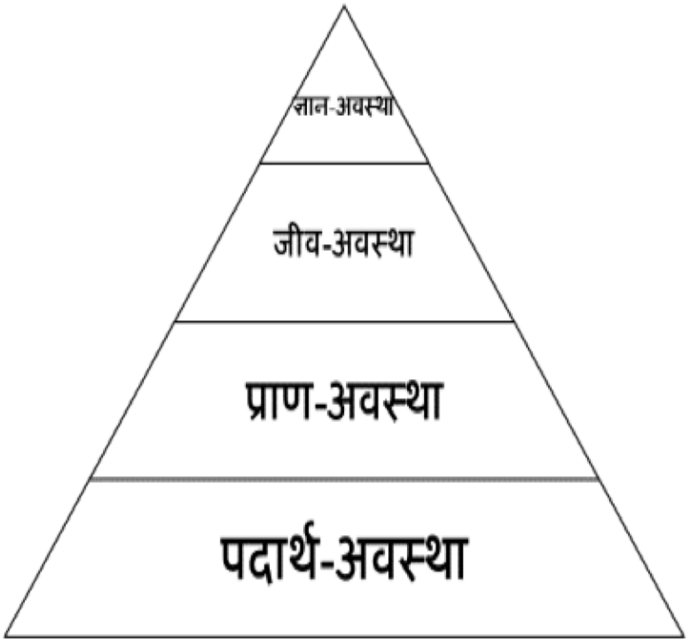

चित्र. 10-8. प्रकृति में प्रचुरता

अभी तक हमने देखा कि प्रकृति चार अवस्थाओं में वर्गीकृत है और परस्पर पूरकता में रहते हुए, परस्पर संवर्धन करती है और स्वनियंत्रित रहती है। फिर हमने चारों अवस्थाओं की क्रियाओं और उसमे अंतर्निहित प्रकृति सहज धारणाओं का अध्ययन किया ।इस तरह से अस्तित्व में प्रकृति के चारों अवस्थाओं के पोषण सुरक्षा के लिए प्रकृति में प्रचुरता को जाना।

अध्याय-11

अस्तित्व में व्यवस्था - विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व को समझना

(Harmony in Existence – Understanding Coexistence at Various Levels)

कक्षा 11 में हमने अस्तित्व की व्यवस्था के बारे में संक्षिप्त चर्चा की थी। इस कक्षा में इसपर और विस्तृत चर्चा करेंगे; और इस अध्याय के अंत में हम अस्तित्व में व्यवस्था (सह-अस्तित्व) को समझने के

मानव की मूल चाहना

निरंतर सुख और समृद्धि

व्यवस्था में होना सुख है

मूल चाहना की पूर्ति का कार्यक्रम

सभी स्तर पर व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना

मानव में व्यवस्था	अध्याय 5-7 ✓
परिवार में व्यवस्था	अध्याय 8 ✓
समाज में व्यवस्था	अध्याय 9 ✓
☞ **प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था**	**अध्याय 10-11**

समझने की प्रक्रिया

स्वान्वेषण

जो भी कहा जा रहा है, वह एक प्रस्ताव है (इसे सही या गलत नहीं मानें)
जाँचे, स्वयं के अधिकार पर

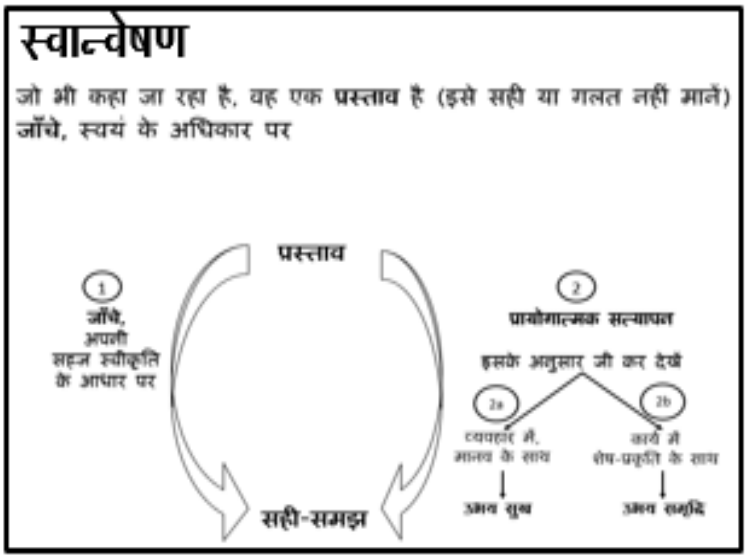

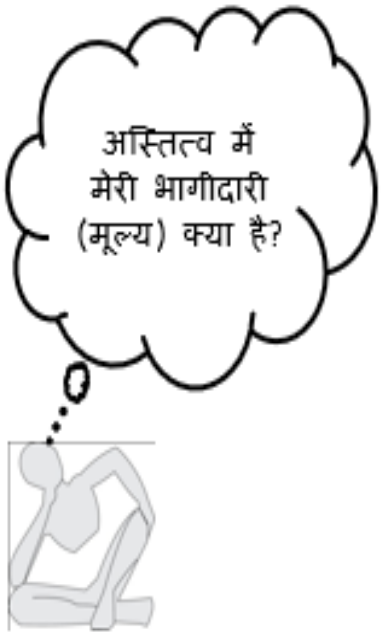

आधार पर विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था को पुनः देखने का प्रयास करेंगे।

पुनरावृत्ति
(Recap)

पिछले अध्यायों में हमने मानव की 'मूल चाहना' अर्थात् सुख, समृद्धि और इनकी निरंतरता पर चर्चा की है। निरंतर सुख का आशय सभी स्तरों अर्थात् मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/अस्तित्व में व्यवस्था पूर्वक जीना है। व्यवस्था में जीने के लिये इन सभी स्तरों पर व्यवस्था को समझने की आवश्यकता है। अभी तक, हमने मानव, परिवार, समाज और प्रकृति में व्यवस्था का अध्ययन, स्वान्वेषण और स्व-सत्यापन की प्रक्रिया से किया है।

'प्रकृति में व्यवस्था' के बारे में चर्चा करते समय, हमने पिछले अध्याय में देखा कि प्रकृति में चार अवस्थायें हैं: पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था, जीव-अवस्था और ज्ञान-अवस्था। पहली तीन अवस्थायें व्यवस्था में हैं और एक दूसरे के लिये परस्पर-पूरकता का निर्वाह कर रही हैं। मानव को अभी भी व्यवस्था और व्यवस्था में जीने को समझना है, तभी संपूर्ण प्रकृति व्यवस्था में हो पायेगी।

इस अध्याय के अंतर्गत हम अस्तित्व में व्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगे; और इस अध्याय के अंत में हम अस्तित्व में व्यवस्था (सह-अस्तित्व) को समझने के आधार पर विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था को पुनः देखने का प्रयास करेंगे।

'अस्तित्व'- व्यापक (शून्य) में इकाइयाँ
(Existence as Units in Space)

अस्तित्व नित्य वर्तमान है। Existence is whatever exists.

जो भी विद्यमान है, उसका सार (essence) व्यवस्था या परस्पर-पूरकता है। जो भी विद्यमान है या जो भी होना है, वह परस्पर-पूरकता या व्यवस्था में होना है। अस्तित्व ऐसा ही है। अस्तित्व में दो प्रकार की मूल वास्तविकतायें हैं, एक शून्य है और दूसरी वास्तविकता इकाइयाँ हैं। इकाइयाँ, शून्य में हैं। यहाँ पर यह मायने नहीं रखता है कि, कोई इकाई कहाँ है या कोई इकाई एक स्थान से दूसरे स्थान पर विस्थापित हो जाती है, इकाइयाँ सदैव शून्य में ही बनी रहती हैं। ऐसी कोई भी विधि नहीं है कि इकाई को शून्य से अलग किया जा सके। इकाइयाँ, शून्य से अपृथकीय (inseparable) हैं, ये शून्य में संपृक्त (submerged) हैं। ये दोनों वास्तविकतायें सदैव सह-अस्तित्व में विद्यमान हैं। अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में है, जो कि इकाइयों के शून्य में संपृक्त होने के रूप में है। इस अध्याय में हम आगे इसका और विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

शून्य और इकाइयों को समझना
(Understanding Units and Space)

प्रकृति में असंख्य इकाइयाँ हैं; जैसे वायु, जल, मिट्टी, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, भवन, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, मानव इत्यादि। 'प्रकृति में व्यवस्था' के अध्याय में हमने इन इकाइयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया। अब हम यह देख सकते हैं कि ये इकाइयाँ शून्य में हैं। शून्य में संपृक्त इकाइयों के रूप में दोनों का सह-अस्तित्व है। अब हम इकाइयों एवं शून्य के कुछ विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

इकाइयाँ आकार में सीमित है; शून्य असीमित है

(Units are Limited in Size; Space is Unlimited)

हम अपने आस-पास इकाइयों को देख सकते हैं; ये आकार में सीमित हैं। कोई इकाई छोटी या बड़ी हो सकती है, परंतु सभी इकाइयाँ आकार में सीमित ही हैं। अब शून्य को समझते हैं; यह असीमित है अर्थात् यह सब जगह फैला हुआ है। यह सर्वत्र विद्यमान है। शून्य का कोई सीमित आकार नहीं है। हम इसकी सीमाओं को नहीं देख सकते हैं। चूंकि इकाइयाँ आकार में सीमित है इसलिये इन्हें संख्याओं में गिना जा सकता है; जबकि शून्य असीमित हैं। शून्य के बारे में हम केवल यह कह सकते हैं कि शून्य है।

इकाइयाँ क्रिया हैं, वे क्रियाशील हैं; शून्य "क्रिया-शून्य" है

(Units are Activity, they are Active; Space is "No-Activity")

प्रत्येक इकाई एक क्रिया है और यह क्रियाशील है। इकाई में किसी न किसी प्रकार की क्रिया सदैव होती रहती है। एक इकाई अन्य इकाइयों के साथ, परस्परता का निर्वाह भी करती रहती है अर्थात् यह अन्य इकाइयों के साथ परस्परता में क्रियाशील रहती है। जब बात शून्य की आती है तो हम यह देख पाते हैं कि यह क्रिया नहीं है। केवल इकाइयों में ही क्रिया होती है। जहाँ पर कोई इकाई नहीं है, वहाँ पर कोई क्रिया भी नहीं है। दूसरे शब्दों में जहाँ सिर्फ शून्य विद्यमान है, वहाँ कोई क्रिया नहीं है।

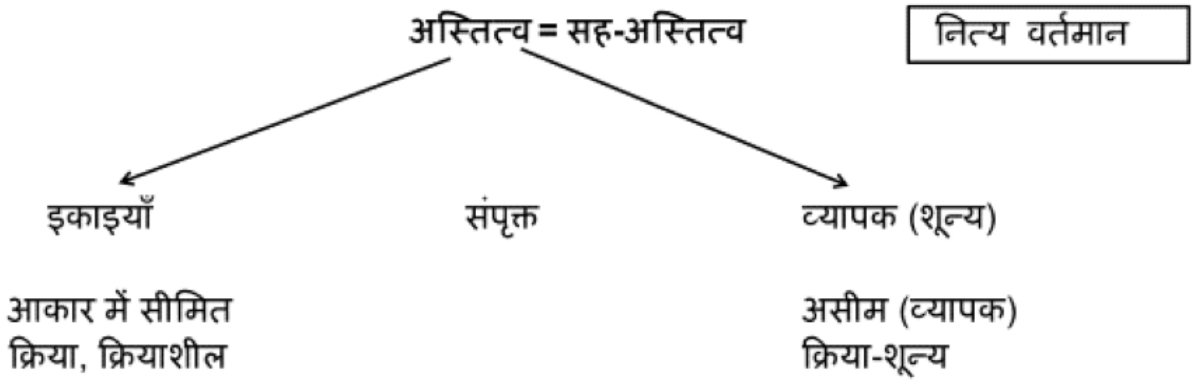

चित्र. 11-1. अस्तित्व = शून्य में संपृक्त इकाइयाँ

अस्तित्व, शून्य में संपृक्त इकाइयों के रुप में है। (चित्र. 11-1. देखें) अस्तित्व ऐसा ही है। इकाइयाँ आकार में सीमित हैं, जबकि शून्य असीमित और सर्वव्यापी है। इकाइयाँ क्रिया हैं और वे क्रियाशील हैं। शून्य में कोई क्रिया नहीं है। इकाइयाँ, शून्य में संपृक्त हैं।

संपृक्तता को समझना

(Understanding Submergence)

अस्तित्व इकाइयों के शून्य में संपृक्त होने के रूप में है। अस्तित्व सह-अस्तित्व है (ए नागराज 2003)।

संपृक्तता के तीन आशय हैं:

1। इकाइयाँ शून्य में ऊर्जित हैं।

2। इकाइयाँ शून्य में स्व-व्यवस्थित हैं।

3। प्रत्येक इकाई दूसरी इकाई के साथ परस्परता को पहचानती है और निर्वाह करती है।

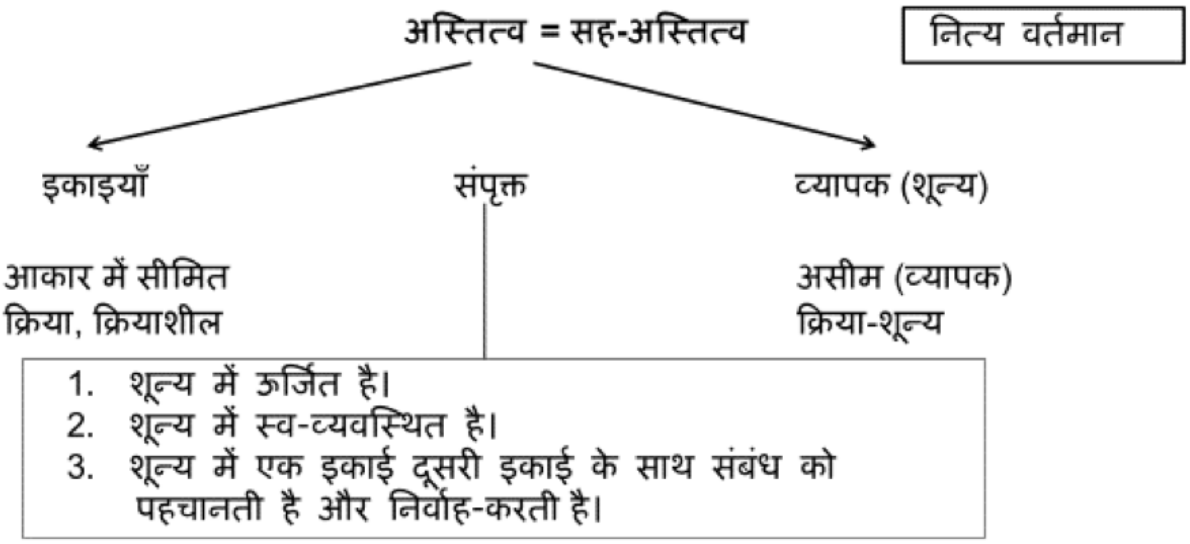

चित्र. 11-2. संपृक्तता

चित्र. 11-2. का उपयोग करते हुए आइये प्रत्येक कथन की व्याख्या करते हैं।

1। इकाइयाँ शून्य में उर्जित हैं

(Units are Energized in Space)

शून्य के सह-अस्तित्व में प्रत्येक इकाई ऊर्जित है। हम किसी भी परमाणु का परीक्षण कर सकते हैं। परमाणु शून्य में है। यह शून्य में संपृक्त है। उप-परमाणविक कण अपने अक्ष के चारों तरफ घूमते रहते हैं। उप-परमाणविक कण अपने नाभिक के चारों तरफ भी विभिन्न कक्षाओं में घूमते रहते हैं। ये और इस प्रकार की अन्य क्रियायें परमाणु में होती रहती हैं। परमाणु में यह ऊर्जा कहाँ से आ रही है? परमाणु शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित है।

अब 'स्वयं(मैं)' का निरीक्षण करें। 'स्वयं(मैं)' में होने वाली क्रियायें इच्छा, विचार और आशा निरंतर चल रही हैं। यह सब क्रियायें शून्य में है और यह शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित है। 'स्वयं(मैं)', शून्य में संपृक्त है और 'शरीर' भी शून्य में संपृक्त है।

2। इकाइयाँ शून्य में स्व-व्यवस्थित हैं

(Units are Self-organized in Space)

शून्य के सह-अस्तित्व में प्रत्येक इकाई स्व-व्यवस्थित है। प्रत्येक इकाई एक निश्चित व्यवस्था में है। एक निश्चित व्यवस्था में रहते हुये यह एक निश्चित आचरण को प्रदर्शित करती हैं; इसके निश्चित आचरण के आधार पर कोई भी उस इकाई को पहचान सकता है, अध्ययन कर सकता है।

3। इकाइयां शून्य के सह-अस्तित्व में दूसरी इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं

(Units recognize their Relationship and fulfil it with Every Other Unit in Space)

शून्य के सह-अस्तित्व में इकाइयाँ प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानती और निर्वाह करती हैं।

मानव-शरीर अनेकों कोशिकाओं से मिलकर बना हुआ है। ये सभी कोशिकायें शून्य में हैं; और अन्य कोशिकाओं के साथ परस्परता को पहचानते हुये और निर्वाह करते हुये अंग-प्रत्यंग का; और अंततः मानव-शरीर का निर्माण करती हैं। और अधिक सटीकता से देखें तो पता चलता है कि ये कोशिकायें अनेकों अणुओं से बनी हुई हैं और ये अणु अनेकों परमाणुओं से बने हुये हैं। ये अणु और परमाणु शून्य में संपृक्त हैं अर्थात् ये शून्य में ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं और अन्य परमाणुओं और अणुओं के साथ शून्य के सह-अस्तित्व में संबंध को पहचानते हैं और निर्वाह करते हैं। इसी तरह से आणविक संरचनायें, कोशिकायें, अंग-प्रत्यंग इत्यादि बनते हैं और अंत में 'शरीर' बनता है। यह सब कुछ शून्य की संपृक्तता में घटित होता है।

अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में - शून्य में संपृक्त इकाइयाँ

(Existence as Coexistence – Units Submerged in Space)

'अस्तित्व सह-अस्तित्व है' पर चर्चा के प्रकाश में अब हम पूरे अस्तित्व के संपूर्ण चित्र को देख सकते हैं।

पृथ्वी पर हम जड़ इकाइयों के फैलाव को देख सकते हैं, जिसमें विभिन्न तरह के परमाणुओं से लेकर अणुओं, आणविक संरचनाओं, कोशिकाओं, कोशिकीय संरचनाओं इत्यादि तक और साथ ही साथ चैतन्य इकाइयाँ भी शून्य में संपृक्त हैं, सह-अस्तित्व में हैं, एवं एक दूसरे के साथ परस्परता को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं। इस फैलाव को चित्र 11-3 में इंगित किया गया है।

इन सब का आधार सह-अस्तित्व है। इस सह-अस्तित्व का प्रकटन शून्य में इकाइयों के संपृक्त होने के रूप में हो रहा है। इकाइयाँ आकार में सीमित हैं, क्रिया हैं और वह क्रियाशील हैं। शून्य असीमित है, सर्वव्यापी है और इसमें कोई क्रिया नहीं है। शून्य में संपृक्तता के आधार पर इकाइयाँ उर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं एवं शून्य में अन्य इकाइयों के साथ परस्परता को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं।

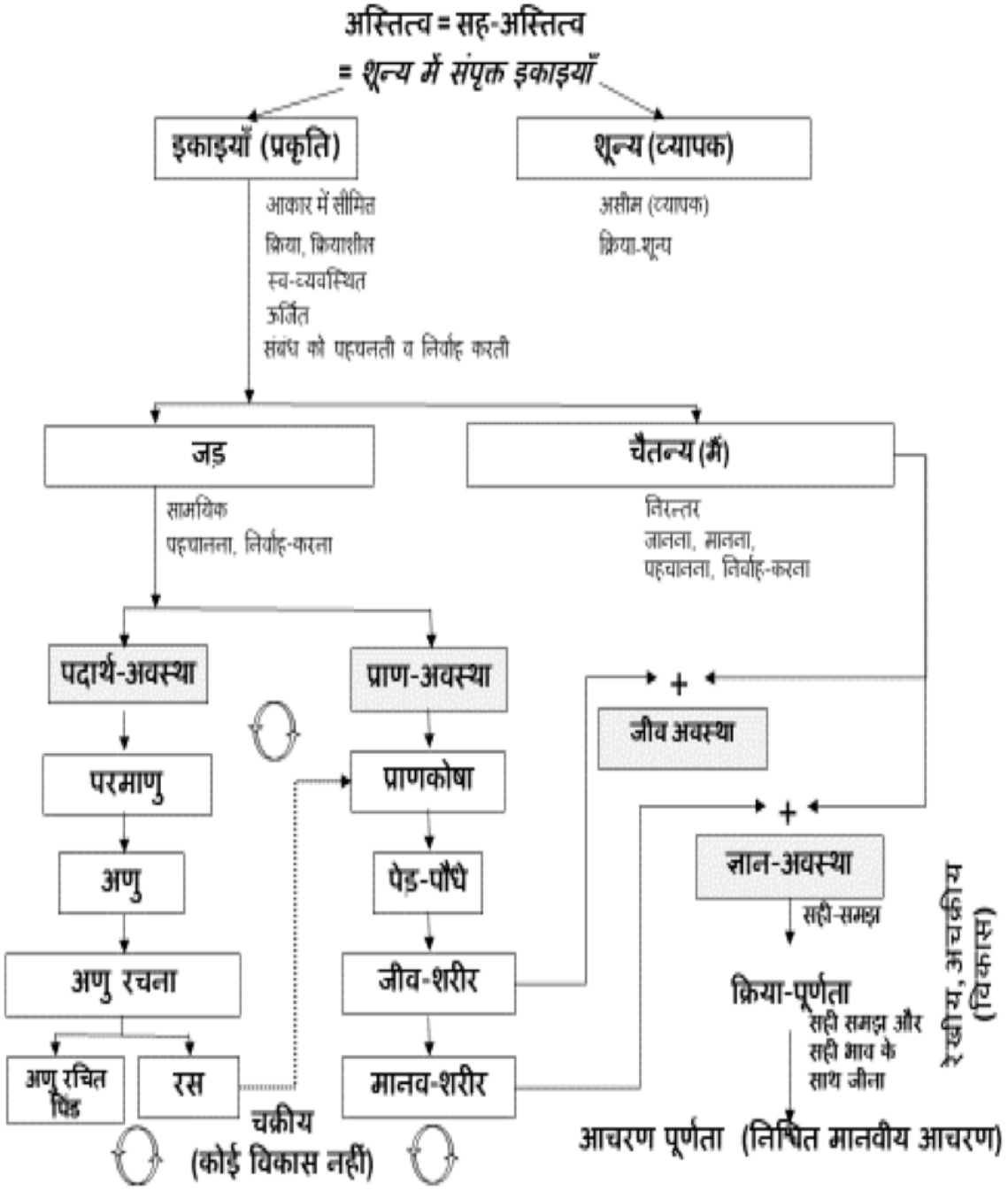

चित्र. 11-3. सह-अस्तित्व का प्रगटन

जड़ और चैतन्य इकाइयाँ
(Material and Consciousness Units)

इकाइयाँ दो प्रकार की हैं- जड़ इकाइयाँ और चैतन्य इकाइयाँ।

जड़ इकाइयाँ काल में सामयिक हैं, जबकि चैतन्य इकाइयाँ (स्वयं) निरंतर हैं (जैसा कि हमने पिछले अध्यायों में देखा था कि चैतन्य (स्वयं) इकाई की आवश्यकतायें और क्रियायें काल में निरंतर है, जबकि जड़ इकाइयों की आवश्यकतायें और क्रियायें सामयिक हैं।)

जड़ इकाइयाँ परस्परता में संबंध को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं - इनका आचरण निश्चित है। चैतन्य इकाइयाँ परस्परता में संबंध को या तो जानने के बिना सिर्फ मानने के आधार पर 'पहचानना और निर्वाह-करना' करती हैं, जिससे मानव का आचरण अनिश्चित होता है या फिर जानने के अनुसार मानने के आधार पर 'पहचानना, निर्वाह-करना' करती है; जिससे मानव का आचरण निश्चित होता है। शरीर (जड़-इकाई) और स्वयं (चैतन्य-इकाई) के संदर्भ में अध्याय-5 में चर्चा किया जा चुका है। जानना और मानना चैतन्य-इकाई और जड़-इकाई के बीच के अंतर को स्पष्ट करता है; क्योंकि जानना और मानना केवल चैतन्य-इकाई में ही देखा जा सकता है, जबकि जड़-इकाइयों में इन्हें नहीं देखा जा सकता।

आप इन दो विशेषताओं को सभी जड़-इकाइयों में देख सकते हैं। उदाहरण के लिये पदार्थ-अवस्था की इकाइयाँ जैसे वायु, जल, मिट्टी, धातु इत्यादि या प्राण-अवस्था की इकाइयाँ जैसे पेड़, पौधे, पशु-शरीर और मानव-शरीर हैं। यह सभी इकाइयाँ काल में सामयिक हैं और परस्परता में केवल 'पहचानना और निर्वाह-करना' करती हैं, इनमें मानना नहीं होता है। इन अवस्थाओं में मानने की क्षमता नहीं है। यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि पशु-शरीर और मानव-शरीर भी प्राण अवस्था की ही इकाइयाँ हैं, इन्हीं दो विशेषताओं के साथ।

सभी जड़-इकाइयाँ दूसरी छोटी जड़-इकाइयों का संघठन हैं। सबसे छोटी, मूलभूत, जड़-इकाई जो व्यवस्थित रूप में पायी जाती है, वह परमाणु है। इससे ज्यादा छोटी अन्य कोई इकाई अस्तित्व में नहीं है, जो व्यवस्थित भी हो। समस्त जड़ इकाइयाँ अंततोगत्वा एक या एक से अधिक परमाणुओं के संघठन हैं। एक परमाणु, दूसरे परमाणुओं के साथ मिलकर आणविक संरचना का निर्माण करते हैं। आणविक संरचना पिण्ड रूप में या रस के रूप में विद्यमान हो सकती हैं। रस पौधों की कोशिकाओं का आधार होता हैं और इस प्रकार की कोशिकायें मिलकर पौधे, पशु-शरीर एवं मानव-शरीर का निर्माण करती हैं।

यह सब कैसे हो रहा है? क्या कोई और या कुछ और इन्हें नियंत्रित कर रहा है? इस प्रकार के अनेकों प्रश्न आपकी कल्पना में आ सकते हैं। ये सभी क्रियायें स्व-व्यवस्थित तरीके से, प्राकृतिक तरह से घटित हो रही हैं। एक सरल व्यवस्थित संरचना से लेकर अधिक विकसित और व्यवस्थित संरचना तक – ऐसे ही घटित होता हुआ प्रतीत हो रहा है, ऐसा है कि नहीं?

अब चैतन्य के क्षेत्र में आते हैं, तो यहाँ केवल एक ही तरह की इकाई है, जिसे 'स्वयं(मैं)' के रूप में संदर्भित किया गया है। नि:संदेह, अनेक चैतन्य-इकाइयाँ हो सकती हैं। 'स्वयं(मैं)' को जानने, मानने, पहचानने और निर्वाह-करने की क्रियाओं के द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। इसमें जानने की आवश्यकता है और क्षमता भी है। सहज-स्वीकृति का संदर्भ लेते हुये हमने इसका अध्ययन किया था। जानने का अर्थ है सही-समझ होना या अपने जीने के समस्त फैलाव में व्यवस्था को समझना। एक 'स्वयं(मैं)' पशु-शरीर के साथ सह-अस्तित्व में हो सकता है, जैसे कि हम बहुत तरह के पशु, पक्षियों में देखते हैं। यह मानव-शरीर के साथ भी सह-अस्तित्व में हो सकता है। इस प्रकार से हम अस्तित्व की इकाइयों को चार अवस्थाओं में वर्गीकृत कर सकते हैं।

जड़ इकाइयों का वर्गीकरण
(Classification of Material Units)

जड़ इकाइयों को दो अवस्थाओं में वर्गीकृत कर सकते हैं – पदार्थ-अवस्था एवं प्राण-अवस्था ।

पदार्थ-अवस्था में सबसे छोटी स्व-व्यवस्थित इकाई (व्यवस्था में) परमाणु है। हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, लोहा, यूरेनियम इसके कुछ उदाहरण हैं। ये परमाणु एक निश्चित तरह से आपस में जुड़कर अणु बनाते हैं। यह अणु भी स्व-व्यवस्थित होते हैं और एक निश्चित आचरण प्रदर्शित करते हैं। वातावरण में हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन इत्यादि अणु हैं। इस प्रकार से असंख्य अणु हैं। अणु मिलकर आणविक संरचना बनाते हैं। जल इसी प्रकार की एक आणविक संरचना का उदाहरण है, जिसमें हाइड्रोजन के दो अणु और ऑक्सीजन का एक अणु मिलकर जल की आणविक संरचना का निर्माण करते हैं। बेंजीन भी आणविक संरचना का उदाहरण है जिसमें कार्बन के छ: और हाइड्रोजन के छ: परमाणु होते हैं। इसी प्रकार से अनेक आणविक संरचनायें हैं। यह आणविक संरचनायें एक या एक से अधिक प्रकार से संयोजित होकर बड़े पिण्ड का निर्माण करती हैं। पृथ्वी इसी प्रकार के पिण्ड का एक उदाहरण है। इसी प्रकार से अनेक पिण्ड हो सकते हैं। 'रस' भी एक आणविक संरचना ही हैं जो कि एक विशेष प्रकार का पिण्ड है; यह प्राण-अवस्था का पोषण करता है। रस के उदाहरण जल, एमिनो एसिड इत्यादि हैं, इसी प्रकार से अनेक तरह के रस होते हैं।

अतः, यह पदार्थ-अवस्था के रूप में सह-अस्तित्व का प्रकटीकरण है। प्रत्येक स्तर पर इकाइयाँ शून्य में हैं, ये शून्य में संपृक्त हैं, ऊर्जित हैं और स्व-व्यवस्थित हैं। ये शून्य में अन्य इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती हैं और निर्वाह-करती हैं। इनका पहचानना और निर्वाह-करना निश्चित होता है। नि:संदेह, मूल में सह-अस्तित्व है। यह सदैव विद्यमान है।

प्राण-अवस्था में सबसे छोटी स्व-व्यवस्थित इकाई कोशिका है। संघटन-विघटन की क्रिया के अतिरिक्त इनमें श्वसन-प्रश्वसन की क्रिया भी होती है। ये भी शून्य में अन्य इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं। कोशिकायें मिलकर पेड़-पौधे बनाती हैं। कोशिकायें संयोजित होकर अंग-प्रत्यंग और अंततः पशु-शरीर और मानव-शरीर का निर्माण करती हैं। ये प्राण-अवस्था में सह-अस्तित्व का प्रकटीकरण है। प्रत्येक स्तर पर इकाईयां शून्य में है, ये शून्य में संपृक्त हैं, ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं। ये शून्य में अन्य इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती हैं और निर्वाह-करती हैं। इनका पहचानना और निर्वाह-करना निश्चित होता है। नि:संदेह, इनके मूल में भी सह-अस्तित्व है; जो सदैव विद्यमान है।

चैतन्य-इकाइयों का वर्गीकरण जड़-इकाइयों के साहचर्य में
(Classification of Consciousness Units in Association with Material Units)

जीव-अवस्था, चैतन्य (स्वयं) और पशु-शरीर (जड़) का सह-अस्तित्व है। असंख्य प्रकार के पशु और पक्षी जीव-अवस्था में हैं। उदाहरण के लिये, एक बकरी, चैतन्य (स्वयं) और बकरी-शरीर (जड़) का सह-अस्तित्व है। जिसका 'स्वयं(मैं)' यह मानता है कि वह बकरी है और उसमें जीने की आशा है। यह बकरी के रूप में एक निश्चित आचरण प्रदर्शित करता है। उसके सभी 'चयन' इसी पर आधारित होते हैं। बकरी अपने 'शरीर' के अनुकूल आस्वादन के आधार पर विशिष्ट प्रकार के पौधों के समूह का चयन करती है। यह अहिंसक है। इसी प्रकार से एक बाघ भी चैतन्य (स्वयं) और बाघ-शरीर (जड़) का सह-अस्तित्व है। जिसका 'स्वयं(मैं)' यह मानता है कि वह बाघ है और उसमें जीने की आशा है। यह प्राकृतिक रूप से हिंसक है और अपने 'शरीर' के पोषण के लिये माँस को भोजन के रूप में 'चयन' करता है। उसके आचरण में बाघ का एक निश्चित आचरण प्रदर्शित होता है। ऐसा ही प्रत्येक पशु और पक्षी के लिये है।

पशु-शरीर का पहचानना और निर्वाह-करना निश्चित है, जबकि 'स्वयं(मैं)' का पहचानना और निर्वाह-करना उसके 'मानना' पर आधारित है; उसमें जीने की आशा के साथ-साथ स्वयं को 'शरीर' स्वीकारने की मान्यता है। नि:संदेह, मूल में सह-अस्तित्व है, जो सदैव विद्यमान है।

ज्ञान-अवस्था भी चैतन्य (स्वयं) और मानव-शरीर (जड़) का सह-अस्तित्व है। ज्ञान-अवस्था की अनेक इकाइयाँ हैं। मानव-शरीर काला, गोरा, सफेद, लंबा, ठिगना, मोटा, पतला या इसमें अन्य प्रकार की भिन्नतायें हो सकती हैं। 'स्वयं(मैं)' एक जैसा ही है, अतः इस दृष्टि से सभी मानव एक ही प्रकार के हैं। मानव-शरीर का पहचानना और निर्वाह-करना निश्चित है, जबकि इसके 'स्वयं(मैं)' का पहचानना और निर्वाह-करना इसके जानने के अनुसार मानने पर आधारित है या बिना जाने सिर्फ मानने पर आधारित है, परन्तु निरंतर सुख पूर्वक जीने की आशा सदैव बनी रहती है। इसका भी आधार सदैव विद्यमान रहने वाला सह-अस्तित्व ही है।

अस्तित्वगत दृष्टि में विकास
(Development in the Existential Sense)

अब हम यह देख सकते हैं कि सब कुछ सह-अस्तित्व पूर्वक है। जो भी अस्तित्व में है, वह मूलतः इस सदैव विद्यमान सह-अस्तित्व की ही अभिव्यक्ति है। यह स्वयं को संबंध और व्यवस्था के रूप में अभिव्यक्त कर रहा है। इस प्रकटीकरण की प्रक्रिया में जो कुछ भी घटित हो रहा है वह मानव के व्यवस्था में होने से ही पूर्ण होना है।

साधारणतया, मान्यता यह है कि अस्तित्व जड़ है। चैतन्य का संसार दृष्टि में ही नहीं है। परिणामस्वरूप विकास का समग्र केंद्र-बिंदु जड़-संसार ही है, विशेषकर पदार्थ-अवस्था। जो भी हम जड़-संसार में करते हैं वह चक्रीय है (चित्र. 11-4. देखें)। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि हम जड़ संसार में कितना कुछ करते हैं, क्योंकि इसका चक्रीय होना एक बाध्यता है।आप यह देख सकते हैं कि पदार्थ-अवस्था में एक चक्र है, प्राण-अवस्था में एक चक्र है और पदार्थ-अवस्था एवं प्राण-अवस्था के बीच भी एक चक्र है। इन चक्रों को 'प्रकृति में व्यवस्था' के अध्याय में चर्चा किया गया है। प्रकृति का यह भाग चक्रीय है और सामयिक है। यह परिवर्तित होता रहता है, अतः यह महत्वपूर्ण नहीं है कि हम यहाँ पर क्या-क्या करते हैं, क्योंकि यह सब कुछ प्राकृतिक चक्र में वापस चला ही जाता है। इस दृष्टि से यहाँ पर कोई विकास नहीं होता है। हम अर्थपूर्ण ढंग से इस भाग को स्रोत के रूप में उपयोग कर सकते हैं। मानव के विकास में पदार्थ-अवस्था की एक भूमिका है। जड़-संसार, जड़-शरीर की पूर्ति के लिये है। यह सामाजिक विकास के लिये भी एक स्रोत है। प्राण-अवस्था 'शरीर' के पोषण के लिये, प्राण-अवस्था तथा पदार्थ-अवस्था 'शरीर' के संरक्षण के लिये और पदार्थ-अवस्था सामाजिक विकास हेतु यंत्र एवं उपकरणों के निर्माण में स्रोत हो सकता है। नि:संदेह, जड़-संसार व मानव के मध्य होने वाली प्रक्रियायें भी प्राकृतिक नियमों के अनुरूप होनी आवश्यक हैं, अर्थात् इनका चक्रीय और परस्पर-पूरक होना आवश्यक है।

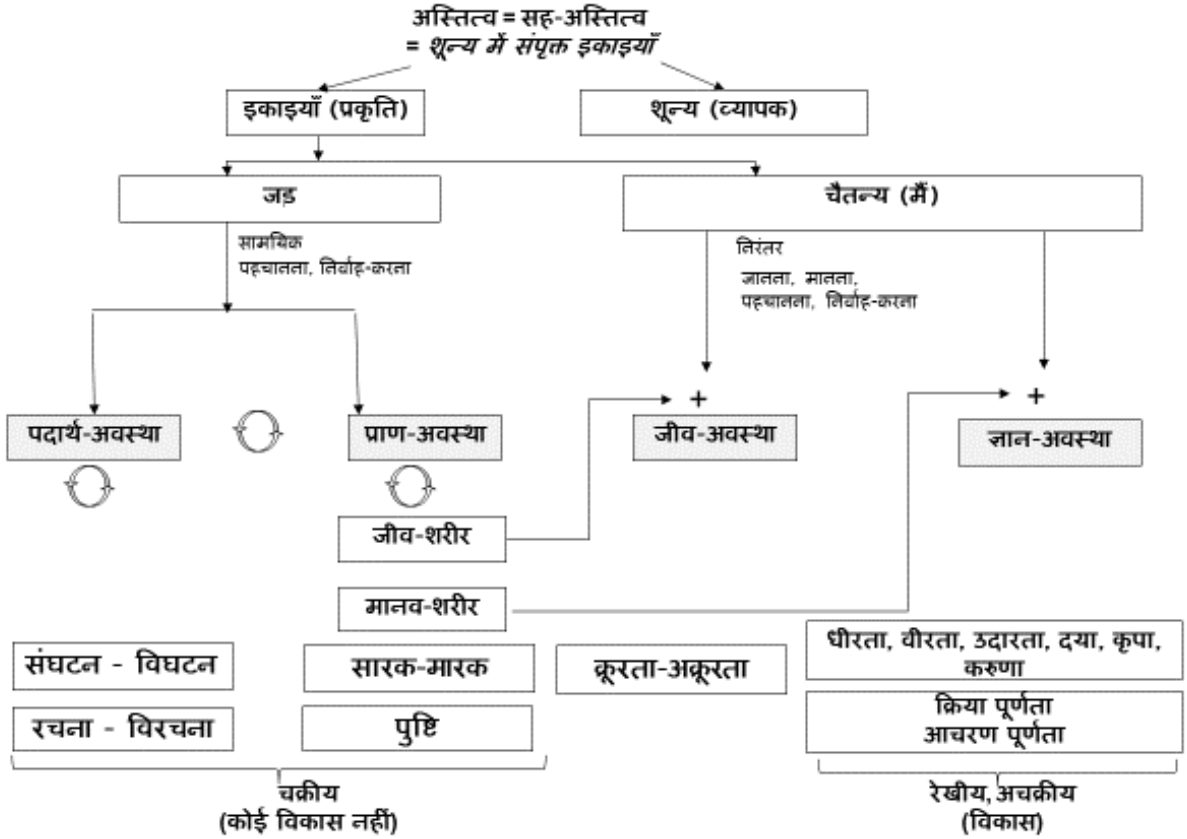

चित्र. 11-4. चक्रीय और अचक्रीय क्षेत्र

केवल ज्ञान-अवस्था अर्थात् मानव में 'स्वयं(मैं)' के विकास या संक्रमण की क्षमता है, जो चक्रीय नहीं है। विकास या स्थाई परिवर्तन चैतन्य के क्षेत्र में ही संभव है, यही वास्तविक विकास है। इस प्रचलित मान्यता के कारण कि मानव एक शरीर (जड़) है और अस्तित्व जड़-प्रकृति है, अभी तक इस संभावना पर बहुत कम प्रयास किया गया है। अब इस मान्यता के ठीक होने के साथ ही यह वास्तविक विकास अर्थात् स्थायी परिवर्तन घटित हो सकता है। इसे हमने पिछली कक्षाओं में गहराई से अध्याय-6, 'स्वयं में व्यवस्था' में अध्ययन किया था। यह विकास 'स्वयं(मैं)' के स्तर पर क्रियापूर्णता और आचरणपूर्णता के रूप में व्यक्त होता है।

क्रियापूर्ण होने के लिये मूलतः सही-समझ (सह-अस्तित्व को समझना) एवं सही-भाव (सह-अस्तित्व का भाव) का 'स्वयं(मैं)' में विकसित होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में इसका आशय यह है कि चिंतन (संबंध एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी का), समझ (व्यवस्था का) और अनुभव (सह-अस्तित्व एवं परस्परता-पूरकता का) की क्रियाओं में जागृत होना है, जैसा कि अध्याय-6 में चर्चा किया गया है।

आचरणपूर्णता का आशय सही-समझ और सही-भाव के आधार पर जीने से है। इसका पहला भाग सही-समझ और सही-भाव के अनुरूप संस्कार (हर क्षण इच्छा, विचार एवं आशा के संग्रह से प्राप्त स्वीकर्यतायें) का विकास करना है। दूसरे भाग में व्यवहार, कार्य एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी के रूप में सही-समझ और सही-भाव की अभिव्यक्ति है। 'स्वयं(मैं)' में सह-अस्तित्व के भाव के साथ किया गया व्यवहार, स्वयं और दूसरे व्यक्ति दोनों के लिये ही तृप्ति दायक है। इससे उभय-सुख अथवा न्याय सुनिश्चित होता है। सह-अस्तित्व की स्पष्टता से शेष-प्रकृति के साथ किये गये कार्य से उभय समृद्धि

सुनिश्चित होती है। यह मानव की समृद्धि एवं शेष-प्रकृति की सुरक्षा (संरक्षण, संवर्धन और सदुपयोग) को सुनिश्चित करता है एवं बड़ी-व्यवस्था में भागीदारी, मानव-लक्ष्य (सुख, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व) की पूर्ति को सुनिश्चित करता है।

मानव में यह विकास, यह संक्रमण, शिक्षा-संस्कार के द्वारा होता है। अस्तित्व में इस विकास के लिए सभी तरह के प्रावधान उपलब्ध हैं।

इस सम्पूर्ण अस्तित्व में, प्रत्येक इकाई छोटे से छोटे परमाणु से लेकर बड़े से बड़े ग्रह-गोल तक, छोटी से छोटी चिड़िया से लेकर बड़े से बड़े पशु तक सब व्यवस्था में हैं। प्रकृति की असंख्य इकाइयों में ज्ञान-अवस्था (मानव) की संख्या बहुत कम है; संभवतः 0.1% से भी कम है। जब हम अस्तित्व के संपूर्ण चित्र के केवल एक छोटे हिस्से को जो मानव की भागीदारी से सम्बंधित है देखते हैं तो इसमें बहुत सी समस्यायें दिखाई देती हैं जिन्हें हम संपूर्ण वास्तविकता मान बैठते हैं। पर जब हम संपूर्ण चित्र को देखते हैं तो हम पाते हैं कि इस वास्तविकता का बड़ा हिस्सा पहले से ही व्यवस्था में है और सिर्फ इसका एक छोटा बचा हुआ हिस्सा ही व्यवस्था में नहीं है। वास्तविकता में जो कुछ भी विद्यमान है उसका अधिकतम भाग व्यवस्था में ही है। ज्ञान-अवस्था की इकाइयाँ अर्थात् पूरा मानव समाज सम्पूर्ण अस्तित्व का बहुत ही छोटा सा प्रतिशत है जिसमें विकास का पूर्ण होना अभी भी शेष है। मानव में भी मानव-शरीर पहले से ही स्व-व्यवस्थित है, जो निश्चित आचरण को प्रदर्शित करता है अतः इसमें समस्या नहीं है। यह 'स्वयं(मैं)' ही है जिसका स्व-व्यवस्थित होना शेष है। 'स्वयं(मैं)' में भी समस्या इसका बिना जाने ही मानने के आधार पर संचालित होना है। इसे जानने की अर्थात् सह-अस्तित्व, व्यवस्था और संबंध को जानने की आवश्यकता है।

ज्ञान-अवस्था को अस्तित्व संबंधी इस यात्रा को अभी पूर्ण करना है। चित्र. 11-3. और 11-4. में यह दिखाया गया है कि मानव को इन दोनों बातों को पूर्ण करना है; पहला 'स्वयं(मैं)' के स्तर पर क्रियापूर्णता को सुनिश्चित करना और दूसरा आचरणपूर्णता को सुनिश्चित करना। केवल यही विकास है जो अस्तित्व में होना अभी शेष है। पूर्व में इसे जीव-चेतना से मानव-चेतना में विकास या संक्रमण के रूप में बताया गया है। यही विकास है जो कि रेखीय है, इसमें वापस पीछे जाना नहीं होता है क्योंकि यह चक्रीय नहीं है। अस्तित्व का मात्र यही हिस्सा शेष है जिसे अभी व्यवस्था में होना है।

पुरातन समय से ही समस्त मानवीय प्रयास इसीलिये हो रहे हैं। इस भाग को मानव के द्वारा पूर्ण किया जाना अभी शेष है।

विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व की अभिव्यक्ति
(Expression of Co-existence at Different Levels)

इस पृष्ठभूमि के साथ हम यह देख सकते हैं कि हमने अभी तक व्यवस्था के बारे में मानव, परिवार, समाज और प्रकृति के स्तर पर विचार विमर्श किया है जो कि मूल रूप से अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में व्यवस्थित है, प्रतिबिम्बित (अभिव्यक्ति) है। अस्तित्व शून्य में संपृक्त इकाइयों के रूप में है। इकाइयाँ शून्य के सह-अस्तित्व में ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं एवं प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानती हैं एवं निर्वाह करती हैं। अन्य इकाइयों के साथ परस्परता में संबंध को पहचानना एवं निर्वाह करना मूलतः परस्पर-पूरकता के संबंध को दर्शाता है।

प्रकृति के स्तर पर यह सह-अस्तित्व सभी इकाइयों के बीच परस्पर-पूरकता के रूप में व्यक्त होता है। चूंकि इकाइयाँ स्व-व्यवस्थित हैं और दूसरी इकाइयों के साथ इस परस्पर-पूरकता के संबंध को पहचानती हैं एवं निर्वाह करती हैं; इस प्रकार सभी इकाइयाँ मिलकर साथ-साथ व्यवस्था में हैं अर्थात् समग्र प्रकृति व्यवस्था में है।

समाज के स्तर पर, चारों मानव लक्ष्य (सुख, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व) विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व की ही अभिव्यक्ति है:

- सुख, (सही-समझ, सही-भाव) का पर्याय मूलतः सह-अस्तित्व को समझना और 'स्वयं(मैं)' के स्तर पर सह-अस्तित्व के भाव एवं विचार को सुनिश्चित करना है।
- समृद्धि, मूलतः शेष-प्रकृति के साथ मानव के सह-अस्तित्व को सुनिश्चित करने का प्रतिफल है, जिसका परिणाम मानव में समृद्धि के रूप में और शेष-प्रकृति की सुरक्षा के रूप में प्राप्त होता है। समृद्धि, मानव द्वारा शेष-प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व में जीने का एक सहज प्रतिफल है।
- अभय से तात्पर्य, परिवार और समाज के स्तर पर दूसरे मानवों के साथ सह-अस्तित्व को सुनिश्चित करना है।
- सह-अस्तित्व, संपूर्ण प्रकृति के स्तर पर परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित करना है।
- इन लक्ष्यों की पूर्ति का कार्यक्रम, परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के सभी आयामों को सुनिश्चित करना है जो कि सह-अस्तित्व में जीने की ही एक अभिव्यक्ति है।
- परिवार के स्तर पर 'संबंध' मूलतः एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों के साथ सह-अस्तित्व में जीने की अभिव्यक्ति है। नौ भाव (विश्वास, सम्मान,... प्रेम) मानव-मानव 'संबंध' की समझ एवं सह-अस्तित्व में जीने की स्वीकार्यता की अभिव्यक्ति हैं। 'विश्वास' का अर्थ एक मानव का दूसरे मानव के साथ सह-अस्तित्व में जीने की स्वीकार्यता है। 'प्रेम' का अर्थ एक मानव का हर एक मानव के साथ और अंततः अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ सह-अस्तित्व में जीने की स्वीकार्यता है। 'न्याय', एक मानव का अन्य मानवों के साथ सह-अस्तित्व का अनुभव करना और इसका निर्वाह-करना है।

वैयक्तिक स्तर पर मानव 'स्वयं(मैं)' एवं 'शरीर' का सह-अस्तित्व है।

- 'शरीर' के लिये स्वयं में सह-अस्तित्व की स्वीकृति ही संयम का भाव है।
- 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के बीच सह-अस्तित्व के इस भाव को व्यक्त करने से 'शरीर' के स्तर पर स्वास्थ्य सुनिश्चित होता है। स्वास्थ्य में 'शरीर' के सभी अंगों का सह-अस्तित्व भी सम्मिलित है।
- 'स्वयं(मैं)' के स्तर पर, हमारी मूल चाहना निरंतर सुख है, जो सह-अस्तित्व में अनुभव, प्रकृति में व्यवस्था की समझ, बड़ी व्यवस्था में भागीदारी का चिंतन, और सह-अस्तित्व (प्रेम) के भाव एवं सह-अस्तित्व के विचार (करुणा) से सुनिश्चित होता है।

इसीलिये, हमने व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और प्राकृतिक स्तर पर सह-अस्तित्व की अभिव्यक्ति की चर्चा की। अध्याय 2 से 11 तक की संपूर्ण चर्चा को नीचे दिये गये एक चार्ट के रूप में संक्षेपित किया जा सकता है। जिसे एक शब्द में भी व्यक्त किया जा सकता है, जो 'सह-अस्तित्व' है।

स्तर का नाम	संबंध	विवरण
4b. अस्तित्व	सह-अस्तित्व	इकाइयाँ शून्य में संपृक्त हैं (ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं, संबंध को पहचानती है एवं निर्वाह करती हैं)
4a. प्रकृति	परस्पर-पूरकता	चार अवस्थायें

3. समाज	सही-समझ,सही-भाव, समृद्धि अभय (विश्वास) सह-अस्तित्व	मानव-प्रकृति संबंध प्राकृतिक नियम सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था मानवीय परंपरा
2. परिवार	सह अस्तित्व का भाव, विश्वास, सम्मान ..... प्रेम	मानव-मानव संबंध न्याय अखण्ड समाज
1b. मानव	'स्वयं(मैं)' एवं 'शरीर' का सह-अस्तित्व	'स्वयं(मैं)' – 'शरीर' संबंध
1a. 'स्वयं(मैं)'	निरंतर सुख (सुख, शांति, संतोष, आनंद)	सह-अस्तित्व का अनुभव, प्रकृति में व्यवस्था की समझ, संबंध का चिंतन– सह-अस्तित्व में जीने के अर्थ में निश्चित इच्छायें, सह-अस्तित्व का भाव और विचार (प्रेम एवं करुणा), दयापूर्ण कार्य, व्यवहार एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी

अस्तित्व में मानव की भागीदारी को समझना

(Understanding Role of Human Being in Existence)

इस पृष्ठभूमि के साथ, हम यह देख सकते हैं कि मानव की अस्तित्व में निश्चित भागीदारी है। इसके माध्यम से विकास की प्रक्रिया पूरी होती है। जब हमने प्रकृति का अध्ययन किया तो देखा कि प्रकृति की प्रत्येक अवस्था का निश्चित स्वभाव है एवं मानव को इसे अपने प्रयासों के द्वारा स्वयं अनुभव करना है; यह स्वतः घटित नहीं होगा। 'स्वयं(मैं)' में निरंतर सुखपूर्वक जीने की आशा प्राकृतिक रूप से ही है। सुख का भाव 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था का सूचक है और यदि 'स्वयं(मैं)' में दु:ख है तो इसका अर्थ यह हुआ कि 'स्वयं(मैं)' व्यवस्था में नहीं है, अर्थात् यह अपनी सहज स्वीकृति के अनुरूप नहीं है; अतः इसे व्यवस्था में होने के लिये अपनी सहज स्वीकृति के अनुरूप होने का प्रयत्न करना पड़ेगा। इसके लिये मानव को पहले अपना स्वभाव और अस्तित्व में अपनी भागीदारी को समझना होगा, तत्पश्चात इसके अनुसार जीने के लिये प्रयास करना होगा।

इसका अध्ययन करने के लिये आइये कुछ घटनाओं का और उनमें मानव की भागीदारी का परीक्षण करते हैं। इसके लिए आइये जाँच करके देखते हैं:

- शेष-प्रकृति के होने के लिये एवं प्रकृति की तीनों अवस्थाओं के बीच परस्पर-पूरकता के संबंध के निर्वाह के लिये हमने क्या किया है? (कुछ भी नहीं!, यहाँ तक कि ये मानव के बिना भी अस्तित्व में हैं और ये मानव की भागीदारी के बिना भी परस्पर-पूरकता के संबंध को सुनिश्चित करती हैं।)
- हमने अपने 'शरीर' के होने के लिये क्या किया है?(कुछ भी नहीं!, यह सह-अस्तित्व पूर्वक बना ही हुआ है।)

- हमने 'स्वयं(मैं)' के होने के लिये क्या किया है?(कुछ भी नहीं!, यह सह-अस्तित्व पूर्वक बना हुआ ही है।)
- 'स्वयं(मैं)' में कल्पनाशीलता की क्रिया के लिये और जानने की क्षमता के लिये हमने क्या किया है?(कुछ भी नहीं!, यह सह-अस्तित्व पूर्वक बना ही हुआ है।)
- हमने 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व में होने के लिये क्या किया है?(कुछ भी नहीं!, यह भी सह-अस्तित्व पूर्वक बना ही हुआ है।)

आप सहज ही इसका सत्यापन कर सकते हैं कि यह सब सह-अस्तित्व पूर्वक मानव की भागीदारी के बिना ही घटित हो रहा है। वास्तव में हम यह भी देख सकते हैं कि मानव का होना भी सह-अस्तित्व पूर्वक ही है, सह-अस्तित्व में है, सह-अस्तित्व की ही एक अभिव्यक्ति है। इस अस्तित्व में हम मानव के रूप में हैं, अतः अस्तित्व में हमारी भी एक निश्चित भागीदारी है।

मानव को सिर्फ करना यह है कि उसे सह-अस्तित्व को समझना है और सह-अस्तित्व में जीना है। (चित्र. 11-5. का संदर्भ लें)

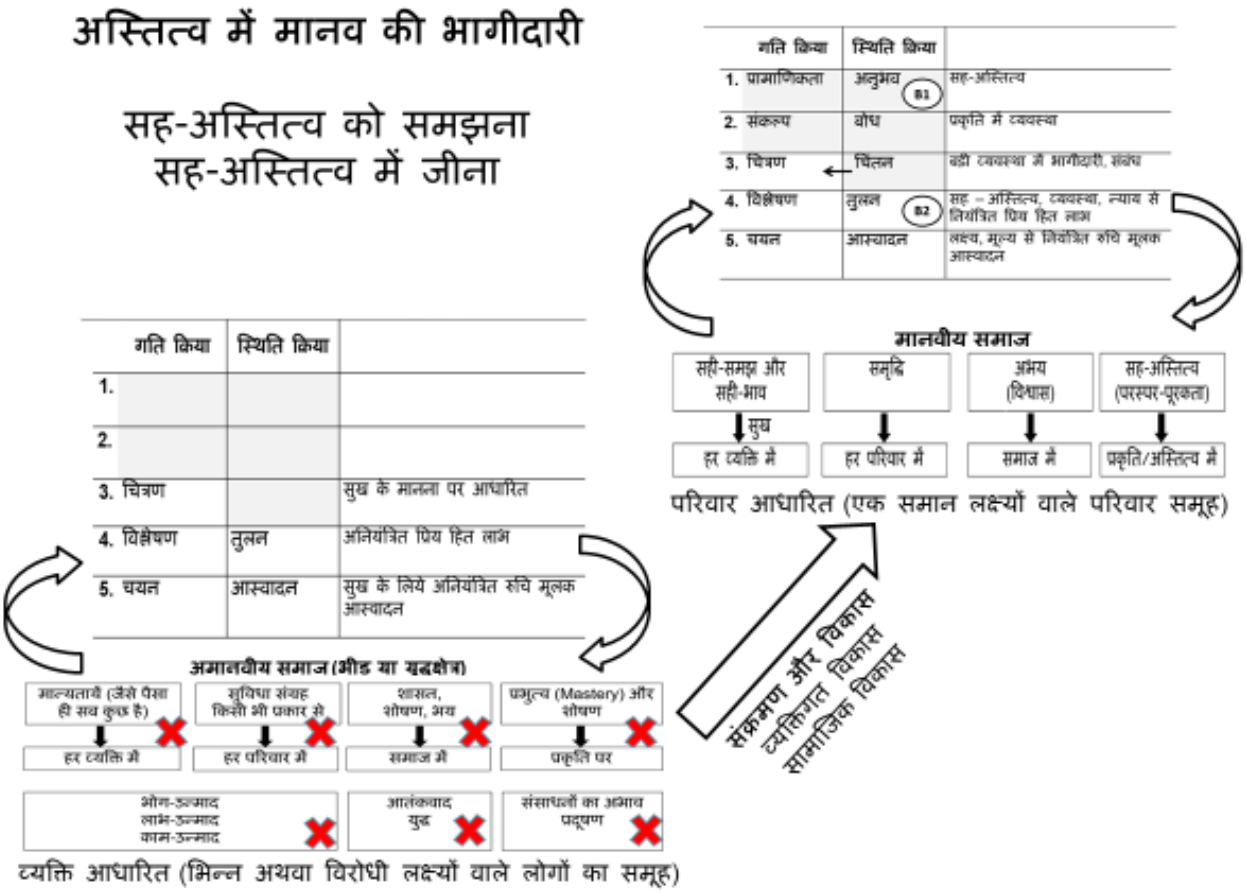

चित्र. 11-5. अस्तित्व में मानव की भागीदारी

1.सह-अस्तित्व को समझना

- सह-अस्तित्व का अनुभव करना अर्थात् इसे 'स्वयं(मैं)' में सुनिश्चित करना;
- सह-अस्तित्व के विचार एवं भावों को सुनिश्चित करना अर्थात् स्वयं की कल्पनाशीलता को सह-अस्तित्व के अनुसार सुनिश्चित करना जिसका प्रतिफल 'स्वयं(मैं)' में सुख है।

2. सह-अस्तित्व में जीना, परस्पर पूरकता पूर्वक जीना

- मानव के साथ सह-अस्तित्व पूर्वक जीना- परिवार से विश्व परिवार तक अखण्ड समाज को सुनिश्चित करना
- प्रकृति समग्र के साथ सह-अस्तित्व पूर्वक जीना- परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को सुनिश्चित करना जिसका प्रतिफल पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतर सुख पूर्वक जीना है।

सह-अस्तित्व को समझने से हमारा आशय 'स्वयं(मैं)' में चिंतन, बोध और अनुभव की क्रियाओं की जागृति से है। चिंतन का आशय अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी का स्पष्ट होना है, अर्थात् अस्तित्व की प्रत्येक इकाई के साथ संबंध को पहचानने से है। बोध का आशय समग्र-प्रकृति में व्यवस्था की स्पष्टता से है और अनुभव का आशय अस्तित्व में सह-अस्तित्व की स्पष्टता से है। यह सब मिलकर 'ज्ञान' कहलाता है। चित्र. 11-6. में इन तीनों क्रियाओं को ब्लॉक B1 के रूप में चिह्नित किया गया है।

अनुभव, बोध और चिंतन की क्रियायों में सह-अस्तित्व, व्यवस्था और संबंध के बारे में स्पष्टता होने से ये क्रियायें हमारी कल्पनाशीलता का मार्गदर्शन करती हैं, जिससे इसकी क्रियाओं जैसे इच्छा, विचार और आशा का मार्गदर्शन हो पाता है (इन्हें चित्र. 11-6. में ब्लॉक B2 में दिखाया गया है)। इस प्रकार से ब्लॉक B2 की क्रियायें B1 की क्रियायों से निर्देशित होती है, जैसा कि अध्याय-6 में चर्चा की गयी थी। यदि ऐसा होता है तो हमारी सभी इच्छा, विचार और आशा; सह-अस्तित्व, व्यवस्था और संबंध के अनुरूप हो पाती हैं। इस प्रकार से निर्देशित कल्पनाशीलता, समाधान कहलाती है। इस प्रकार की कल्पनाशीलता सदैव प्रेम और करुणा के भाव के रूप में होती है, अर्थात् 'स्वयं(मैं)' व्यवस्था में होता है अतः निरंतर सुख की स्थिति होती है। यही तो हम सब चाहते हैं।

सही भाव और सही विचार अब दूसरे मानव के साथ हमारे व्यवहार, शेष-प्रकृति के साथ कार्य एवं अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी का आधार बनते हैं। फलतः

- मानव के साथ किये गये न्यायपूर्ण व्यवहार का परिणाम उभय-सुख है और परिवार से विश्व परिवार तक इस प्रकार के व्यवहार की अभिव्यक्ति से अखण्ड-समाज सुनिश्चित होता है।
- शेष-प्रकृति के साथ प्राकृतिक नियमों के आधार किया गये कार्य के परिणाम स्वरूप उभय-समृद्धि सुनिश्चित होती है।
- समग्र-प्रकृति रुपी बड़ी-व्यवस्था में भागीदारी के परिणाम स्वरूप मानवीय लक्ष्य की पूर्ति होती है। परिवार-व्यवस्था से विश्व परिवार-व्यवस्था तक इस प्रकार के कार्य और बड़ी-व्यवस्था में भागीदारी से सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था को सुनिश्चित करने की स्थिति बन पाती हैं।
- सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था की पीढ़ी दर पीढ़ी निरंतरता को मानव-परंपरा कहते हैं। यही तो हम सब चाहते हैं। चित्र. 11-6. देखिये।
- अस्तित्व में मानव की भागीदारी का यह विस्तृत विवरण है। यही निश्चित मानवीय आचरण का विवरण भी है। इसके आधार में सह-अस्तित्व का अनुभव है और दूसरी तरफ यही सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था की अभिव्यक्ति के रूप में फलित होता है। जो मानव में शिक्षा-संस्कार के द्वारा घटित होता है।

  इस प्रकार हम यह भी देख सकते हैं कि सह-अस्तित्व को समझने एवं सह-अस्तित्व में जीने का प्रावधान मानव के लिये अस्तित्व में पहले से है ही। 'स्वयं(मैं)' में निरंतर सुखपूर्वक जीने की आशा है एवं इसमें चिंतन, बोध और अनुभव की क्रियाओं में जागृत होने की क्षमता विद्यमान है। चिंतन, बोध और अनुभव की क्रियाओं में जागृत होकर और कल्पनाशीलता की क्रियाओं जैसे इच्छा, विचार और आशा को इनके अनुरूप करके मानव 'स्वयं(मैं)' में निरंतर व्यवस्था पूर्वक जीना सुनिश्चित कर सकता है जिसके परिणाम स्वरूप 'स्वयं(मैं)' में निरंतर सुख सुनिश्चित हो सकता है।

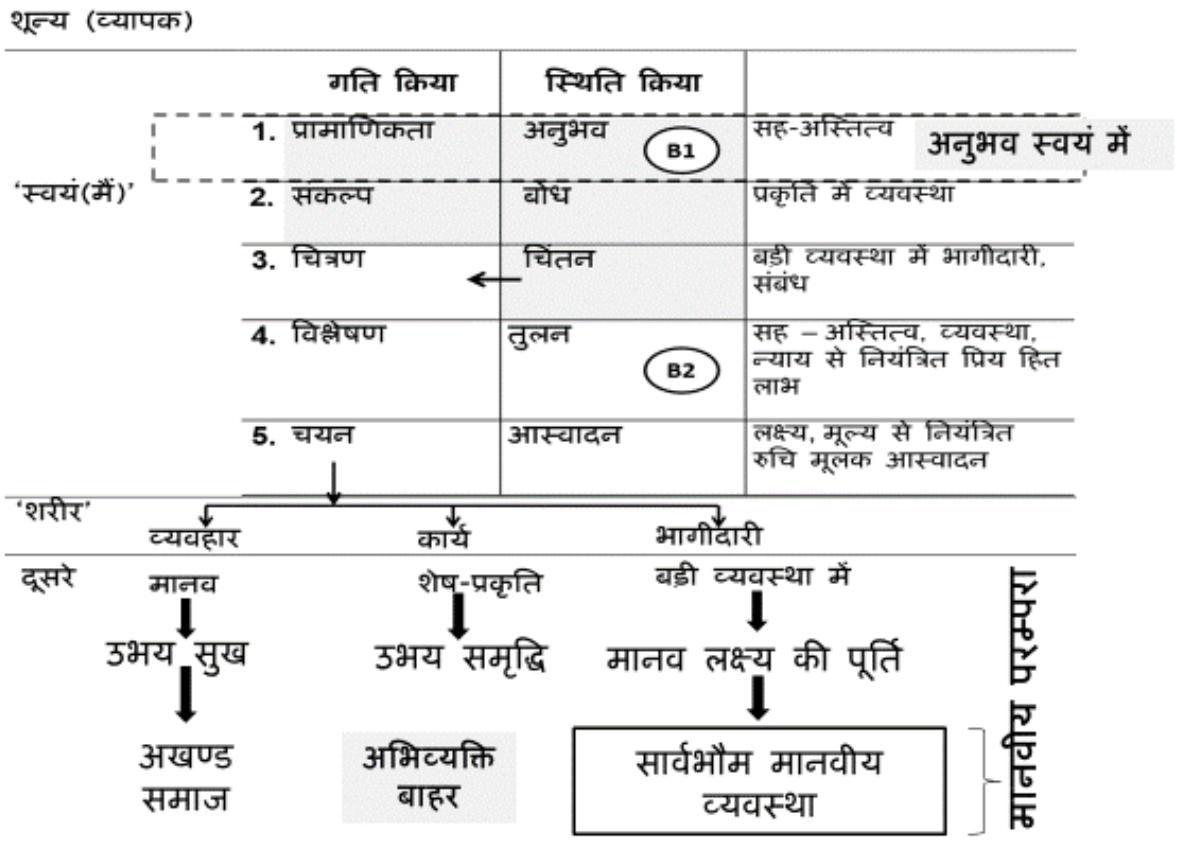

चित्र. 11-6. मानव की भागीदारी

समझ का सहज प्रतिफल

(Natural Outcome of the Understanding)

मानव के लिये पूर्णता बिन्दु (सार्वभौम मानवीय व्यवस्था) और अस्तित्व का पूर्णता बिन्दु सार्वभौम व्यवस्था है (चित्र. 11-7. देखें)। इस दृष्टि से सार्वभौम मानवीय व्यवस्था और सार्वभौम व्यवस्था आपस में समानार्थी हैं।

पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था और जीव-अवस्था पहले से ही व्यवस्था में हैं और एक दूसरे के साथ संबंधों में परस्पर-पूरकता के निर्वाह को सुनिश्चित कर रहे हैं साथ ही साथ मानव के लिये भी इस पूरकता का निर्वाह कर रहे हैं। सह-अस्तित्व का यह समस्त प्रकटीकरण मानव के प्रयास के बिना ही घटित हो रहा है। सह-अस्तित्व में अनुभव और उसके अनुसार जी कर मानव, शेष-प्रकृति एवं अन्य मानवों के साथ संबंधों में परस्पर-पूरकता को सुनिश्चित कर पाता है। इस प्रकार से सार्वभौम मानवीय व्यवस्था सुनिश्चित हो पायेगी और इसकी निरंतरता मानवीय परंपरा के रूप में सुनिश्चित हो पायेगी। यह मानवीय व्यवस्था के विकास का पूर्णता बिन्दु है। नि:संदेह, यह मानव के प्रयत्न से ही होगा जिसके लिये मानव हमेशा से ही प्रयासरत रहा है।

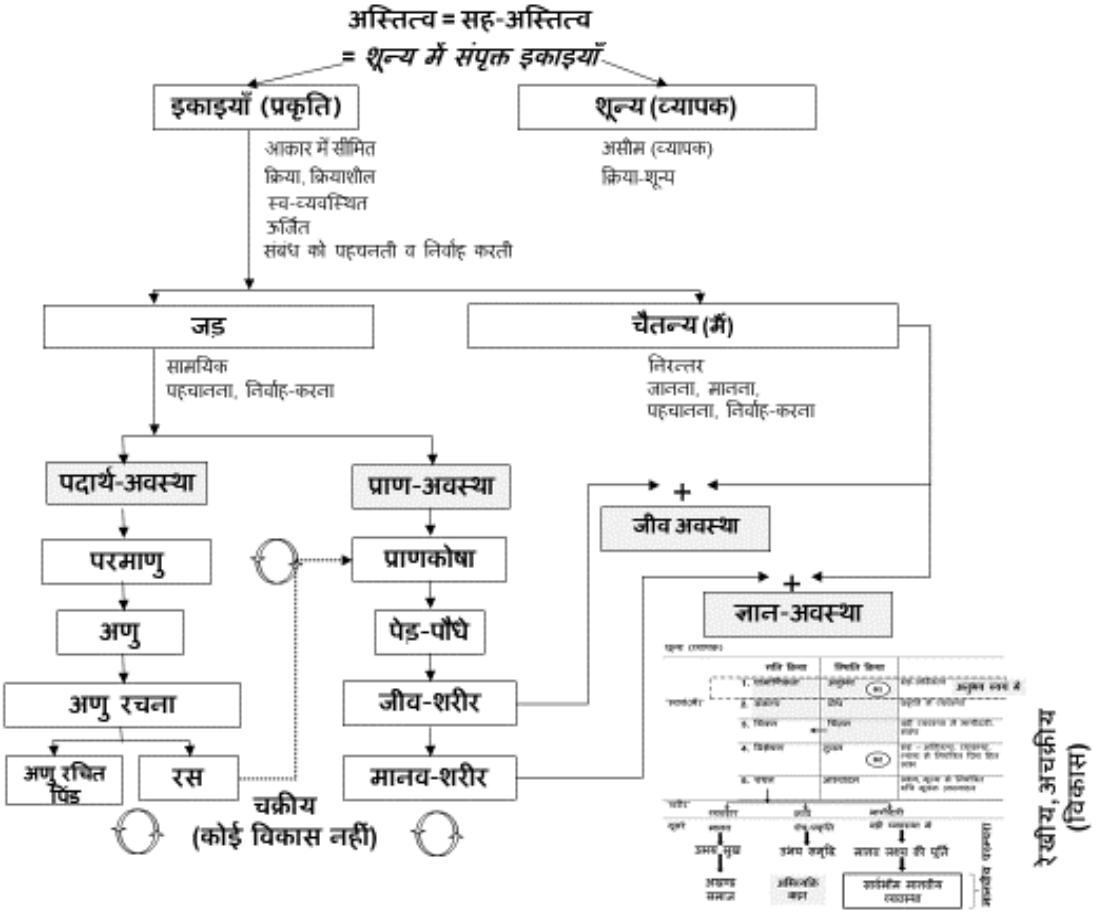

चित्र. 11-7. अस्तित्व में मानव की भागीदारी

यही अस्तित्व की समग्र अभिव्यक्ति भी है। यह अस्तित्व के सह-अस्तित्व पूर्वक होने के प्रकटीकरण का पूर्णता बिंदु है।

अस्तित्व में मेरी भागीदारी (मूल्य)

(My Participation (Value) in Existence)

(सह-अस्तित्व में अनुभव एवं सह-अस्तित्व में जीना)

जो कुछ भी विद्यमान है, वह अस्तित्व है। यह शून्य में संपृक्त इकाइयों के रूप में है। इकाइयों के समूह को प्रकृति कहते हैं, इस प्रकार हम अस्तित्व को शून्य में संपृक्त प्रकृति के रूप में देख सकते हैं। प्रकृति में मेरी भागीदारी (मूल्य) पहले से ही निश्चित और परिभाषित है, अतः अब शेष भाग केवल यह अनुभव करने का है कि अस्तित्व सह-अस्तित्व है या प्रकृति शून्य में संपृक्त है। शून्य के सह-अस्तित्व में प्रत्येक इकाई ऊर्जित है, स्व-व्यवस्थित है और परस्परता में संबंधों को पहचानती है, निर्वाह करती है। अस्तित्व में मेरी भागीदारी (मूल्य) सह-अस्तित्व में अनुभव (समझ) करना और सह-अस्तित्व में जीना है।

मुख्य बिंदु
(Salient Points)

- *अस्तित्व है - जो भी विद्यमान है, या जो भी है या जो भी होना है, व्यवस्था में है।*
- *अस्तित्व सह-अस्तित्व है, जो शून्य में संपृक्त इकाइयों के रूप में है।*
- *इकाइयाँ दो प्रकार की हैं - जड़ इकाइयाँ एवं चैतन्य इकाइयाँ। सभी इकाइयों का आकार सीमित है। ये क्रिया हैं, और अन्य इकाइयों के साथ परस्परता में भागीदारी करते हुये क्रियाशील हैं।*
- *शून्य असीमित है, सर्वव्यापी है और क्रियाशून्य है।*
- *इकाइयाँ शून्य में संपृक्त हैं, इस संपृक्तता के तीन आशय हैं:*

  1- इकाइयाँ शून्य में ऊर्जित हैं।

  2- इकाइयाँ शून्य में स्व-व्यवस्थित हैं- इकाइयाँ स्वयं में व्यवस्था को बना कर रख पाती हैं (स्वत्व)।

  3-इकाइयाँ शून्य में अन्य इकाइयों के साथ परस्परता में संबंध को पहचानती हैं और निर्वाह करती हैं

- *इकाइयाँ अन्य इकाइयों के साथ अपने निश्चित स्वभाव के अनुसार भागीदारी करती हैं जिससे वे अपने से बड़ी व्यवस्था और इस संपूर्ण व्यवस्था में परस्पर-पूरकता के अर्थ में भागीदारी कर पाती हैं।*
- *सह-अस्तित्व सर्वत्र व्याप्त है। प्रकृति की चारों अवस्थायें सह-अस्तित्व के प्रकटीकरण की सहज अभिव्यक्ति हैं, जो अंततोगत्वा सार्वभौमिक व्यवस्था के रूप में परिलक्षित होती हैं। इस सार्वभौमिक व्यवस्था को मानव के द्वारा पूर्ण किया जाना शेष है।*
- *विभिन्न अवस्थाओं में सह-अस्तित्व निम्न प्रकार से अभिव्यक्त होता है –*
    - *मूल रूप से सभी इकाइयों के बीच परस्पर-पूरकता, सह-अस्तित्व की ही एक अभिव्यक्ति है। प्रकृति के स्तर पर यह सह-अस्तित्व, परस्पर-पूरकता के रूप में अभिव्यक्त होता है।*
    - *समाज के स्तर पर, चार मानव लक्ष्य (सुख, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व) विभिन्न स्तरों पर सह-अस्तित्व की ही अभिव्यक्ति हैं।*
    - *परिवार के स्तर पर 'संबंध' मूल रूप से एक मानव के दूसरे मानव के साथ सह-अस्तित्व पूर्वक जीने की अभिव्यक्ति है। नौ भाव (विश्वास, सम्मान ..... प्रेम) सह-अस्तित्व की समझ और मानव-मानव संबंधों में सह-अस्तित्व की स्वीकार्यता की एक अभिव्यक्ति है।*
    - *मानव के स्तर पर यही सह-अस्तित्व, 'स्वयं(मैं)' और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में अभिव्यक्त होता है। 'स्वयं(मैं)' में 'शरीर' के प्रति सह-अस्तित्व की स्वीकार्यता ही संयम का भाव है। 'स्वयं(मैं)' के स्तर पर निरंतर सुख पूर्वक जीने की हमारी मूल चाहना को सह-अस्तित्व में अनुभव, प्रकृति में व्यवस्था की समझ, बड़ी व्यवस्था में भागीदारी के चिंतन, सह-अस्तित्व के भाव (प्रेम) और सह-अस्तित्व के विचार (करुणा) से सुनिश्चित किया जा सकता है।*
- *अस्तित्व में मानव की भूमिका है:*

1. सह-अस्तित्व को समझना

2. सह-अस्तित्व में जीना

इस प्रकार से सार्वभौमिक व्यवस्था के पूर्णता बिन्दु को प्राप्त किया जा सकता है।

अपनी समझ को जाँचे
(Test Your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न
(Questions for Self-evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. जो भी विद्यमान है, अस्तित्व है। अस्तित्व में जो दो प्रकार की वास्तविकतायें हैं वे क्या हैं? आप इन दोनों वास्तविकताओं में किस प्रकार विभेद करेंगे?
2. शून्य के बारे में अध्ययन करना क्यों आवश्यक है?
3. इकाइयाँ शून्य के सह-अस्तित्व में हैं। जहाँ भी इकाई है, वहाँ भी शून्य है। इन दोनों कथनों की व्याख्या कीजिये।
4. इकाई और शून्य में अंतर स्पष्ट कीजिये।
5. इकाइयाँ, शून्य में संपृक्त हैं इसका क्या अर्थ है, इसके तीन आशय क्या हैं?
6. शून्य में संपृक्त प्रकृति की इकाइयों को इनके विभिन्न अवस्थाओं के रूप में एक चार्ट के माध्यम से स्पष्ट करें?
7. किस प्रकार की इकाइयों में विकास होने की संभावना है-जड़ या चैतन्य? क्या हम इस प्रकार की इकाइयों के विकास पर वर्तमान में ध्यान दे रहे हैं? कृपया विस्तृत वर्णन करें।
8. मानव की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये जड़-अवस्था एवं प्राण-अवस्था की क्या भूमिका है स्पष्ट करें? अस्तित्व की समझ किस प्रकार से उपरोक्त की सही पहचान करने में सहायक है?
9. अस्तित्व में सह-अस्तित्व, मानव के जीने के विभिन्न स्तरों पर किस प्रकार से व्यक्त होता है? व्याख्या कीजिये।
10. अस्तित्व में मानव की भागीदारी का विवरण दीजिये। इस भागीदारी के निर्वाह का सहज प्रतिफल क्या हो सकता है?

अनुभाग-2: स्वान्वेषण के लिये अभ्यास
(Practice Exercises for Self Exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये, कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. 'स्वयं(मैं)' का निरीक्षण कीजिये। आप शून्य में संपृक्त हैं, ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं, आप में सह-अस्तित्व, व्यवस्था एवं संबंध के लिये सहज-स्वीकृति बनी हुई है। यही आपकी क्षमता का सम्पूर्ण क्षेत्र है; मानव होने के रूप में आप में इसकी पूरी संभावना है। जाँच कर देखिये कि क्या आपके लिये ऐसा है या नहीं।

   अब अपने 'शरीर' का निरीक्षण कीजिये। यह शून्य में संपृक्त है। इसमें करोड़ों कोशिकायें हैं। प्रत्येक कोशिका ऊर्जित है, स्व-व्यवस्थित है और अन्य इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती है और अपने से बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करती है जो कि विभिन्न अंग-प्रत्यंग के रूप में मिलकर आपके 'शरीर' को संगठित करती हैं - यह सब कुछ परस्पर-पूरकता विधि से हो रहा है। प्रत्येक क्षण कुछ कोशिकायें मरती हैं और कुछ नई बन जाती हैं और वे इसी प्रकार से भागीदारी करती रहती हैं, क्या ऐसा ही है? क्या अस्तित्व की प्रत्येक जड़ इकाई में ऐसा ही है? जाँचें।

   इसी प्रकार पदार्थ-अवस्था, प्राण-अवस्था एवं जीव-अवस्था सभी व्यवस्था में हैं। इन सब का निश्चित आचरण है। आपकी आवश्यकता पूर्ति के लिये ये प्रचुरता में पहले से ही उपलब्ध हैं।

   इन सब में, आपका 'स्वयं(मैं)' है, आपका 'शरीर' है और आपका 'स्वयं(मैं)' अपने 'शरीर' के साथ सह-अस्तित्व में है। अब, इसको ध्यान में रखते हुये जाँच करके देखिये कि अस्तित्व में आपके 'स्वयं(मैं)' के लिये क्या करना सही है। यह भी जाँच करके देखिये कि क्या ये अस्तित्व में प्रत्येक मानव के लिये सही है। यही सार्वभौमिक मानवीय मूल्य का अर्थ है। इसे स्वयं में देखें और जाँच करें।

2. जो भी अस्तित्व में है, आप उसके साथ सह-अस्तित्व में हैं। सह-अस्तित्व के प्रस्ताव और अस्तित्व में मानव की भागीदारी (जिसे स्वभाव के रूप में पहचाना गया है) में आपको क्या अंतर लगता है? क्या आप यह देख सकते हैं कि जब आप अपने स्वभाव के अनुसार व्यवस्था में जीते हैं तो आप सुखी महसूस करते हैं? इस स्पष्टता के साथ क्या आपके जीवन में आपके लक्ष्य और कार्यक्रमों में कुछ बदलाव होंगे? संक्षेप में व्याख्या करें।

भागीदारी, 'स्वयं(मैं)' के स्तर पर	निरंतरता में सुख का भाव
भागीदारी, 'शरीर' के साथ	संयम का भाव
भागीदारी, परिवार में, मानव-मानव संबंध में	संबंध में भाव (विश्वास, सम्मान, स्नेह, ममता, वात्सल्य श्रद्धा, गौरव, कृतज्ञता और प्रेम)
भागीदारी, समग्र-प्रकृति में, समाज में	धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, एवं करुणा का भाव
भागीदारी, शेष-प्रकृति के साथ	सुविधा के सदुपयोग की जिम्मेदारी का भाव

3. इस सबको ध्यान में रखते हुये अब आप अपने बायोडाटा के प्रत्येक भाग का नवीनीकरण करें। अंततः, आप अपने इस जीवन में क्या करना चाहते हैं इसके बारे में अपनी दृष्टि को एक कथन (vision statement) के रूप में सम्मिलित करें। (हमें विश्वास है कि आप अपनी इस दृष्टि का अनुसरण करेंगे।)
4. उन प्रश्नों, शंकाओं एवं संकेतों की सूची बनाइये जिनके बारे में आपको लगता है कि वे अध्याय-10 तक की चर्चा के दौरान नहीं लिये जा सके हैं। अब उन्हें इस अध्ययन के प्रकाश में अपनी विकसित समझ के आधार पर समाधानित करने का प्रयत्न करें। आप इस अध्याय में दिये हुये प्रस्तावों के प्रकाश में पिछले अध्यायों को भी एक बार पुनः पढ़ने का प्रयास कर सकते हैं।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास
(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का 'स्वयं(मैं)' में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

अस्तित्व (जो कुछ भी विद्यमान है) सह-अस्तित्व पूर्वक है = शून्य में संपृक्त इकाइयाँ। प्रत्येक इकाई ऊर्जित है, स्व-व्यवस्थित है और निश्चित आचरण (इनके स्वभाव के अनुसार) को प्रदर्शित करती है, अस्तित्व की पूर्णता में केवल मानव का पूर्ण (क्रियापूर्ण और आचारणपूर्ण) होना ही शेष है।

अनुभाग-4: आपके प्रश्न
(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्वान्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-12

सार्वभौम मानवीय मूल्य और नैतिक मानवीय आचरण का आधार

The Basis for Universal Human Values and Ethical Human Conduct

पुनरावृत्ति

(Recap)

अब तक हमने सही समझ की विषय-वस्तु के रूप में हमने मानव से लेकर सम्पूर्ण-अस्तित्व तक के विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था का अध्ययन किया। जिसमें 'शरीर' और 'स्वयं(मैं)' की विशेषताओं, क्रियाओं एवं आवश्यकताओं का अवलोकन करने के साथ-साथ इनके बीच व्यवस्था के प्रमुख पहलुओं को भी सम्मिलित किया गया है। इसके बाद हमने, मानव-मानव संबंधों और इन संबंधों की स्पष्टता में सहायक मूल्यों अर्थात् भावों को भी समझा; जो कि परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था का आधार हैं। इसके बाद हमने प्रकृति में अंतर्निहित संबंधों, चक्रियता, स्व-नियंत्रण और परस्पर-पूरकता का भी अध्ययन किया। अंततः इस अध्ययन से हमने यह निष्कर्ष निकाला कि 'अस्तित्व सह-अस्तित्व है'। इकाइयाँ (चैतन्य और जड़), शून्य में संपृक्त हैं, अर्थात् सह अस्तित्व में हैं; इसी सह-अस्तित्व को इकाइयाँ एक दूसरे के साथ परस्पर-पूरकता के रूप में अभिव्यक्त करती हैं। शून्य, क्रिया-शून्य है, पारदर्शी है और सर्वव्यापी है। शून्य के सह-अस्तित्व में इकाइयाँ स्व-व्यवस्थित हैं, ऊर्जित हैं और दूसरी इकाइयों के साथ संबंध को पहचानती हैं एवं निर्वाह-करती हैं और सार्वभौम व्यवस्था को सुनिश्चित करने की तरफ अग्रसर हैं।

'स्वयं(मैं)' और 'अस्तित्व' के बारे में सही समझ सुनिश्चित करने के लिये उपरोक्त समस्त जाँच-परख स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के माध्यम से किया गया है। जब तक स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से 'स्वयं(मैं)' में अनुभव और बोध नहीं हो जाता, तब तक हम इस तरह की समझ के महत्वपूर्ण प्रभावों को अपने जीने में और अपने व्यवसाय में देखने का प्रयास शुरू कर सकते हैं। sइस खंड के पाँचों अध्यायों की विषय-वस्तु यही है।

यहाँ हम यह भी देख सकते हैं कि अस्तित्व में सत्य के बारे में सही समझ और इसके अनुरूप जीने की योग्यता, व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर मानव के निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने के लिये मार्ग प्रशस्त करती है। इस प्रकार की सही समझ मानव को स्वयं के साथ, दूसरे मानव के साथ और शेष-प्रकृति के साथ व्यवस्था पूर्वक जीने के योग्य बनाती है। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के माध्यम से सत्य का किया गया यह स्पष्टीकरण समस्त मानव के स्व-विकास अर्थात् 'स्वयं(मैं)' के विकास की सही दिशा है। यही मानव जीवन का लक्ष्य भी है। हमें 'स्वयं(मैं)' स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से इस बात के लिये आश्वस्त होने की आवश्यकता है कि यह 'स्वयं(मैं)' में और बाहरी दुनिया में शांति और व्यवस्था स्थापित करने का एक मत्वपूर्ण तरीका है।

अब हम यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि कैसे सही-समझ, सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों एवं नैतिक मानवीय आचरण को आधार प्रदान करती है और इसे सहजता से कैसे आत्मसात किया जा सकता है। इसके अलावा, सही समझ के प्रकाश में यह भी स्पष्ट हो पाता है कि नैतिक योग्यता विकसित करना व्यावसायिक नैतिकता को सुनिश्चित करने का एक शक्तिशाली तरीका है। यह सभी प्रकार की प्रौद्योगिकियों, उत्पादन प्रणालियों और प्रबंधन मॉडलों के विकास को भी सुविधाजनक बनाता है, ताकि

समग्रता में जीने का मार्ग प्रशस्त हो सके। आइये अब हम सही समझ के परिणामों के महत्व को समझते हैं और यह भी देखते हैं कि किस तरह से हम समग्रता में जीने का प्रयास कर सकते हैं।

मानव के जीने के विभिन्न आयामों में मूल्य

Values in Different Dimensions of Human Living

व्यवस्था की समझ के आधार पर हम बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करते हैं। जीने के विभिन्न स्तरों पर यह भागीदारी ही हमारा मूल्य है। अनुभव और बोध के आधार पर निश्चित मानवीय आचरण से जीने के लिये 'स्वयं(मैं)' की क्रियाओं में अपनी भागीदारी को देखने के आधार पर मूल्यों की पहचान शुरू होती है। मानव की भागीदारी, व्यवहार और कार्य के रूप में भी देखी जा सकती है।

हमने व्यवहार से सम्बंधित मूल्यों का अध्ययन मानव-मानव संबंध में नौ मूल्यों (विश्वास, सम्मान, स्नेह, ममता, वात्सल्य, श्रद्धा, गौरव, कृतज्ञता और प्रेम) के रूप में किया है। इनके बारे में हम अध्याय-8 में विस्तार से चर्चा कर चुके हैं।

इसी तरह जड़ वस्तुओं के साथ कार्य करते हुये हमें इनका सदुपयोग, संवर्धन और संरक्षण को सुनिश्चित करना होगा। जड़ वस्तुओं की उपयोगिता-मूल्य और कला-मूल्य, इनको सदुपयोग के लिये और अधिक अनुकूल बनाते हैं। यह जड़ वस्तुओं के संबंध में हमारे मूल्य हैं। इनके परिणाम स्वरूप मानव में समृद्धि और शेष-प्रकृति की सुरक्षा (संरक्षण और संवर्धन) सुनिश्चित होती है।

सही समझ का सहज प्रतिफल सार्वभौम मूल्य

Universal Values Naturally Emerging from the Right Understanding

आइये समझते हैं कि कैसे सार्वभौम मूल्य, सही समझ के सहज परिणाम हैं। खंड-II की चर्चा के आधार पर हम आसानी से यह अनुमान लगा सकते हैं कि अस्तित्व में एक अंतर्निहित व्यवस्था है। मानव को इस व्यवस्था को समझने की आवश्यकता है, न कि व्यवस्था बनाने की। सार्वभौम रूप में मानव की चाहना निरंतर सुख और समृद्धि है; जो कि वास्तव में अस्तित्व की इस अंतर्निहित व्यवस्था को समझने और इसके साथ लयबद्ध होकर जीने से पूरी होती है। सार्वभौम मानवीय मूल्य, मानव के जीने के विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था के अर्थ में भागीदारी को समझने और जीने के मापदंड के रूप में हैं; ये सार्वभौम लक्ष्य के रूप में इस अंतर्निहित व्यवस्था को समझने के महत्व को भी स्थापित करते हैं।

इस तरह सार्वभौम मानवीय मूल्य, अस्तित्व की व्यवस्था के विभिन्न आयामों में मानव की भागीदारी की अभिव्यक्ति हैं। ये मूल्य मानव को सहज-स्वीकार्य होते हैं और मानव में सुख के अनुकूल होते हैं। हमारी अज्ञानता, हमारी गलत मान्यतायें, हमारे स्वयं के बारे में भ्रम, हमारी संवेदनायें और हमारे आस-पास की चीजों के संबंध में व्याप्त भ्रम हमें सार्वभौम मानवीय मूल्यों को समझने में कठिनाई पैदा करते हैं। निरंतर स्व-सत्यापन और स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया हमें इस सत्य को समझने के योग्य बनाती है। हम मानव में सार्वभौमिकता और उसकी प्रकृति सहज धारणा को समझने में सक्षम हैं। हम अपने अधिकार पर यह देख सकते हैं कि कैसे सह-अस्तित्व का अनुभव हमें सभी स्तरों पर व्यवस्था में जीने के योग्य बनाता है। जैसे ही हम अपनी सहज स्वीकृति को देख पाते हैं और इसके आधार पर मुल्यांकन पूर्वक अपनी मान्यताओं से छुटकारा पाते हैं, वैसे ही हमारे लिये मानव मूल्यों को समझना सहज हो जाता है। ये मानव मूल्य, प्रत्येक मानव के लिये, हर समय एक जैसे रहते हैं। इसकी चाहना प्रत्येक

मानव में है और मानव रूप में हमारे पास इसको अपने जीने में साकार करने की क्षमता भी है एवं साधन भी हैं। इस तरह की समझ पूरी मानव जाति के लिये आश्वासन, राहत और आत्मविश्वास का एक बड़ा स्रोत है।

सार्वभौम मानवीय मूल्य अस्तित्व की मूलभूत वास्तविकता है, जो सदैव से है ही। हमको ही इन्हें 'स्वयं(मैं)' में स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से देखना है; एवं सुखी होने के लिये इनके अनुसार जीने की योग्यता भी विकसित करना है। इन मूल्यों को बलपूर्वक, डर से, लालच से या मान्यताओं के आधार पर लागू करने की आवश्यकता नहीं है। अर्थात्:

- मूल्यों को भय या दंड के माध्यम से लागू करने की आवश्यकता नहीं है।
- मूल्यों को लालच या प्रलोभन के माध्यम से लागू करने की आवश्यकता नहीं है।

ये मूल्य हम में सदैव बने रहते हैं, क्योंकि यह हमें सहज-स्वीकार्य हैं। सही समझ की तरफ अग्रसर होने वाली स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया हमारे उद्देश्य को प्राप्त करने का एक सशक्त तरीका है।

समाज में, मूल्य आधारित जीने को सुनिश्चित करने के लिये यह स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया एक मजबूत आधार प्रदान करती है। भय, लालच या प्रलोभन उत्पन्न करने वाली कोई भी प्रक्रिया समाज या संस्थान में व्यवस्था को बढ़ावा देने में असफल रहती है।

नैतिक मानवीय आचरण की निश्चितता

Definitiveness of Ethical Human Conduct

सामान्यतः नैतिक मानवीय आचरण के बारे में बहुत तरह के भ्रम हैं जैसे कि वास्तव में ये नैतिक मानवीय मूल्य क्या हैं; क्या ये सार्वभौमिक है; क्या ये निश्चित हैं या ये परिवर्तनीय हैं? सही समझ हमें इनकी निश्चितता के बारे में स्पष्टता प्रदान करती है।

आइये स्वयं से निम्नलिखित प्रश्न पूछते हैं:

- मानव की सहज धारणा क्या है?
- वास्तव में मानवीयता क्या है?

जैसे कि हम नीम के पेड़ या आम के पेड़ की पहचान इनके अपने सुपरिभाषित विशिष्ट गुणों के आधार पर करते हैं; जो कि सदैव इनमें एक से बने रहते हैं; जैसे हम पानी, हवा, लोहा या गाय की पहचान इनके विशेष गुणों अर्थात् इनकी प्रकृति-सहज धारणाओं से करते हैं; वैसे ही हम मानव के प्रकृति-सहज धारणा को भी पहचानने का प्रयास कर सकते हैं। जिस प्रकार से आम के पेड़ में 'आम्रत्व की निश्चितता है; लोहे में 'लोहत्व' की निश्चितता है; गाय में 'गायत्व' की निश्चितता है; उसी प्रकार से हमें मानव में 'मानवत्व' की निश्चितता को भी समझना होगा।

स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से प्राप्त सही समझ हमें मानवीय आचरण में निश्चितता की पहचान करने में सहायक है, जिसे नैतिक मानवीय आचरण भी कहते हैं। यह सभी व्यक्तियों के लिये एक जैसा है। अतः हम सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों पर आधारित नैतिक मानवीय आचरण में सार्वभौमिकता को भी समझ सकते हैं; जिससे सारे वाद-विवाद और इससे जुड़े हुये भ्रम, जैसे कि जो किसी एक के लिये नैतिक है, वो क्या सभी के लिये नैतिक होगा इत्यादि धीरे-धीरे समाप्त होते जाते हैं। आइये अब निश्चित मानवीय आचरण यानि कि नैतिक मानवीय आचरण की प्रमुख विशेषताओं को समझते हैं।

इस पुस्तक में हमने पहले भी अध्ययन किया है कि, हममें से प्रत्येक व्यक्ति निश्चित मानवीय आचरण से जीना चाहता है, किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में हम इसे सुनिश्चित नहीं कर पा रहे हैं। ऐसा इसलिये हो रहा है, क्योंकि हम अपनी मान्यताओं के आधार पर जी रहे हैं जो कि समग्र-अस्तित्व की सही समझ के

अनुरूप नहीं है। ऐसी स्थिति में न तो हम संतुष्ट होते हैं और न ही दूसरे हो पाते हैं। आइये देखते हैं कि सही मानवीय आचरण क्या है। सामान्यतः मानव सही मानवीय आचरण क्या है, इसे समझने के लिये संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है और इस प्रक्रिया में वह अपनी मान्यताओं के आधार पर अलग-अलग तरह से व्यक्त होता हुआ भी दिखाई देता है। लोगों को हम इस बारे में अंतहीन बहस करते हुये देख सकते हैं कि क्या नैतिक है और क्या नहीं। लेकिन जब तक हममें सही समझ नहीं होगी, तब तक हम नैतिक मानवीय आचरण की निश्चितता को पहचानने में सफल नहीं हो पायेंगे। अध्याय-6, 'स्वयं में व्यवस्था' पर चर्चा करते समय हमने निश्चित मानवीय आचरण अर्थात् नैतिक मानवीय आचरण के अभिप्राय को समझने का प्रयास किया था। जिसे संक्षेप में नीचे बताया गया है।

हम क्या करते हैं, हम क्या सोचते हैं अर्थात् हमारी कल्पनाशीलता में क्या चलता है। इस सोचने और करने का आधार समझ है या मान्यता है ये सब कुछ हमारे आचरण का ही भाग है। चित्र. 12-1. में दिखाया गया है कि ब्लॉक B1 अर्थात् सही-समझ, हमारे सोचने और करने का आधार है। ब्लॉक B1 हमारी कल्पनाशीलता को प्रेरित करता है और मार्गदर्शित भी करता है और यदि आवश्यक हो तो यह 'शरीर' के माध्यम से व्यवहार और कार्य में व्यक्त भी होता है।

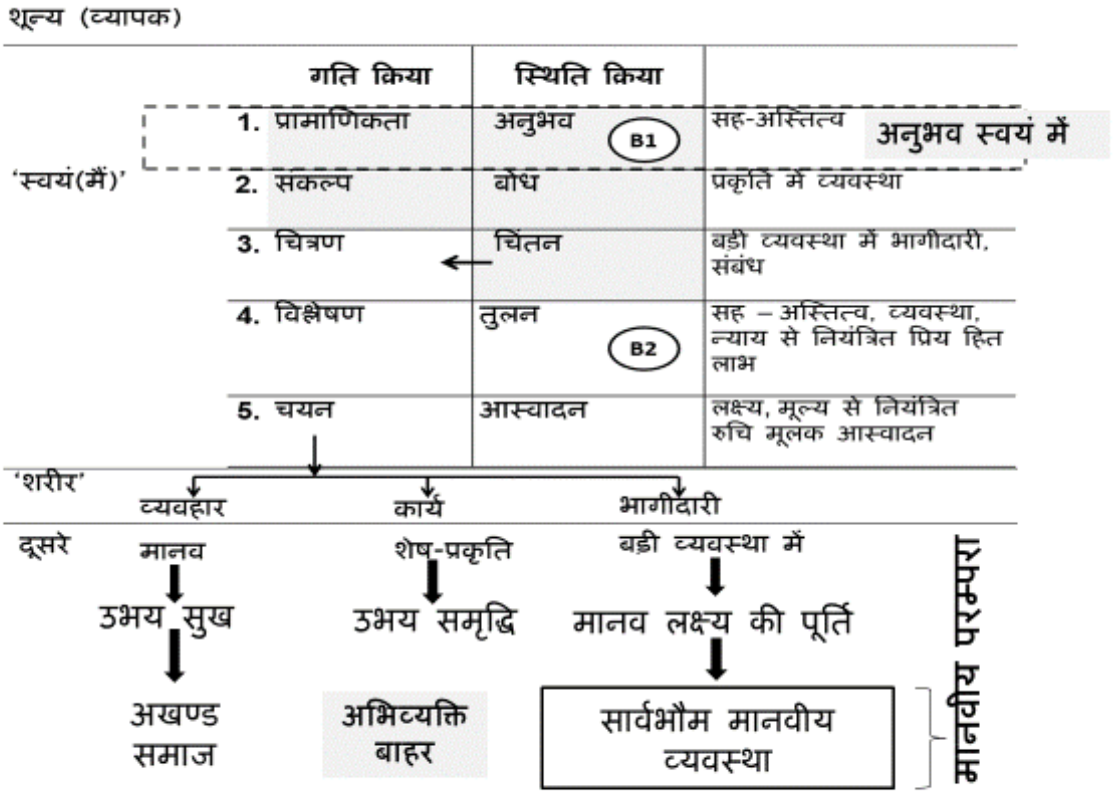

चित्र. 12-1. निश्चित मानवीय आचरण

'निश्चित मानवीय आचरण', 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था और इस व्यवस्था के आधार पर बाह्य जगत रुपी बड़ी व्यवस्था में भागीदारी के अर्थ में 'स्वयं(मैं)' की अभिव्यक्ति का योगफल है। 'स्वयं(मैं)' में व्यवस्था, सहज रूप से हमारे जीने के सभी स्तरों पर निम्नलिखित रुप से अभिव्यक्त और प्रसारित होता है:

भागीदारी, 'स्वयं(मैं)' के स्तर पर	सुख का भाव
भागीदारी, 'शरीर' के साथ	सयंम का भाव
भागीदारी, परिवार में, मानव-मानव संबंध में	उभय सुख, न्याय, अभय
भागीदारी, शेष-प्रकृति के साथ	उभय समृद्धि- मानव में समृद्धि और शेष-प्रकृति की सुरक्षा का भाव
भागीदारी, समग्र प्रकृति / अस्तित्व में	सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता)

नैतिक मानवीय आचरण को आगे मूल्य, नीति और चरित्र के संदर्भ में समझा जा सकता है [ए नागराज 1999]

1. **मानव मूल्य- अस्तित्व में मानव की भागीदारी को समझना**

जब हममें सही समझ हो जाती है अर्थात् संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व को समझ पाते हैं तब हम अपने जीने के सभी स्तरों जैसे मानव, परिवार, समाज, और प्रकृति/ अस्तित्व में अपनी भागीदारी अर्थात् अपने मूल्यों को स्वाभाविक रूप से देख पाते हैं। ये भागीदारी अर्थात् मानवीय मूल्य निश्चित हैं और यही हमारे नैतिक मानवीय आचरण का आधार भी हैं।

2. नीति- मानव मूल्यों को कैसे अभिव्यक्त करना है अर्थात् कैसे जीना है

निश्चित मानवीय मूल्यों की पहचान हो जाने पर, ये हमारी कल्पनाशीलता (इच्छा, विचार और आशा) के लिये मार्गदर्शक बन पाते हैं। इन निश्चित मानवीय मूल्यों की पहचान हो जाने के बाद, हमारी कल्पनशीलता, सदैव इसी अर्थ में चलती है कि इस भागीदारी को कैसे पूरा किया जा सकता है- इन मूल्यों को कैसे जी सकते हैं। इन मूल्यों के साथ कैसे जी पाये अर्थात् इन मूल्यों को कैसे व्यक्त करें इसका सम्पूर्ण विश्लेषण ही नीति है। ये नीतियाँ स्वाभाविक रूप से मानव के सर्व-शुभ के अनुकूल होती हैं यानी कि 'स्वयं(मैं)', 'शरीर', और भौतिक संसाधनों के संवर्धन, संरक्षण और सदुपयोग के अनुकूल होती हैं एवं वे अस्तित्व की हर इकाई के सर्व-शुभ के अनुकूल भी होती हैं।

3. चरित्र – मानवीय मूल्यों का व्यवहार, कार्य, और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में अभिव्यक्ति

'मानवीय-चरित्र', व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी के अर्थ में मानव की बाहरी दुनिया के साथ अभिव्यक्ति या सहभागिता है। निश्चित मानवीय मूल्यों से निर्देशित कल्पनाशीलता अर्थात् इन मूल्यों के साथ कैसे जीना है इसका एक समग्र विश्लेषण एवं इन मूल्यों का व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में अभिव्यक्ति ही मानवीय चरित्र है। इसे निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं:

- **स्वनारी / स्वपुरुष** -वैवाहिक संबंधों अर्थात् पति-पत्नी संबंधों में निष्ठा एवं पवित्रता
- **स्वधन-** श्रम के माध्यम से, चक्रीय और परस्पर-संवर्धन उत्पादन विधियों (जैसे कृषि, वस्तुयों का निर्माण, भवन निर्माण, मशीन निर्माण इत्यादि) का उपयोग करके, धन का अर्जन और सदुपयोग।

- **दयापूर्ण व्यवहार-कार्य-** व्यवहार में न्याय और कार्य में शेष-प्रकृति का संरक्षण सुनिश्चित करना, जिससे समग्र मानवीय लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके और साथ-साथ अतीत में हुई कमियों की क्षतिपूर्ति भी हो सके।

इस आधार पर हम नैतिकता को निश्चितता के साथ पहचान पाते हैं। किसी मानव का चरित्र नैतिक है या अनैतिक इसे इस निश्चित मानक के आधार पर तय कर सकते हैं और अपने जीने को, व्यवसाय को, कार्य को निश्चित ढंग से कर सकते है। अतः हम यह देख सकते हैं कि मानव के जीने में नैतिकता को मूल्य, नीति और चरित्र के रूप में समझा जा सकता है, और ऐसा जीना भी संभव हो सकता है, यदि हम स्व-अन्वेषण के माध्यम से 'स्वयं(मैं)' में सही समझ को सुनिश्चित कर सके।

साथ ही मानव, नैतिक मानवीय आचरण और व्यावसायिक कौशल के साथ एक अच्छा व्यवसायी (जैसे अच्छा इंजीनियर, प्रबंधक, अध्यापक इत्यादि) बन सकता है।

हम मानव में नैतिक मानवीय आचरण को निम्नलिखित आधार पर भी समझ सकते हैं:

- "नैतिक मानवीय आचरण" का अर्थ है कि ये मुझे सहज-स्वीकार्य है और इससे मेरे में अंतर्विरोध नहीं होता है।
- "नैतिक मानवीय आचरण" का अर्थ है कि ये वास्तविकता के अर्थात् सही समझ के अनुरूप है और सभी स्तरों में अंतर्निहित व्यवस्था के अनुरूप है।
- "नैतिक मानवीय आचरण" का अर्थ है कि इससे दूसरे व्यक्तियों के साथ परस्पर-पूरकता और शेष-प्रकृति के साथ उभय-समृद्धि सुनिश्चित होती है।

इस प्रकार से, "नैतिक मानवीय आचरण" 'स्वयं(मैं)' में तृप्ति को सुनिश्चित करने वाला एवं दूसरे मानव के और पर्यावरण के अनुकूल है।

मानवीय चेतना का विकास

Development of Human Consciousness

जैसे कि पहले चर्चा की गयी है कि सही समझ की यात्रा, वास्तव में 'पशु-चेतना' से 'मानव-चेतना' में संक्रमण है। इसके बारे में हम अध्याय-2 में चर्चा कर चुके हैं। स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक समझने के बाद अब हम देख सकते हैं कि यह किस प्रकार से हमारी चेतना के विकास को आरम्भ करता है। तदनुसार,

यह किसी व्यक्ति के लक्ष्य, प्राथमिकताओं, चयन के मापदंड में परिवर्तन को भी प्रभावित करता है। पशु-चेतना में जीते हुये हम सुविधा-संग्रह को, संवेदना के आधार पर होने वाले सुख को और धन-संग्रह को अधिक महत्व देते हैं। विकास के हमारे मापदंड मुख्य रूप से 'शरीर' केंद्रित होते हैं, जिसके कारण हम 'शरीर' के आराम और संवेदना से सुख पाने पर अधिक ध्यान देते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है कि यह प्रवृत्ति मानव के लिये दुखों का जाल सिद्ध हुई है जो 'स्वयं(मैं)' के साथ-साथ बाह्य जगत के लिये भी अनेक समस्यायें उत्पन्न करती है, जिसे हम वर्तमान में देख ही रहे हैं। जब हम मानव-चेतना में संक्रमित होते हैं, तो हम अपने विचार और अन्य क्रियाओं को सही समझ के आधार पर चला पाते हैं, तदनुसार भौतिक-सुविधाओं के संग्रह के बजाय संबंधों को उच्च प्राथमिकता दे पाते हैं, अपने लिये भौतिक-सुविधा की आवश्यकता की पहचान भी कर पाते हैं और इस आवश्यकता को चक्रीय और परस्पर-संवर्धन प्रक्रिया से पूरा कर पाते हैं, साथ ही साथ शेष-प्रकृति को भी समृद्ध कर पाते हैं।

मूल्य आधारित जीने का आशय

(Implications of Value-based Living)

मूल्य आधारित जीने के आशय को निम्नलिखित रूप में समझ सकते हैं:

1. **व्यक्तिगत स्तर पर:** सुख और समृद्धि की तरफ संक्रमण, व्यक्तिगत आधार पर ही घटित होता है। व्यक्ति धीरे-धीरे 'स्वयं(मैं)' के अंदर होने वाले अंतर्विरोधों एवं संघर्षों से बाहर निकलने लगता है और एक ऐसी स्थिति तक पहुँच पाता है, जहाँ 'स्वयं(मैं)' में स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से अपने प्रश्नों के उत्तर खोज पाता है। मूल्य आधारित जीना व्यक्ति को तनाव, कुंठा, अवसाद, दूसरों पर हावी होने के प्रयास, मनोदैहिक विकार एवं अन्य ऐसी कोई भी परिस्थिति जिसमें कोई व्यक्ति नहीं रहना चाहता है उससे छुटकारा दिलाने में सहायक होता है और निश्चित मानवीय आचरण से जीने में भी सहायक होता है। 'स्वयं(मैं)' में संयम का भाव, होने वाली बीमारियों को एवं 'स्वयं(मैं)' में असुरक्षा के होने वाले भाव को भी कम करता है। यह व्यक्ति के और अधिक तृप्ति-पूर्वक जीने में सहायक होता है।
2. **परिवार के स्तर पर**: परिवार में मूल्य आधारित जीने से एक दूसरे के साथ परस्पर-पूरक होकर जीना संभव हो पाता है और इसके आधार पर परिवार में शांति और व्यवस्था संभव हो पाती है। व्यक्ति समृद्ध महसूस कर पाता है जिससे परिवार में दूसरों का पोषण करने का भाव भी बढ़ता है। यह परिवार में एकजुटता के भाव को बढ़ाता है और परिवारों में झगड़ों को भी कम करता है। जब मानव, मानव-चेतना में जीना प्रारंभ करता है, तो संयुक्त परिवारों की प्रचलित समस्याओं का भी पतन हो पाता है। इस प्रकार का सामंजस्यपूर्ण जीना, परिवारों में विशेष आयोजनों पर जैसे विवाह, उत्सवों एवं अन्य सामाजिक समारोहों इत्यादि में उपभोक्तावादी व्यवहार को भी कम करता है।
3. **समाज के स्तर पर**: जब संबंध की वरीयता, भौतिक-सुविधा की अपेक्षा उच्च होगी तो समाज में अभय एवं परस्पर विश्वास विकसित होगा। 'शरीर' (लिंग, आयु, बल एवं जाति के रूप में) सुविधा (धन एवं पद के रूप में) एवं मान्यता (वाद संप्रदाय इत्यादि के रूप में) के आधार पर होने वाला भेदभाव भी कम होगा। इसके साथ-साथ नक्सलवाद, आतंकवाद, सांप्रदायिकता और अंतर्राष्ट्रीय संघर्षों इत्यादि जैसी विकृतियों के रूप में प्रकट होने वाले समुदायों और राष्ट्रों के बीच होने वाले संघर्षों को भी बिना किसी दबाव या युद्ध के काफी हद तक सुलझाया जा सकेगा। समाज में अखंडता का भाव सुनिश्चित हो पायेगा। सभी स्तरों की परियोजनाओं एवं नीतियों में मानव लक्ष्य की पूर्ति प्रमुखता पर रह पायेगी और विश्वासपूर्ण संबंधों पर आधारित मानवीय व्यवस्था क्रमशः शनैः शनैः उभर पायेगी।
4. **प्रकृति के स्तर पर**: प्रकृति के स्तर पर मानव, अन्य इकाइयों के साथ संबंध में अपनी परस्पर-पूरकता रुपी भागीदारी को सुनिश्चित कर पाने की स्थिति में होगा। जब मानव अपनी सुविधा की आवश्यकता को ठीक-ठीक पहचान पाने में और पर्यावरण के अनुकूल विधि से इसे पूरा करने में सक्षम होगा तब प्रदूषण और संसाधनों की कमी वाली समस्याओं को भी हल किया जा सकेगा। कृषि एवं उत्पादन के बेहतर तरीकों से ग्रीन हाउस गैसों, ओज़ोन परत के क्षय, वातावरण में असंतुलन इत्यादि की समस्याओं में कमी हो पायेगी। इसी प्रकार पशु एवं पक्षियों की जनसंख्या को विलुप्त होने से बचाया जा सकेगा और जंगलों को पुनः स्थापित भी किया जा सकेगा।

.इस समय, उपरोक्त संभावनाओं पर मनन करना और 'स्वयं(मैं)' में इस बात की जाँच करना सार्थक होगा कि क्या यह वास्तव में सही समझ और मूल्य आधारित जीने के परिणाम हो सकते हैं?

मुख्य बिंदु

(Salient Points)

इस अध्याय में सही समझ के निम्नलिखित आशयों को उजागर करने का प्रयास किया गया है-

- *मूल्य, सही समझ का सहज परिणाम हैं। इन्हें भय या लालच से थोपने की आवश्यकता*
- *नैतिक मानवीय आचरण की निश्चितता को मूल्य, नीति और चरित्र की निश्चितता के संदर्भ में समझा जा सकता है।*
- *सही समझ मानव को पशु-चेतना से मानव-चेतना में संक्रमण करने में सहायक है।*
- *सही समझ मानव के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं प्रकृति/अस्तित्व के स्तर पर जीने में बेहतरी के सकारात्मक संकेत प्रदान करने में सहायता करेगा।*

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग 1: स्वमूल्यांकन- के लिये प्रश्न

(Questions for Self Evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. समझाइये कि किस प्रकार से सही-समझ, मानवीय मूल्यों को सहज रूप में आत्मसात करने का आधार बनती है।
2. 'मानवीय आचरण में निश्चितता ठीक उसी तरह से हो सकती है, जैसे आम के पेड़ में या एक घोड़े के आचरण में निश्चित लक्षण होते हैं लेकिन यह निश्चितता केवल सही समझ से ही स्पष्ट हो पाती है'। इस कथन पर अर्थपूर्ण टिप्पणी लिखें।
3. विभिन्न संस्कृतियों एवं धार्मिक परंपराओं में नैतिकता के संदर्भ में पायी जाने वाली मान्यताओं में विविधता की व्याख्या आप कैसे करेंगे?

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self Exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. किसी ऐसी स्थिति को याद कीजिये जब आपने किसी बड़ी नैतिक समस्या का अपने जीवन में सामना किया हो। समझाइये कि स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया का उचित प्रयोग करते हुये कैसे इस समस्या का समाधान किया जा सकता है।
2. विश्लेषण कीजिये कि क्यों वर्तमान समय में, सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों के साथ जुड़ना बहुत ही कठिन और अव्यवहारिक लगता है और वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में इतने सारे लोग अनैतिक आचरण का शिकार क्यों होते हैं?

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास

(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, मूर्तिकला, क्लेमॉडलिंग, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करे!

"आमतौर पर यह माना जाता है कि पुराने समय में लोगों में नैतिकता अधिक थी। एक प्रोजेक्ट के रूप में आप कुछ प्रामाणिक स्रोतों को खोजें जिससे यह पता लगाया जा सके कि क्या यह वास्तव में सच है और यदि ऐसा है तो इसके क्या कारण थे?"

अनुभाग-4: आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-13

सही समझ के प्रकाश में व्यावसायिक नैतिकता

Professional Ethics in the light of Right Understanding

पुनरावृत्ति

(Recap)

पिछले अध्याय में हमने देखा कि किस प्रकार से सही समझ सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों और निश्चित नैतिक मानवीय आचरण का आधार बनती है। यह भी बार-बार दोहराया गया है कि सही समझ केवल विचारों के स्तर पर एक बौद्धिक अभ्यास मात्र नहीं है, बल्कि यह अनुभव के स्तर तक है, जो कि विचार, व्यवहार, कार्य एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी के रूप में व्यक्त होता है, अर्थात् यह प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवन का भाग है। नि:संदेह, प्रत्येक व्यक्ति को इसके लिये प्रतिक्षण स्वयं में जागरूक रहना आवश्यक है। इस प्रकार, सही समझ स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के नैतिक योग्यता के विकास को सुनिश्चित करती है।

इस अध्याय में हम यह समझने का प्रयत्न करेंगे कि यह नैतिक योग्यता ही व्यावसायिक नैतिकता को सुनिश्चित करने में सहायक है। आइये सही समझ के प्रकाश में व्यवसाय एवं व्यावसायिक नैतिकता को समझते हैं।

परिचय

(Introduction)

व्यवसाय, मानव की गतिविधियों का वह महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जहाँ मानव बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करता है और इसमें समाज और आस-पास की प्रकृति सम्मिलित रहती ही है। अतः यह हम में से प्रत्येक का, सामंजस्यपूर्ण समाज के लिये एक या एक से अधिक आयामों में अर्थपूर्ण भागीदारी का क्षेत्र है। इसका एक महत्वपूर्ण क्षेत्र उत्पादन और उत्पादन संबंधित गतिविधियों के रूप में है। यह, इस क्षेत्र में भागीदारी करने वाले व्यक्तियों और उनके परिवार के लिये आवश्यक भौतिक-सुविधा (आजीविका) भी उपलब्ध कराता है। यहाँ पर व्यक्ति, अन्य व्यक्तियों के साथ एवं शेष-प्रकृति की इकाइयों के साथ सहभागिता करता है। व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से, कोई भी व्यक्ति इस बड़ी व्यवस्था में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से विशिष्ट कौशल एवं तकनीकी ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

व्यावसायिक नैतिकता को व्यवसाय के नैतिक आचार संहिता के रूप में देखा जा सकता है। व्यावसायिक नैतिक आचरण का आशय, बड़ी व्यवस्था में समग्र मानव लक्ष्य की पूर्ति के लिये किसी व्यक्ति के व्यावसायिक कौशल का सदुपयोग करने से है। इसलिये एक योग्य व्यवसायी से यह अपेक्षा की जाती हैं कि वह सही-समझ, निष्ठा और निपुणता के साथ व्यवसाय करे, ताकि उसका यह प्रयास मानव के सर्वशुभ के अनुकूल हो अर्थात् सभी के सुख-समृद्धि के अनुकूल हो और शेष-प्रकृति के संवर्धन में भी अनुकूल हो। हालाँकि इस सर्व-शुभ को सुनिश्चित करने के योग्य होने के लिये, आवश्यक कौशल और तकनीकी योग्यता के साथ-साथ मानव में मानवीय मूल्य की योग्यता अर्थात् नैतिक योग्यता का विकास करना भी आवश्यक है।

वर्तमान में व्यावसायिक कौशल पर अधिक जोर दिया जा रहा है। शिक्षा में किये जाने वाले अधिकांश प्रयास इसी लक्ष्य की तरफ है। नैतिक योग्यता के विकास के लिये तो बहुत ही कम प्रयास हो रहे हैं; जिसे उपयुक्त मानवीय शिक्षा के माध्यम से ग्रहण किया जा सकता है। यह सरलता से देखा जा सकता है कि सही समझ का प्रमुख आशय नैतिक-योग्यता में विकास से है, जिससे व्यक्ति नैतिक मानवीय आचरण को अपने जीने के सभी क्षेत्रों (व्यवसाय सहित) में व्यक्त करने के योग्य हो पाता है।

व्यवसायों में अनैतिक आचरण से संबंधित समस्यायें, वर्तमान समय में एक बड़ी चिंता का विषय बनती जा रही हैं। इस कौशल में विकास और बड़े पैमाने पर नेटवर्किंग के लिये प्रौद्योगिकी और प्रणालियों की उपलब्धता के साथ, मानव ने इस ग्रह पर अपने साथी प्राणियों के साथ-साथ प्रकृति की स्थिति को प्रभावित करने के लिये जबरदस्त शक्ति अर्जित कर ली है। ऐसी स्थिति में, व्यावसायिक कौशल का सदुपयोग सुनिश्चित करने के लिये व्यावसायिक नैतिकता और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। व्यावसायिक नैतिकता के लिये योग्यता बढ़ाने में योगदान देने वाला दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है प्रौद्योगिकी, उत्पादन प्रणालियों और प्रबंधन तकनीकों के संबंध में समग्र दृष्टि को विकसित करना। और इस प्रकार की योग्यता को केवल सही समझ एवं उसके अनुसार जीने का अभ्यास करके ही प्राप्त किया जा सकता है। इस पर अध्याय-15 में विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगे।

यदि हम वर्तमान समय में प्रचलित नीतियों को देखें, तो हम यह पाते हैं कि अधिकांश प्रयास तथाकथित आर्थिक विकास के लिये ही हैं जो कि वर्तमान समय में धन-संग्रह की प्रवृत्तियों या अधिकाधिक लाभ अर्जन करने और भौतिक सुविधाओं में तेजी से बढ़ोतरी तक ही सीमित होकर रह गई हैं। प्रचलित वैश्विक परिदृश्य में, इन्हें सुख एवं समृद्धि प्राप्त करने के साधन के रूप में देखा जा रहा है। परिणामस्वरूप, अधिकांश कौशल, प्रौद्योगिकी एवं संसाधनों का उपयोग इसी दिशा में हो रहा है। यह अनेकानेक वैश्विक विकृतियों के साथ-साथ विभिन्न स्तरों पर अंतर्विरोधों और दुविधाओं को उत्पन्न कर रही है। इस प्रवृत्ति का वैश्वीकरण पहले से ही घातक परिणाम दे रहा है। अत: इस स्थिति को ठीक करने की त्वरित आवश्यकता है और यह केवल सही समझ के विकास के माध्यम से ही प्रभावी रूप से किया जा सकता है।

इस अध्याय में पहले हम, व्यवसाय को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न करेंगे और उसके बाद यह देखेंगे कि व्यावसायिक नैतिकता में वास्तविक योग्यता को किस प्रकार सुनिश्चित किया जा सकता है और इसके साथ ही हम व्यावसायिक नैतिकता के संबंध में वर्तमान परिदृश्य पर भी दृष्टि डालेंगे, जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न तरीकों से अनैतिक कार्य का व्यापक प्रसार हो रहा है। हम उन विभिन्न विधियों की भी चर्चा करेंगे, जो इन प्रवृत्तियों का ध्यानाकर्षण करने में अपर्याप्त सिद्ध हुई हैं। यहाँ पर यह समझना बहुत ही महत्वपूर्ण होगा कि किस तरह से वैश्विक-दृष्टि में अंतर्निहित अंतर्विरोध एवं व्यावसायिक नैतिकता की अपेक्षायें, कई विरोधाभासों और दुविधाओं को पैदा कर रही हैं जिन्हें तब तक नहीं सुलझाया जा सकता जब तक कि सही समझ की दिशा में चेतना का संक्रमण न हो जाये।

व्यवसाय - समग्र मानव लक्ष्य के संदर्भ में

(Profession – In Context with the Comprehensive Human Goal)

जैसा कि पहले कहा गया है कि कोई भी व्यवसाय, मानवीय लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में मानव द्वारा उसकी बड़ी व्यवस्था में की गई भागीदारी है। इस प्रक्रिया में, मानव अपने परिवार की आजीविका अर्जन में एवं अपने से बड़ी व्यवस्था (जो कि समाज और शेष-प्रकृति से मिलकर बनती है) में भागीदारी करने में सक्षम हो पाता है। इन सब गतिविधियों के लिये एक निश्चित कौशल की योग्यता और ज्ञान की आवश्यकता है और यह भी अपेक्षा की जाती है कि यह समग्र मानवीय लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में हो। इसके पश्चात ही, यह व्यक्ति एवं समाज दोनों के सर्व-शुभ के अनुकूल होगी।

किसी व्यावसायिक गतिविधि की श्रेष्ठता या सफलता का निर्धारण मात्र इस समग्र मानव लक्ष्य के संदर्भ में ही हो सकता है, न कि केवल धन-अर्जन के आधार पर। अतः व्यवसाय किसी व्यक्ति के जीविकोपार्जन का साधन मात्र नहीं है, बल्कि यह किसी भी व्यक्ति की बड़ी व्यवस्था में सही भागीदारी को विकसित करने का माध्यम है। यह किसी व्यक्ति की समझ को प्रमाणित करने की एक महत्वपूर्ण क्रिया है, जिसमें हम अन्य मानवों के साथ एवं शेष-प्रकृति के साथ अपनी भागीदारी को परस्पर-पूरकता की विधि से सुनिश्चित कर पाते हैं। जैसा कि पहले भी विस्तारपूर्वक बताया गया है कि समग्र मानवीय लक्ष्य, सभी चारों लक्ष्यों अर्थात् व्यक्ति में समाधान, परिवार में समृद्धि, समाज में अभय और प्रकृति/अस्तित्व में सह-अस्तित्व की पूर्ति पर बल देता है।

व्यवसाय के उपरोक्त आशय को समझने के पश्चात, हमें इस बात की जाँच करने के लिये कुछ समय रुकना चाहिये कि वर्तमान में हम अपने व्यवसाय को किस प्रकार से देख रहे हैं। जिस समय हम व्यवसाय का चयन करने का प्रयत्न करते हैं, उस समय हमारी कल्पनाशीलता में क्या चल रहा होता है? हम किसे अच्छे व्यवसाय के रूप में मानते हैं? अपने बच्चे के लिये उपयुक्त व्यवसाय के संबंध में माता-पिता का सामान्य दृष्टिकोण क्या है? समाज में लोग किस तरह के व्यवसायों को महत्व देते हैं? यह जानना हमारे लिये बहुत महत्वपूर्ण है। व्यवसायों को वर्तमान रूप में सामान्यतः जिस भाव से देखा जाता है, क्या वह अधिक से अधिक धन कमाने, अधिक शक्ति प्राप्त करने, अधिक वेतन और सुविधायें प्राप्त करने के अर्थ में ही है? स्वयं जाँच कीजिये।

व्यापक रूप से प्रचलित यह दृष्टिकोण, स्वाभाविक रूप से सभी के निरंतर सुख को सुनिश्चित करने के लिये व्यावसायिक नैतिकता की अपेक्षाओं के विरोध में है। इन पहलुओं पर बाद में चर्चा करेंगे जब हम इससे सम्बन्धित वर्तमान परिदृश्य पर विस्तार से चर्चा कर रहे होंगे। यहाँ पर यह निष्कर्ष निकालना पर्याप्त है कि व्यवसाय में नैतिक आचरण को सुनिश्चित करने का सही तरीका यह है कि हमें व्यवसाय की सही समझ हो जाये, सुख और समृद्धि की सही समझ हो जाये, और फिर इसे कार्यान्वित करने की योग्यता विकसित हो जाये। मूल्य शिक्षा का उद्देश्य सही समझ और ऐसा जीने की योग्यता को विकसित करना ही है जो कि व्यावसायिक नैतिकता को सुनिश्चित करने के लिये आवश्यक है।

नैतिक योग्यता सुनिश्चित करना

(Ensuring Ethical Competence)

(नैतिक मानवीय आचरण की ओर व्यक्तिगत एवं सामाजिक नीतियाँ)

व्यवसाय को सही परिपेक्ष्य में समझने के बाद, स्पष्ट रूप से यह चिह्नित करने की आवश्यकता है कि किसी व्यक्ति को मूल्यों के आधार पर जीने की योग्यता को विकसित करने से हमारा आशय क्या है जो कि व्यावसायिक नैतिकता को सुनिश्चित करने का प्रभावी ढंग साबित हो। ऐसी योग्यता के अभाव में शपथ दिलाना और आचार संहिता आदि का निर्धारण करना महज औपचारिकतायें ही बन जाती हैं। आगे बढ़ने से पहले आइये यह देखने का प्रयत्न करें कि कोई व्यक्ति अनैतिक व्यवहार क्यों करता है। मूल रूप से वह सुख और समृद्धि के बारे में सही समझ की कमी के कारण ही अनैतिक व्यवहार करता है। यदि कोई व्यक्ति सुख को अधिक से अधिक इंद्रिय भोग करने में और समृद्धि को अधिक से

अधिक सुविधा-संग्रह करने में देखता है तो वह अधिक से अधिक धन-संग्रह करने के लिए ही बाध्य होगा।

इस परिपेक्ष्य में, मानव के लिये अन्य सभी विचार गौण हो जाते हैं। इसलिये, वह अधिकाधिक अनैतिक प्रयासों में लग जाता है क्योंकि वह सुख को उपरोक्त गलत मान्यता से पूरा करने का प्रयास करने लगता है। इस तरह की मान्यताओं के परिणाम लोगों को तात्कालिक रूप से आकर्षक लगते हैं और वे इस गलत मान्यता के साथ दृढ़ता से बंधते जाते हैं। चूंकि आस-पास के बहुत सारे लोग इन्हीं मान्यताओं के आधार पर चलते हुये दिखाई देते हैं और उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे बहुत सुखी हैं। इसलिये इसे जीने का एक व्यावहारिक तरीका मान लिया जाता है। इस परिपेक्ष्य में, वास्तविक जीवन में नैतिकता को अपनाना बहुत अधिक आदर्शवादी प्रतीत होता है।

जैसा कि पहले ही बताया गया है कि मूल्य शिक्षा के माध्यम से नैतिक योग्यता का विकास एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। चूंकि व्यवसाय, जीवन की गतिविधियों का एक भाग है अतः व्यावसायिक नैतिकता की योग्यता, व्यक्ति की सही समझ की अभिव्यक्तियों में से एक है।

इसके अलावा, यदि समाज का वैश्विक नजरिया अस्तित्व सहज वास्तविकताओं के अनुरूप हो तो वह नैतिक मानवीय आचरण के प्रति सही सामूहिक नीतियों का विकास कर पायेगा। ऐसा जागरूक समाज, अनैतिक क्रियाकलापों के खिलाफ वास्तविक सुरक्षा प्रदान करने वाला सिद्ध होगा।

नैतिक योग्यता के प्रमुख लक्षणों का विवरण

(Salient Features Characterizing Ethical Competence)

संक्षिप्त रूप में ये निम्नलिखित हैं:

1. व्यक्ति में सही समझ और सही-भाव, परिवार में समृद्धि, समाज में अभय एवं प्रकृति में सह-अस्तित्व, समग्र मानवीय लक्ष्य है।

   इसका आशय यह हुआ कि कोई व्यक्ति, अपना व्यवसाय समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के लिये करेगा न कि सिर्फ आर्थिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये या अधिकाधिक लाभ के लिये। अतः व्यवसाय संबंधी किसी भी क्रिया का मूल्यांकन इन चार मानवीय लक्ष्यों के आधार पर किया जाना आवश्यक है।
2. 'स्वयं(मैं)' और 'अस्तित्व' के बारे में सही समझ के आधार पर स्वयं में सह-अस्तित्व, व्यवस्था, और संबंध के बारे में आश्वस्ति हो पाती है। इससे यह भी विश्वास बनता है कि मेरे साथ-साथ प्रत्येक मानव की तृप्ति केवल अस्तित्व में व्यवस्था को समझने एवं इसके अनुरूप जीने से ही संभव है। परिणामस्वरूप हम अन्य व्यक्तियों की विरोधाभासी बातों से या उनके सतही निष्कर्षों से प्रभावित नहीं होते हैं।

3. परस्पर-पूरकता पूर्ण व्यवहार करने की योग्यता पर आधारित है; जिसको नैतिक मानवीय आचरण की स्पष्टता तथा व्यक्तिगत एवं सामूहिक सुख और समृद्धि की निरंतरता का नैतिक मानवीय आचरण के साथ संबंध की स्पष्टता से सुनिश्चित किया जा सकता है।

   इस प्रकार की योग्यता को निरंतर अभ्यास और सही समझ के अनुरूप जी कर एवं इसके विरोधाभासी आचरण जैसे इंद्रिय भोग, भय एवं लालच से प्रेरित आचरण जिसको स्वयं में मार्ग न देकर सुनिश्चित किया जा सकता है। इस प्रकार से कोई व्यक्ति जीवन के सभी क्षेत्रों में नैतिक मार्ग का अनुसरण सहजता से कर सकता है।

4. प्रकृति के साथ परस्पर-संवर्धन पूर्वक जीने की योग्यता को स्वयं, परिवार एवं समाज के लिये आवश्यक सुविधा के निर्धारण की स्पष्टता के साथ-साथ प्रकृति में व्यवस्था सुनिश्चित करने वाली उत्पादन प्रणालियों की स्पष्टता से ही सुनिश्चित किया जा सकता है।

   सही समझ के परिणाम स्वरूप व्यक्ति अपनी सुविधा की आवश्यकता का ठीक-ठीक निर्धारण करने में सक्षम हो पाता है एवं दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील भी हो पाता है; साथ ही साथ यह भी स्पष्ट हो पाता है कि ये सभी आवश्यकतायें प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण, स्थायी एवं परस्पर-संवर्धन के अर्थ में किये गये प्रयासों से ही पूरा किया जा सकता है।

5. प्रौद्योगिकी, उत्पादन व्यवस्था एवं प्रबंधन तकनीकी के बारे में समग्र दृष्टि।
   प्रौद्योगिकियों और प्रणालियों के बारे में समग्र दृष्टि का विकास एक और महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो व्यावसायिक नैतिकता की योग्यता को बढ़ाता है। सामान्यतः इस पहलू को नजरंदाज किया जाता है और प्रचलित व्यावसायिक नैतिकता की चर्चा में इसे स्थान नहीं दिया जाता है। जबकि, इस प्रकार की दृष्टि के बिना व्यक्ति अनजाने में ही ऐसी बातों का प्रचार करता रहता है जो कि वास्तव में मानव के सर्वशुभ के अनुकूल नहीं होती है।

6. व्यक्ति को अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों का पर्याप्त एहसास होना।

   जैसे-जैसे व्यक्ति अपने व्यवसाय में निपुण होता है और शासन के पदों पर आसीन होता है तो उसके निर्णय और उसकी गतिविधियाँ बहुत से लोगों को एवं प्राकृतिक वातावरण को प्रभावित करती हैं। इसलिये ऐसे व्यक्ति को प्रत्येक क्षण अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक होना बेहद जरूरी है। दूसरी ओर समाज को भी अपने सदस्यों के आचरण के प्रति सतर्क रहने की बेहद आवश्यकता है।

व्यावसायिक नैतिकता के मुद्दे- वर्तमान परिदृश्य

(Issues in Professional Ethics – The Current Scenario)

वर्तमान परिदृश्य में व्यावसायिक नैतिकता के मुद्दे बहुत जटिल होते जा रहे हैं, अनैतिक अभ्यास तीव्र गति से बढ़ रहा है और इसके प्रभाव भी दूरगामी होते जा रहे हैं। विविध अभिव्यक्तियों में भ्रष्टाचार एक विषाणु की तरह सभी व्यवसायों को दूषित कर रहा है। इसी प्रकार से, अन्य अनैतिक आचरण के अभ्यास भी बढ़ रहे हैं और नियंत्रण से बाहर होते जा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मानव की प्रतिभा का उपयोग, व्यवसाय में नैतिक आचरण को विफल करने, कानूनों को तोड़ने-मरोड़ने और व्यवस्था को बिगाड़ने के लिये नये-नये सूक्ष्म तरीके खोजने हेतु ही प्रयोग हो रहा है। बड़ी संख्या में, लोगों ने इस भाव को पोषित करना प्रारंभ कर दिया है कि धन के द्वारा सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, यहाँ तक कि व्यक्ति को भी खरीदा जा सकता है एवं व्यवस्था को भी अपने लाभ के लिये तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है।

अनैतिक अभ्यास की इस 'महामारी' के परिणामस्वरूप, हम अक्सर गंभीर घोटालों, प्रमुख आर्थिक अपराधों और बड़े पैमाने पर खरीदारी में घोटाले इत्यादि देख ही रहे हैं। यह बेनामी लेन-देन और हवाला जैसी घटनाओं के रूप में देखने को मिलता है, वास्तव में यह काला बाजारी के रूप में एक समानांतर अर्थव्यवस्था को बढ़ावा दे रहा है। बड़े संगठनों की ओर से व्यवसाय में नैतिक आचरण की कमी के कारण बड़े पैमाने पर आपदायें आ रही हैं, जैसे भोपाल गैस त्रासदी, चेरनोबिल (Chernobyl)

आपदा इत्यादि। व्यवसाय में नैतिक आचरण की ये कमियाँ सार्वजनिक जीवन और संपत्ति को खतरे में डाल रही हैं एवं पर्यावरण में भी गंभीर समस्यायें पैदा कर रही हैं।

बड़े उद्योगों, उत्पादक संघों, बहुराष्ट्रीय निगमों और यहाँ तक कि राष्ट्रीय सरकारों के द्वारा भी सामूहिक रूप से अनैतिक नीतियों को अपनाये जाने के कारण यह खतरा और भी गंभीर होता जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप, इन अनैतिक नीतियों को बड़े समूहों के हित में पेश करने के लिये एक प्रकार से इन्हें वैधानिक भी ठहराया जाता है। हम ऐसे समूहों के द्वारा की जा रही जोर जबरदस्ती को भी देख सकते है जिनके लिये मीडिया अक्सर ड्रग-माफिया, बिल्डर-माफिया और हथियार-माफिया जैसे नामों का प्रयोग करता है। स्वयं के स्वार्थ के लिये, ऐसे समूह एक साथ गठबंधन करते हैं और विभिन्न राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था, यहाँ तक कि सरकारों को भी अस्थिर कर देते हैं। तेल कंपनियों और तेल उत्पादक देशों का अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर मजबूत प्रभाव है जो कि सर्वविदित है। हम इसके बारे में भी जानते हैं कि किस प्रकार से भ्रामक प्रचार, विज्ञापन इत्यादि जिसमें सेक्स-अपील, दिखावे वाले व्यापार एवं सेलिब्रिटीयों को जनता की कल्पनाशीलता को प्रभावित करने के लिये उपयोग किया जाता है, जिससे वे अपने उत्पाद की बिक्री को बढ़ावा दे सकें, जो कि मानव के सर्वशुभ के अनुकूल नहीं है। बिगड़ती व्यावसायिक नैतिकता के इन सभी रूपों के बारे में बहुत अधिक विस्तार से बताने की जरूरत नहीं है, क्योंकि हम सभी न केवल इस गिरावट के शिकार हैं बल्कि कई अवसरों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसमें योगदान करने के लिये या असहाय दर्शक बने रहने के लिये मजबूर महसूस करते ही हैं। अनैतिक अभ्यास की कुछ महत्वपूर्ण श्रेणियों को इस प्रकार सूचीबद्ध कर सकते है:

- विभिन्न प्रकार के एवं विभिन्न स्तरों पर व्याप्त भ्रष्टाचार
- कर चोरी, सार्वजनिक निधियों की हेराफेरी एवं इनका दुरुपयोग
- राजनीतिक शक्तियों का एवं अफसरशाही अधिकारों का दुरुपयोग
- भ्रामक प्रचार, अनैतिक विज्ञापन से अधिकाधिक बिक्री को प्रोत्साहन देना
- द्वेष, ईर्ष्या, विरोध और संघर्षों को बढ़ावा देने वाली प्रतियोगितायें कराना
- विभिन्न प्रलोभनों और भ्रांतिपूर्ण विज्ञापनों के माध्यम से उपभोक्ताओं का शोषण करना
- मिलावटी एवं नकली उत्पादनों को बढ़ावा देना
- जनता के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा को बड़े पैमाने पर खतरे में डालना
- जमाखोरी, अधिक कीमत वसूलने का प्रयास करना

हालांकि यह सूची और लंबी हो सकती है।

यह सब क्यों हो रहा है, इस स्थिति को उत्पन्न करने में कौन योगदान दे रहा है? हमारे सुख और समृद्धि पर इसका क्या प्रभाव पड़ रहा है? हमारे अध्ययन एवं सोचने के लिये यह एक महत्वपूर्ण बिंदु है।

व्यावसायिक नैतिकता को बढ़ावा देने के प्रचलित प्रयास - उनकी अपर्याप्तता

(Prevailing Approaches towards Promotion of Professional Ethics – their inadequacy)

व्यावसायिक अनैतिकता से संबंधित प्रवृत्तियों को एवं उनके प्रभाव को रोकने के लिये वर्तमान में नियोजित किये जा रहे विभिन्न तरीकों और तंत्रों का अध्ययन करना भी शिक्षाप्रद होगा। यह सत्य है कि

इस विकृति का प्रभाव बड़े पैमाने पर देखा जा रहा है और समाज में इस स्थिति को ठीक करने के प्रयास भी बढ़े हैं। अनेक संस्थायें जैसे सरकारी संस्थायें, व्यावसायिक सोसाइटियाँ, एनजीओ, मीडिया, व्यावसायिक शिक्षक इत्यादि स्थितियों को नियंत्रित करने एवं नये मार्ग सुझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। हालांकि, अपनाये जा रहे ज्यादातर प्रयास मूल समस्या के सम्पूर्ण समाधान को सुनिश्चित करने के बजाय इनके प्रभावों को ही दूर करने वाले हैं या केवल दंडात्मक उपाय देने वाले हैं अथवा मात्र संकट प्रबंधन पर आधारित हैं। इस संदर्भ में वर्तमान में निम्नलिखित विधियों को प्रस्तावित एवं लागू किया जा रहा है:

- नये विषयों का परिचय, रिफ्रेशर प्रोग्राम एवं केस स्टडी इत्यादि के माध्यम से व्यावसायिक नैतिकता के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देना।
- विशिष्ट व्यावसायिक शाखाओं में नैतिक आचरण कोड की अनुशंसा करना एवं शपथ ग्रहण कराने का प्रयास करना।
- गहन लेखा परीक्षण एवं निगरानी के लिये तंत्र स्थापित करने का प्रयास करना।
- अधिक कड़े कानून तैयार करना और अपराधों के लिये कठिन दंड का प्रावधान करना।
- आर टी आई (सूचना का अधिकार अधिनियम) इत्यादि जैसे तंत्रों के माध्यम से कार्य प्रणालियों में पारदर्शिता को बढ़ावा देना।
- मीडिया के द्वारा व्यावसायिक नैतिक आचरण में पायी जाने वाली खामियों का स्टिंग ऑपरेशन के माध्यम से व्यापक प्रचार करना।
- व्यक्तिगत स्तर पर या सामूहिक स्तर पर व्यावसायिक नैतिकता के अभाव में होने वाली समस्यायों के बारे में जागरूक रहने के लिये प्रोत्साहन देना।
- लोकपाल, विजिलेंस कमिश्नर, आचार समितियाँ, ट्रिब्युनल्स, उपभोक्ता संरक्षण फोरम इत्यादि का गठन किया जाना।
- जनहित याचिकाओं को दायर करना।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उपरोक्त सभी विधियाँ सही नीयत के साथ वर्तमान स्थिति से निपटने के लिये बनाई गई हैं। जबकि इनकी उपयोगिता अस्थायी सिद्ध हुई है और प्रभाव भी सीमित रहा है। वास्तव में, मूल समस्या तो मानव में दोषपूर्ण वैश्विक-दृष्टि है; किन्तु वर्तमान में किये जा रहे प्रयास इस दोषपूर्ण दृष्टि को ठीक करने के बजाय, इसके कुप्रभावों को रोकने की दिशा में ही होते दिखाई देते हैं। नैतिक योग्यता विकसित करने की तरफ प्रभावी कदम यह हो सकता है कि सही समझ के द्वारा मानव में जीव चेतना से मानव चेतना में संक्रमण को सुनिश्चित किया जाये अर्थात् मानव में समग्र समाधान को सुनिश्चित किया जाये। वर्तमान में यदि हम मानव की स्थिति को देखे तो वह स्वयं में विरोधाभास की स्थिति में रहने के लिये बाध्य है, यह विरोधाभास उसकी मान्यता और उसकी आशा के बीच है; अर्थात् एक तरफ मानव में अधिक से अधिक धन के माध्यम से सुख प्राप्त करने की मान्यता है तो दूसरी तरफ मानव के सर्वशुभ की आशा; जो की विरोधाभासी हैं। अतः समग्र समाधान तब तक सुनिश्चित नहीं किया जा सकता जब तक कि इस तरह के विरोधाभासों को दूर नहीं कर लिया जाये।

उपरोक्त में से कुछ उपायों को नीतियों में परिवर्तन करके अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है और यदि नैतिक योग्यता के विकास पर फोकस किया जाये, तो कई सारे उपाय तो अनावश्यक ही दिखने लगेंगे।

वर्तमान वैश्विक दृष्टि में अंतर्निहित विरोधाभास और दुविधायें एवं उनका समाधान

(Inherent Contradictions and Dilemmas and their Resolution)

कुछ उदाहरणों के माध्यम से हम और अधिक स्पष्टता से समझ सकते हैं कि वर्तमान वैश्वविक-दृष्टि से कैसे अंतर्विरोध और दुविधायें स्वतः ही उत्पन्न हो रही हैं, जिसमें धन के अधिकाधिक संग्रह को ही मुख्य लक्ष्य माना जा रहा है। इस तरह की परिस्थिति में 'एक की हानि ही दूसरे का लाभ है' और एक व्यक्ति का सुख, दूसरे व्यक्ति के सुख के विरोध में है। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति की संपन्नता के लिये अन्य व्यक्तियों का शोषण निश्चित है और स्थाई रूप से परस्पर-पूरकता की कोई संभावना नहीं बनती। इस तरह से प्रकृति का शोषण भी स्वीकार्य हो जाता है और व्यक्ति को सरलता से धन संग्रह करने में सहायता भी मिलती है, जिसकी कोई सीमा नहीं। आइये देखें, और विश्लेषण करें कि इस प्रकार के वैश्विक-दृष्टि के साथ विभिन्न व्यवसायों से जुड़े लोगों की प्रवृत्तियों पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है।

> उदाहरण के लिये *एक व्यावसायिक क्षेत्र का देखते हैं। जब किसी प्राकृतिक आपदा, युद्ध या अच्छा मानसून न होने के कारण किसी उत्पाद की कमी हो जाती है, उस समय व्यक्ति हताशा में चला जाता है और सहायता चाहता है। इन परिस्थितियों में भौतिकतावादी वैश्विक-दृष्टि से सम्पन्न व्यापारी स्वयं में प्रफुल्लित होते हैं और इसको अधिकतम लाभ कमाने के अवसर के रूप में देखते हैं। उन्हें लगता है कि बाजार में सुधार हो रहा है और उनको इसका अधिकतम लाभ उठाना चाहिये, यहाँ तक कि अपने इस लक्ष्य को पूरा करने के लिये वे जमाखोरी और कालाबाजारी करके इन परिस्थितियों को और बढ़ावा देते हैं। इस प्रकार से ऐसे व्यापारीयों का स्वार्थ और सामान्य उपभोक्ता का स्वार्थ परस्पर विरोध की स्थिति में आ जाते हैं। जबकि वास्तव में उनसे एक-दूसरे के लिये परस्पर-पूरक होने की उम्मीद की जाती है। इसी तरह, लाभ बढ़ाने के लिये सार्वजनिक स्वास्थ्य और सुरक्षा की कीमत पर मिलावट और नकली वस्तुओं का उत्पादन इत्यादि जैसे अनैतिक अभ्यासों को भी अपनाया जाता है।*

प्रचलित अंतर्विरोधों का एक अच्छा उदाहरण हमें उन विज्ञापनों में स्पष्ट रूप से मिलता है, जिन्हें दैनिक रूप में हम टेलीविजन पर देखते हैं, जैसे सिगरेट, पान-मसाला इत्यादि विभिन्न हानिकारक उत्पादों के विज्ञापन। जहाँ एक तरफ, इन उत्पादों के विज्ञापनों को अत्यधिक आकर्षक बनाया जाता है ताकि उपभोक्ताओं को आकर्षित किया जा सके और उसी विज्ञापन के अंत में, एक अस्पष्ट संवैधानिक चेतावनी भी दी जाती है कि इन उत्पादों का उपयोग स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। इस प्रकार से अधिकाधिक धन अर्जित करने की प्रवृत्ति साफ तौर पर ऐसे उत्पादों की बिक्री को प्रोत्साहन देती है जो कि जनता के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं। ऐसी स्थितियों में असमंजस बना रहता है कि व्यावसायिक लाभ को कितना महत्व दिया जाये और कितना महत्व सर्वशुभ को दिया जाये; यह प्रश्न सदैव अनसुलझा ही रहा है।

इसी प्रकार से हम किसी भी व्यवसाय में इस असमंजस की स्थिति को चिन्हित कर सकते हैं, जो मूल रूप से लाभ को बढ़ाने की प्रेरणा से किया जाता है। उदाहरण के लिये हम चिकित्सकीय सेवाओं को ही ले जो अब लाभ कमाने के अर्थ में दिखती हैं। मान लिया कि कोई महामारी फैल जाये और बहुत बड़ी संख्या में लोग बीमार हो जाये तो ऐसे समय में वे चिकित्सक जो कि भौतिकवादी वैश्विक-दृष्टि से युक्त हैं बहुत उत्साहित हो जाते हैं और इसे बहुत सारा धन कमाने का अच्छा अवसर मान लेते हैं। इस प्रकार से समाज में स्वास्थ्य का पतन उन लोगों के लिये लाभ कमाने का अवसर बन जाता है जो समाज में व्यक्तियों के स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिये जिम्मेदार हैं। यहाँ वही असमंजस की स्थिति पुनः आती है कि किसी एक के लाभ को महत्व दिया जाये या जरूरतमंद व्यक्तियों के शुभ को। लाभ-उन्माद से प्रेरित चिकित्सक, उन मरीजों के शोषण का कोई भी तरीका अपनाते हैं जो पहले से ही गंभीर समस्या में हैं।

भौतिकवादी वैश्विक दृष्टि से युक्त वकीलों के लिये भी यह देखना असामान्य नहीं है कि जिन वकीलों से न्याय को सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है, वे तेजी से धन कमाने की इच्छा से प्रेरित होकर, सभी प्रकार के अनैतिक कार्यों को करने में लग जाते हैं; जिससे न्याय की प्रक्रिया ही विफल हो जाती है; यहाँ तक कि वे दोषियों को बचाने एवं निर्दोष को दंडित करवाने का प्रयास करते हुये भी दिखाई देते हैं।

हम प्रत्येक व्यवसाय में इस तरह के दृश्यों को देख ही रहे हैं, जहाँ लाभ-उन्माद की प्रवृति बहुत सारे अनैतिक अभ्यासों का कारण बनती है और इन व्यवसायों के समग्र लक्ष्य अर्थात् बड़ी व्यवस्था में भागीदारी करने के उद्देश्य को विफल करती है। यह सब करने वाले लोगों के मानस में लगातार अंतर्विरोध बना रहता है क्योंकि अनैतिक अभ्यास स्वाभाविक रूप से किसी को भी सहज स्वीकार्य होता नहीं है। ऐसे अनैतिक अभ्यास व्यक्तिगत स्तर पर मानव में तनाव और चिंता पैदा करते है और व्यक्ति को दोहरे व्यक्तित्व के साथ जीने के लिये विवश करते हैं, जिसमें वे नैतिक होने का दिखावा करते हैं और वास्तविक रूप में उनका जीना इससे अलग होता है। यहाँ पर समस्या के मूल कारण पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इस प्रकार की समस्त समस्याओं का समाधान सही समझ के द्वारा ही हो सकता है।

आप विभिन्न व्यवसायों में होने वाली दुविधाओं को भी समझना चाहेंगे और यह भी देखना चाहेंगे कि सही समझ के प्रकाश में इन्हें कैसे ठीक किया जा सकता है।

इस प्रकार से, इन सभी चर्चाओं का निष्कर्ष यही है कि सामान्य तौर पर व्यवसायियों में विशेषकर मूल्य शिक्षा के द्वारा नैतिक योग्यता का विकास करने के लिये ईमानदारी से प्रयास किया जाये, जिससे व्यावसायिक नैतिकता के लिये प्रभावी सुरक्षा कवच प्रदान किया जा सके।

मुख्य बिंदु

(Salient Points)

- *व्यवसाय का आशय, समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति हेतु, बड़ी व्यवस्था में अर्थात् समाज और प्रकृति में मानव की सार्थक भागीदारी से है, और इस प्रक्रिया में परिवार के लिये आवश्यक सुविधा भी उपलब्ध हो पाती है।*
- *व्यावसायिक नैतिकता को व्यवसाय की नैतिक संहिता के रूप में देखा जा सकता है। समग्र मानवीय लक्ष्यों की पूर्ति के लिये बड़ी व्यवस्था में व्यक्ति के व्यावसायिक कौशल का सदुपयोग ही व्यवसाय में मानव का नैतिक मानवीय आचरण है ।*
- *व्यक्तियों (व्यवसायी) में मूल्यों के साथ जीने की योग्यता और नैतिक योग्यता को विकसित करना; व्यावसायिक नैतिकता को सुनिश्चित करने का एक प्रभावी तरीका है।*
- *व्यावसायिक नैतिकता की योग्यता निम्नलिखित बिन्दुओं पर आधारित है:*
    - *समग्र मानवीय लक्ष्य के बारे में स्पष्टता पर अर्थात् व्यक्ति में सही समझ और सही-भाव, परिवार में समृद्धि, समाज में अभय एवं प्रकृति/ अस्तित्व में सह-अस्तित्व की स्पष्टता पर आधारित है।*

- *'स्वयं' और 'अस्तित्व' की समझ पर आधारित है जिससे 'स्वयं', 'सह-अस्तित्व', 'व्यवस्था' और 'संबंध' में विश्वास हो पाता है।*
- *परस्पर-पूरकता पूर्ण व्यवहार करने की योग्यता पर आधारित है; जिसको नैतिक मानवीय आचरण की स्पष्टता तथा व्यक्तिगत एवं सामूहिक सुख और समृद्धि की निरंतरता का नैतिक मानवीय आचरण के साथ संबंध की स्पष्टता से सुनिश्चित किया जा सकता है।*
- *शेष-प्रकृति के साथ परस्पर-पूरकता पूर्ण कार्य करने की योग्यता पर आधारित है; जिसको परिवार की आवश्यकता के ठीक-ठीक आंकलन करने की स्पष्टता और परस्पर-पूरक उत्पादन प्रणालियों की स्पष्टता से सुनिश्चित किया जा सकता है।*
- *प्रौद्योगिकी, उत्पादन-व्यवस्था एवं प्रबंधन तकनीक की समग्र दृष्टि पर आधारित है।*
- *किसी भी व्यक्ति में सामाजिक उत्तरदायित्व के पर्याप्त एहसास पर आधारित है।*

- *विभिन्न व्यवसायों में अनैतिक अभ्यासों की बढ़ोतरी, अंतर्विरोध एवं दुविधायें मुख्य रूप से अधिक से अधिक लाभ कमाने की प्रचलित वैश्विक-दृष्टि के कारण ही है।*

अपनी समझ को जाँच

(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्वमूल्यांकन- के लिये प्रश्न

(Questions for Self Evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. 'व्यवसाय' एवं 'व्यावसायिक नैतिकता' से आप क्या समझते हैं?
2. प्रचलित वैश्विक-दृष्टि में सामान्यतः एक अच्छे व्यवसायी से क्या अपेक्षायें हैं? सही समझ के संदर्भ में इनका मूल्यांकन कीजिये।
3. आपके अनुसार, व्यावसायिक नैतिकता को सुनिश्चित करने की सर्वश्रेष्ठ विधि क्या हो सकती है। इसका स्पष्टीकरण भी दीजिये।
4. भ्रष्टाचार से निपटने के तमाम उपायों को करने के पश्चात भी यह विसंगतियाँ बढ़ती ही जा रही है। इसके प्रमुख कारणों की व्याख्या कीजिये।

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Practice Exercises for Self Exploration)

(**विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लि**ये **कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही**, इन **अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ** अवश्य करें**।**)

1. माना कि आपको निम्नलिखित में से कोई एक व्यवसाय चुनना है। आपको इनके क्रियान्वयन में किस प्रकार की नैतिक दुविधाओं का और चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है और आप इन्हें सुलझाने के लिये क्या प्रयत्न करेंगे:
    a. ठेकेदार/ भवन निर्माता
    b. अफसरशाह

c. चार्टर्ड अकाउंटेंट

2. माना कि आप किसी सरकारी संस्थान में कार्यरत है; जहाँ आपके वरिष्ठ अधिकारी भ्रष्ट हैं और आपको भी इसमें सम्मिलित होने के लिये कहते हैं। बताइये कि आप इस स्थिति में क्या करेंगे?

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास

(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

"यह समझने के लिये कि वर्तमान प्रणाली में सूचना के अधिकार के नियम को लागू करने के लिये एक प्रोजेक्ट कर सकते हैं और यह भी देखा जा सकता है कि यह वर्तमान कुप्रथाओं पर अंकुश लगाने में किस हद तक कारगर साबित हो रही हैं"

अनुभाग-4: आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है, तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-14
सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की ओर समग्र विकास
Holistic Development towards Universal Human Order

पुनरावृत्ति
(Recap)

खंड-II में, हमने देखा कि किस प्रकार से सही-समझ जीवन के सभी आयामों में सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों की पहचान के लिये आधार प्रदान करता है। यही सही ,समझ-नैतिक मानवीय आचरण में निश्चितता की पहचान करने में भी सहायक है। यह मानव के लिये सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों और सुख के बीच संबंध को समझने में भी सहायक है। हमारी प्रकृति सहज धारणा की स्पष्टता पर आधारित सही समझ ही हमारे नैतिक मानवीय आचरण की अभिव्यक्ति में सहायक-है। यह मानव को मानवीय-चेतना में जीने की तरफ संक्रमण करने में भी सहायक है। इस संदर्भ में यह भी देखा गया है कि मानव में नैतिक योग्यता का विकास और नैतिक मानवीय आचरण के प्रति सामाजिकचेतना का विकास, - व्यावसायिक नैतिकता को बढ़ावा देने का सबसे अच्छा तरीका सिद्ध हुआ है।

सही समझ के अन्य महत्वपूर्ण आशयों को समझने के क्रम में इस अध्याय में हम देखेंगे कि कैसे सही-समझ, सार्वभौमिक मानवीय लक्ष्य को समग्रता में समझने और सर्व- शुभ की समग्र दृष्टि प्राप्त करने के योग्य बनाती है । इसी प्रकार, सही –समझ हमे समग्र विकास की दृष्टी विकसित करने में सक्षम भी बनाती है जो की सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के अर्थ में जीने के लिए प्रोत्साहित करने के अनुकूल है । यह भी ध्यान देने योग्य बात है की मानव के सर्व – शुभ की प्रचलित मान्यता मूलतः भौतिक सुविधाओं के प्रसार के रूप में मानी जाती रही हैं जो की समग्र विकास की इस दृष्टि के ठीक विपरीत है।

समग्र मानवीय लक्ष्य को समझना
(Visualization of Comprehensive Human Goal)

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि सही समझ का महत्त्वपूर्ण आशय समग्र मानवीय लक्ष्य की स्पष्टता है, जो कि सर्व –शुभ के अर्थ में हो। वर्तमान में सर्व – शुभ को मूलतः केवल आर्थिक रूप में ही देखा जाता है । हम पहले ही चर्चा कर चुके है कि इस तरह के संकीर्ण लक्ष्यों से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समस्यायें ही पैदा होती है और इन लक्ष्यों में निश्चितता भी नहीं रहता है। इसके अतिरिक्त, सही समझ के प्रकाश में, समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति हेतु समग्रता में जीने के स्वरूप की संकल्पना संभव हो पाती है; जीने का एक ऐसा तरीका जो कि मानव एवं पर्यावरण के अनुकूल हो और जिसमें स्थायित्व भी हो। इस प्रक्रिया में जीने के ढंग को समझने और शिक्षा-व्यवस्था, स्वास्थ्य-व्यवस्था, प्रौद्योगिकी एवं उत्पादन व्यवस्था तथा वाणिज्यिक एवं प्रबंधन व्यावस्था का मुल्यांकन करने के लिए उचित मापदण्ड निर्धारित करना संभव होगा। जैसा कि हमने समग्र मानवीय लक्ष्य के बारे में, एवं इनकी पूर्ति हेतु मानवीय व्यवस्था और सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के विषय क्षेत्र की अध्याय-9 में चर्चा की थी इसे आप चित्र. 14-1. में देख सकते हैं।

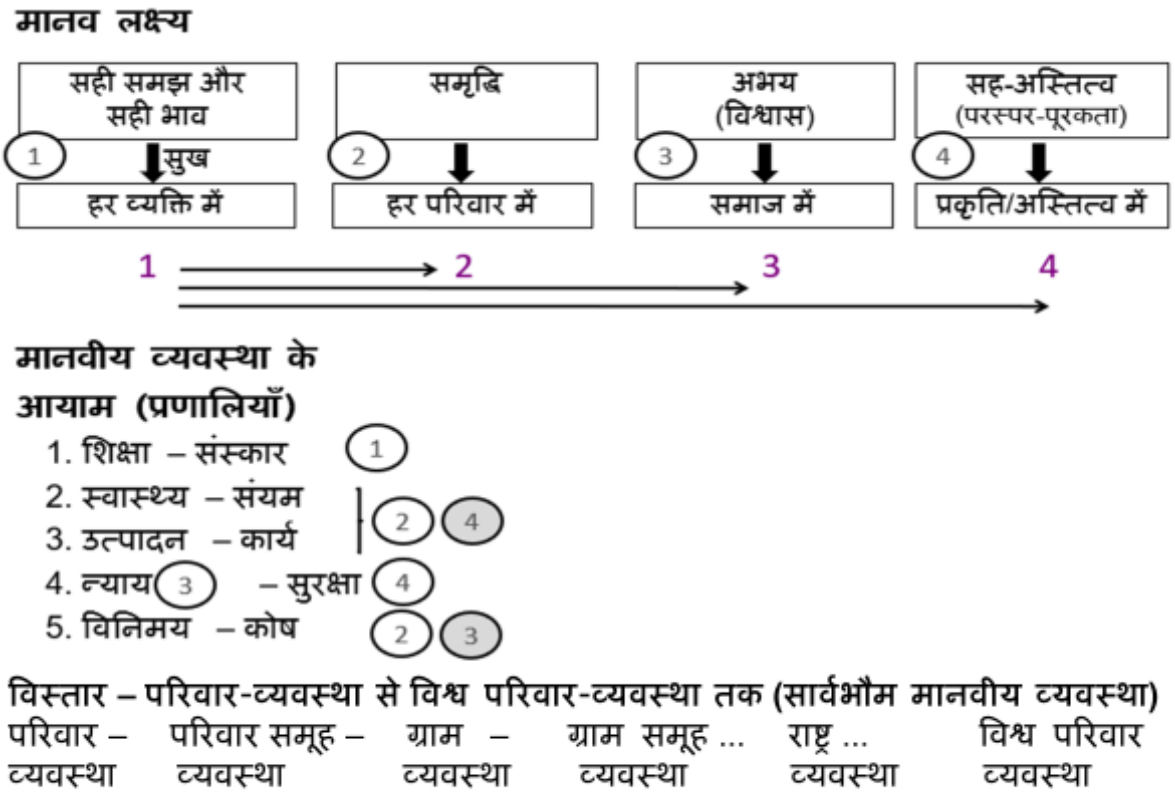

चित्र. 14-1. सार्वभौम मानवीय व्यवस्था

इस तरह का समग्र लक्ष्य हर काल में मानव के सर्व-शुभ के अर्थ में होता है। यह सभी मानवों पर एक जैसा लागू होता है। उपरोक्त वर्णित समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के लिये मानव को योग्य बनाने में सहयोग करना ही वास्तविक रूप में मानव का सर्व-शुभ है।

अब इस आधार पर हम किसी भी संस्था या व्यवस्था के लक्ष्य की पहचान कर सकते हैं चाहे यह उत्पादन, न्याय, विनिमय किसी के लिये भी कार्य कर रहा हो। हम इसका मूल्यांकन भी कर सकते हैं कि इस व्यवस्था के द्वारा निर्धारित किया गया लक्ष्य मानवीय है या नहीं, इसकी दृष्टि समग्र है या संकीर्ण है। एक बार जब हम समग्र मानवीय लक्ष्य की पहचान कर पाते हैं तो यह हमारी समस्त नीतियों एवं कार्यक्रमों के मूल्यांकन के लिये नीति-निर्धारक तत्व बन जाता है। इन लक्ष्यों के संदर्भ में हम प्रचलित शिक्षा प्रणाली, न्याय प्रणाली, प्रशासन-शासन प्रणाली, व्यापार प्रणाली और इस प्रकार की अन्य प्रणालियों में व्याप्त कमियों का भी मूल्यांकन कर सकते हैं।

स्वयं में यह जाँचना महत्वपूर्ण होगा कि वर्तमान में हम समग्र मानवीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कार्य कर रहे हैं जो हमें सहज-स्वीकार्य हैं या हम इससे दूर जा रहे हैं।

सार्वभौम मानवीय व्यवस्था और समग्र विकास के लिये दृष्टि

(The Vision for Holistic Development and Universal Human Order)

समग्र मानवीय लक्ष्य और मानव के सर्व-शुभ का ठीक-ठीक अवलोकन एवं जीने के सभी स्तरों पर सह-अस्तित्व का अनुभव, जीने की प्रचलित मान्यताओं को बदलने में और जीने के व्यवहारिक तरीकों को दृष्टिगत करने और इनको विकसित करने में हमें सक्षम बनाता है। इस प्रकार से सही समझ हमें समग्रता में जीने की ओर अग्रसर होने के लिये तैयार करती है, जिसमें स्थायित्व होता है साथ ही साथ ऐसा जीना मानव की मूल चाहना की पूर्ति के अर्थ में भी होता है। 'समग्रता में जीना', जीने का एक ऐसा ढंग है जो स्वयं और दूसरों की तृप्ति के साथ-साथ वातावरण के अनुकूल भी होता है। मानव अपनी प्रतिभा और रचनात्मकता से एवं उपलब्ध ज्ञान और कौशल के उपयोग से ऐसे जीने के तरीके को साकार कर सकता है।

इस दिशा में अनुसंधान एवं शोध शुरू करने की तत्काल आवश्यकता है क्योंकि हमारे वर्तमान जीने का ढंग अत्यधिक समस्याओं से युक्त एवं अस्थिर सिद्ध हो रहा है। मानवीय शिक्षा व्यवस्था, समग्र स्वास्थ्य व्यवस्था, उपयुक्त प्रौद्योगिकी एवं उत्पादन व्यवस्था, प्रबंधन मॉडल एवं एक ऐसी उपयुक्त अर्थव्यवस्था जो कि चक्रीय हो एवं प्रकृति के अनुरूप भी हो। इन सबको विकसित करने के लिये सही समझ एक उपयुक्त आधार प्रदान करती है। साथ ही, सही समझ की मदद से मानवीय संविधान की संकल्पना करना भी संभव हो पायेगा जो कि एक सामंजस्यपूर्ण विश्व परिवार, अखण्ड-समाज एवं सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के विकास को सुगम बनायेगा। इस तरह से सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के सभी आयामों को उपरोक्त उद्देश्यों के अनुरूप विस्तारित करने का एवं विकसित करने का प्रयास किया जा सकता है जैसा कि अध्याय-9 में चर्चा की गई है।

व्यवस्था की समझ के आधार पर हमें, अखण्ड-समाज एवं सार्वभौम मानवीय व्यवस्था का अभिप्राय स्पष्ट हो पाता है। सार्वभौम मानवीय व्यवस्था में निम्नलिखित बिन्दु सम्मिलित होंगे:

1. समाज में एक समग्र-व्यवस्था के लिये मानव की गतिविधियों में ये सभी आयाम जैसे शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम, उत्पादन-कार्य, न्याय-सुरक्षा और विनिमय-कोष सम्मिलित होंगे।
2. मानवीय व्यवस्था की मूलइकाई- परिवार एवं परिवार समूहों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध उत्तरोत्तर परिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक निम्नलिखित रुप में बनेगा:

परिवार व्यवस्था ⇒ परिवार समूह व्यवस्था ⇒ ग्राम व्यवस्था ⇒ ग्राम समूह व्यवस्था ⇒ शहर व्यवस्था.....⇒ राष्ट्र व्यवस्था.....⇒ विश्व परिवार व्यवस्था

इन आयामों जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, उत्पादन, विनिमय या न्याय व्यवस्था इत्यादि में प्रत्येक के लिए हम एक मानवीय व्यवस्था की संकल्पना कर सकते हैं और एक सौहार्दपूर्ण तरीके से कार्य करने की व्यवस्था सुनिश्चित करने का प्रयास कर सकते हैं।

इसके विपरीत, व्यक्ति वर्तमान समय में राष्ट्र एवं राज्यों के क्रियाकलापों का अध्ययन कर सकता है एवं सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के प्रकाश में उन्हें मूल्यांकित भी कर सकता है। हम वर्तमान प्रणालियों में जो सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के अर्थ में हैं, उन्हें पहचान कर बनाये रख सकते हैं और जो इस व्यवस्था के विपरीत हैं उन्हें दूर कर सकते हैं।

मानवीय परंपरा के लिये मार्ग प्रशस्त करना

(Paving Way towards the Humanistic Tradition)

(मानवीय शिक्षा मानवीय आचरण - मानवीय संविधान - सार्वभौम मानवीय व्यवस्था -)

समग्रता में जीने के लिये अग्रसर होने का प्राथमिक कदम मानव में सहीसमझ विकसित करना-, तदनुसार जीने की प्रतिबद्धता को विकसित करना और फिर वास्तविक जीने में सहीसमझ को - सुनिश्चित करने हेतु अपेक्षित कौशल एवं ज्ञान के लिये आवश्यक प्रणाली विकसित करना है। इस प्रकार मानवीय शिक्षा व्यवस्था की ओर अग्रसर होने के लिये वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बदलाव करने की आवश्यकता है और इसके लिये सहीसमझ हमें आवश्यक दृष्टि प्रदान करती है। जैसा- कि हमने पहले भी चर्चा की है कि शिक्षा से हमारा आशय मानव में जीने के सभी स्तरों में व्यवस्था की समझ को सुनिश्चित करना हैयह ; मात्र पठन, लेखन, गणना इत्यादि नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो मानव के जीने के समस्त स्तरों पर उसकी सहज स्वीकृति के अनुरूप जीने की योग्यता विकसित करती है। इससे हमारी वर्तमान दृष्टि में बहुत बड़े परिवर्तन की संभावना बन सकती है।

मानवीय शिक्षा

(Humanistic Education)

मानव के जीने में सभी स्तरों पर (स्वयं से लेकर सम्पूर्ण अस्तित्व तक) सही समझ का होना एवं इसके अनुसार जीने की योग्यता को विकसित करना ही मानवीय-शिक्षा का मूल तत्व है। प्रत्येक व्यक्ति सही समझ के प्रकाश में जीने के सभी पहलुओं का मूल्यांकन करने के योग्य हो पाता है। मानवीय-शिक्षा से मूल्य एवं कौशल परस्पर-पूरक हो पाते हैं, ताकि मानव अपनी शारीरिक आवश्यकताओं को सही ढंग से पहचान सके और इन आवश्यकताओं को पर्यावरण एवं मानव के अनुकूल विधियों से पूरा करने की उपयुक्त तकनीकों और उत्पादन प्रणालियों को अपना सके।

मानवीय-शिक्षा से स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को सुगम बनाया जा सकेगा; जिससे मानव में स्वयं(मैं) का निरंतर विकास हो सकेगा। मानवीय-शिक्षा, मानव की प्राकृतिक धारणा को समझने के साथ-साथ मानवीयता पूर्ण आचरण में सार्वभौमिकता एवं निश्चितता को भी साकार करने में सक्षम होगी। इससे यह आश्वस्ति भी बनेगी कि केवल मूल्य आधारित जीना ही सभी के निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने की चाहना को सुनिश्चित कर सकता है।

मानवीय शिक्षा के अनेक मॉडल (Model) हो सकते हैं। इस तरह की शिक्षा के विभिन्न मॉडलों को विकसित करने के लिये ठोस अनुसंधान एवं प्रयास करने होंगे, ताकि सही समझ सुनिश्चित की जा सके और कौशल में योग्यता के साथ-साथ मानवीय मूल्यों को जागृत भी किया जा सके। इसका आरम्भ बच्चे के लिये घर में उपलब्ध वातावरण से मिलने वाली शिक्षा से ही हो जायेगा। बच्चा घर के नजदीकी संबंधों में जीते हुये बहुत कुछ सीखता और समझता है। ऐसा प्रत्येक मॉडल घर में बच्चे के विकास के लिये उचित प्रकार का वातावरण प्रस्तुत करेगा। जब बच्चे को और अधिक कौशल और ज्ञान की आवश्यकता होगी तो उसके लिये, समाज की ओर से सामूहिक प्रयासों के रूप में तैयार की गई औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता होगी। जहाँ आज हम खड़े हैं, वहाँ मूल्य शिक्षा मानव में मानवीय मूल्यों को कौशल-शिक्षा के पूरक के रूप में प्रदान की जा रही है। लेकिन मानवीय परंपरा में संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को ही मूल्य आधारित होने की आवश्यकता है। यह हमारे समझने के लिये एक महत्वपूर्ण अभ्यास है कि एक बच्चे को बचपन से ही सही समझ की शिक्षा कैसे प्रदान की जाये और मूल्य आधारित विधि से भाषा, पढ़ने-लिखने, गणित, और अन्य कौशलों को जो कि उच्च शिक्षा का भाग हैं, कैसे सिखाया जायेगा।

मानवीय संविधान

(Humanistic Constitution)

सही-समझ, मानवीय संविधान के लिये भी आधार प्रदान करती है, जो कि अखण्ड मानवीय समाज और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था के विकास के लिये आवश्यक है। समग्र मानवीय लक्ष्य की दिशा में कार्य करना एवं नैतिक मानवीय आचरण के लिये योग्यता विकसित करना मानवीय संविधान का प्रमुख नीति-निर्देशक सिद्धांत होगा; यह सामाजिक न्याय के भी अनुकूल होगा।

हमारा वर्तमान समाज अनेक जातियों, उप-जातियों, धर्म एवं राष्ट्रों में विभक्त है जिनके आपसी उद्देश्य एवं स्वार्थ एक दूसरे के विरोध में दिखते हैं। तदनुसार, मानवीय प्रयास का एक प्रमुख हिस्सा इन संघर्षों और विरोधों को रोकने में प्रयोग किया जाता है; विडंबना यह है कि मानव विनाशकारी प्रयोजनों के लिये खुद को तैयार करने में अपनी ऊर्जा एवं संसाधनों का एक बड़ा हिस्सा खर्च कर रहा है। हम समझ सकते हैं कि जब मानव के सर्व-शुभ के मापदंड सार्वभौमिक होंगे अर्थात् सभी के लिये एक तरह से लागू होंगे तो मानव द्वारा समान लक्ष्य की पूर्ति के लिये किये गये प्रयास एक दूसरे के विरोधी क्यों होंगे।

ऐसा केवल 'सुख एवं सम्पूर्ण वास्तविकता' के बारे में गलत मान्यताओं के कारण ही हो रहा है। वर्तमान समय में हमारे अधिकांश प्रयास मानव के व्यवहार में परिवर्तन के लिये लालच एवं दंडात्मक विधियाँ अपनाने से ही संबंधित हैं, जो कि दीर्घकाल में सफल नहीं हो पाते हैं। इन सभी समस्याओं को केवल मानव में मानवीय चेतना का विकास करके अर्थात् मानव में सही समझ सुनिश्चित करके ही ठीक किया जा सकता है और किसी विधि से स्थायी रूप में कर पाना संभव नहीं दिखता। इस प्रकार सही समझ परिवार से लेकर वैश्विक स्तर तक मानवीय संघर्षों का संतोषजनक एवं सहज समाधान प्रदान करती है।

मानवीय संविधान के मॉडल को स्वयं में देखने की प्रक्रिया एक वैचारिक अभ्यास के रूप में हो सकती है। जैसे सही समझ के प्रकाश में:

- मौलिक अधिकार और कर्तव्य क्या होंगे?
- समाज में न्याय और सुरक्षा सुनिश्चित करने के तरीके क्या होंगे?
- सार्वभौम मानवीय व्यवस्था के लिये कार्य करने का प्रारूप क्या होगा?
- लोग, विश्व-परिवार से किस प्रकार जुड़ेंगे?
- समाज में व्यवस्था बनाये रखने में लोगों का प्रतिनिधित्व कैसे सुनिश्चित होगा?

ये वे मुद्दे हैं जिन्हें हल करना है।

आरंभिक रूप में परिवार, समाज-व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई होगी। परिवार से विश्व परिवार तक की यात्रा में संविधान, समाज-व्यवस्था के लिये आधार प्रदान करेगा। वर्तमान परिदृश्य में समग्रता में जीने के संदर्भ में ये सभी प्रासंगिक मुद्दे हैं।

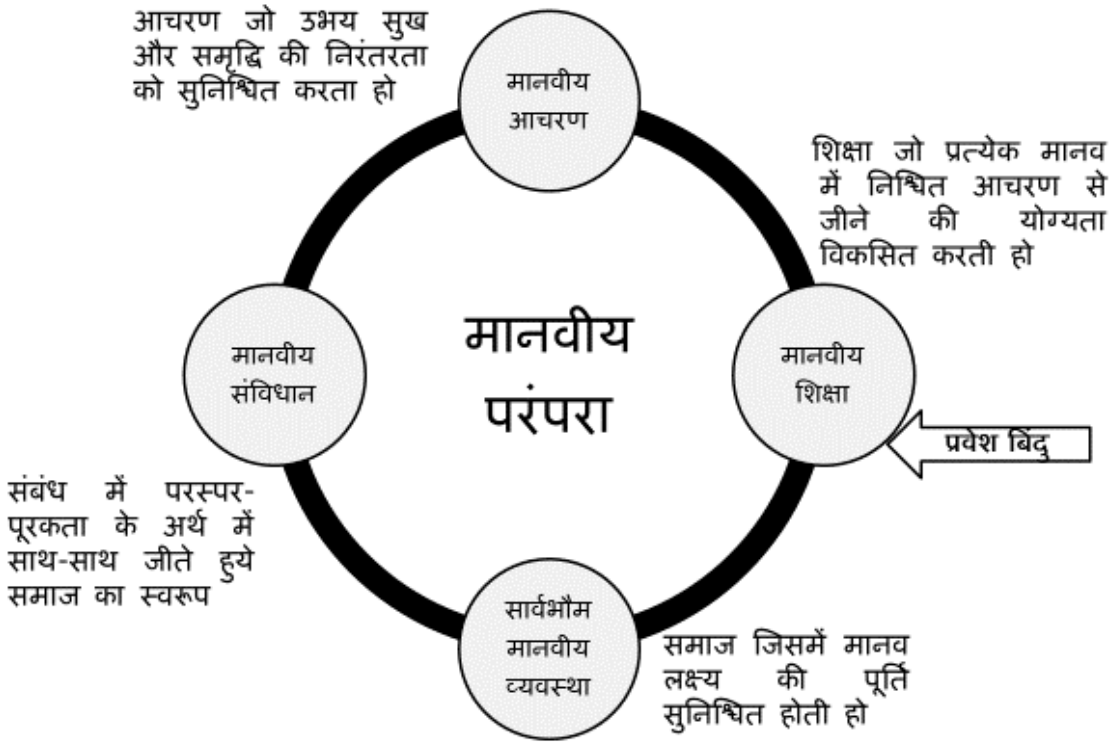

चित्र. 14-2. सार्वभौम मानवीय व्यवस्था का डायनामिक्स

जैसा कि चित्र. 14-2. में उल्लेख किया गया है कि किसी भी समाज में शिक्षा ही है, जो व्यक्तिगत स्तर पर मानव में दृष्टि और संस्कार विकसित करती है। यह व्यक्तिगत संस्कार, परिवार और समाज में सामूहिक संस्कार या संस्कृति को पुष्ट करती है। यह संस्कृति ही सभ्यता के रूप में अभिव्यक्त होती है, जो कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिगत संस्कारों को और मजबूत बनाती है। यदि हम सामंजस्यपूर्ण, शांतिपूर्ण सभ्यता चाहते हैं, तो इसकी शुरुआत व्यक्ति से ही करनी होगी। इस संक्रमण के लिये मानवीय शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक होगा।

मानवीय शिक्षा ही मानवीय आचरण, मानवीय संविधान और सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की ओर अग्रसरित होती है और फिर सार्वभौम मानवीय व्यवस्था अगली पीढ़ी के लिये मानवीय शिक्षा को सुनिश्चित करती है। कुछ इसी तरह से परम्परा दिखेगी यदि यह मानवीय परंपरा के रूप में है। यदि इन सभी को सुनिश्चित करना है तो हमें कहाँ से प्रारंभ करना होगा?

वास्तव में मानवीय शिक्षा ही उपरोक्त चक्र में प्रवेश का बिंदु है। यही कारण है कि हम सभी दिशाओं से आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयास कर रहे हैं, कि हम शिक्षा में प्रशासक के रूप में, नीति निर्माताओं के रूप में और शिक्षाविद् के रूप में इस संक्रमण को सुनिश्चित करने के लिये जिम्मेदार हैं। इस संक्रमण को प्रारम्भ करने के लिये हमें पूर्ण रूप में क्रियाशील होना होगा।

यदि एक बार यह चक्र चलना शुरू हो जायेगा, तो यह निरंतर मानवीय परंपरा को सुनिश्चित करता रहेगा जो कि पीढ़ी दर पीढ़ी प्रत्येक मानव के लिये मानवीय लक्ष्य की पूर्ति करने में सक्षम होगा। मानवीय समाज की चाहना भी यही है।

अंततः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सही समझ के प्रकाश में विकसित उपयुक्त प्रणालियों और नीतियों की मदद से सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की ओर बढ़ पाना संभव है। इस प्रकार का विकास सर्व मानव के लिये सहज स्वीकार्य होगा। मानव के अलावा सम्पूर्ण अस्तित्व पहले से व्यवस्था में है ही। हम सभी को अस्तित्व की इस व्यवस्था को समझना है और इस व्यवस्था में अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करना है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

(Salient Points)

- *सही समझ हमारे समग्र मानवीय लक्ष्य को पहचानने में सहायक है, जो कि सही समझ एवं सही-भाव (सुख), समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता) के रूप में है।*
- *सही समझ मानव के जीने के सभी आयामों में जीने की समग्र दृष्टि को प्रस्तुत करती है।*
- *व्यवस्था की समझ से हमें मानवीय शिक्षा एवं मानवीय संविधान का आधार एवं ढांचा (framework) मिलता है।*
- *सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था की संकल्पना समाज के विभिन्न आयामों एवं व्यवस्था के विभिन्न चरणों (पारिवार व्यवस्था से विश्व परिवार व्यवस्था तक) के रूप में की जा सकती है।*

अपनी समझ को जाँचे

(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न:

(Questions for Self-Evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. 'समग्र विकास' एवं 'सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था' से आप क्या समझते हैं?
2. विकास के प्रचलित मॉडल एवं दिये गये समग्र विकास के मॉडल में अंतर और समानताओं को स्पष्ट करने के लिये एक तालिका बनायें।

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास

(Part 2: Practice Exercises for Self Exploration)

(विषय वस्तु के साथ जुड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत स्तर पर या सामूहिक रूप में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. सावधानी पूर्वक विश्लेषण करके, ऐसी कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं की पहचान करें, जिन्हें शामिल किये जाने पर हमारी वर्तमान शिक्षा और अधिक मानवीय हो सके।
2. मानवीय संविधान के लिये कुछ महत्वपूर्ण नीति-निर्देशक सिद्धांतों की संकल्पना कीजिये। इनमें से कितने सिद्धांत हमारे वर्तमान संविधान में पहले से ही सम्मिलित हैं?
3. कुछ लोग ऐसा मानते हैं, कि समग्र विकास के बारे में बात करना ऐसा है जैसे समय चक्र को वापस घुमाना। यह हमारी प्रगति को बहुत धीमा करेगा। इस बारे में आपके क्या विचार है तर्क सहित व्याख्या कीजिये।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास

(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर बहुत से सुखद क्षण आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके आपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग (Clay Modeling), मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग (blog), सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

"हाल के दिनों में, मानवीयता के लिये समर्पित व्यक्तियों द्वारा कई ग्रामीण विकास परियोजनाओं को पूरा किया गया है, जिनकी व्यापक प्रशंसा हुई है। इनमें से किन्हीं दो के बारे में इंटरनेट से या अन्य स्रोतों से पर्याप्त जानकारी प्राप्त करके टिप्पणी करें कि ये समग्र विकास की अवधारणा के कितना करीब हैं"।

अनुभाग-4: आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-15

समग्र प्रौद्योगिकियों, उत्पादन व्यवस्थाओं एवं प्रबंधन मॉडलों के लिये दृष्टि

Vision for Holistic Technologies Management Models

पुनरावृत्ति

(Recap)

पिछले अध्याय में हमने चर्चा की है कि सही-समझ, समग्र विकास के लिये दृष्टि प्रस्तुत करती है। यह सार्वभौम मानवीय व्यवस्था के लिये भी दृष्टि प्रदान करती है अर्थात् जीने का ऐसा मॉडल प्रस्तुत करता है, जो कि मानव-अनुकूल और प्रकृति-अनुकूल हो; ऐसा मॉडल जो वैश्विक स्तर पर सौहार्द्र पूर्ण मानवीय समाज के विकास के अनुकूल हो; ऐसा मॉडल जो सुख और समृद्धि को निरंतरता में सुनिश्चित करने वाला हो एवं सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था के लिये मार्ग प्रशस्त करता हो। नि:संदेह, इस प्रकार के मॉडल के लिये उपयुक्त प्रौद्योगिकी, उत्पादन व्यवस्था एवं प्रबंधन के विकास की आवश्यकता होगी, जो कि समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति में सहायक हो।

इस अध्याय में हम समग्रात्मक प्रौद्योगिकीयों, उत्पादन व्यवस्थाओं एवं प्रबंधन मॉडलों से संबंधित मुद्दों पर चर्चा करेंगे जो कि हमें इस तरह की दृष्टि प्रदान करने में सहायक होंगे। जैसा कि पहले कहा ही जा चुका है कि व्यावसायिक नैतिकता को सहज बनाने के लिये समग्रता की दृष्टि प्राथमिक है। वास्तव में व्यवसायियों से अपेक्षा यह की जाती है कि वे सर्व-शुभ के अर्थ में प्रौद्योगिकीयों एवं व्यवस्थाओं को विकसित कर इन्हें लोकप्रिय बनायें।

परिचय

(Introduction)

वर्तमान में नवाचार (innovative) प्रौद्योगिकी, व्यवस्था, उपकरण, तकनीक और प्रबंधन मॉडल जो समाज की उन्नति के लिये हो उनका विकास करने एवं उनको अंगीकरण करने के लिये विशेष उत्साह है। वर्तमान में प्रयास इस बात को लेकर किये जा रहे हैं कि इन्हें अधिक से अधिक उपभोगकर्ता के अनुकूल, आरामदायक, तेज एवं सस्ता बनाया जा सके। चूँकि अधिकांश प्रयास भौतिकवादी वैश्विक दृष्टि के प्रभाव के तहत ही किये जा रहे हैं, अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन प्रयासों में समग्र वैश्विक दृष्टि का अभाव है। परिणामस्वरूप इन नवाचारों का उपयोग एवं दुरुपयोग दोनों ही दीर्घकालिक रूप से मानव के सर्व-शुभ के विरोध में हैं।

इसलिये सही समझ के आधार पर समग्र मानवीय लक्ष्य केंद्रित प्रौद्योगिकीयों एवं व्यवस्थाओं को विकसित करने की सख्त आवश्यकता है ताकि इन्हें सर्व-शुभ के अर्थ में बनाया जा सके।

जिस प्रकार प्राकृतिक व्यवस्थायें और प्रक्रियायें समग्रता में हैं, समयबद्ध हैं और स्व-व्यवस्थित हैं; इनके सूक्ष्म परीक्षण से इसी तरह की व्यवस्थाओं एवं यंत्रों के विकास को सुगम बनाया जा सकता है। नि:संदेह, मानव के पास इन प्रक्रियाओं को मानवीय उपयोग हेतु अधिक अनुकूल बनाने के अर्थ में मानव की रचनात्मक अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर हैं।

इनमें से कुछ पारंपरिक अभ्यासों को सावधानी पूर्वक सीखने और इनका विवेचन पूर्ण विधि से परीक्षण करने की आवश्यकता है, ताकि हम इनके सामर्थ्य और विशेषताओं को पहचान कर इन्हें वर्तमान

प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्था के विकास हेतु अपना सकें जिससे हमारी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति सही तरीके से हो सके। इसके पश्चात ही हम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के वर्तमान ज्ञान को पारंपरिक अभ्यासों के साथ सही ढंग से प्रयोग कर पायेंगे। सर्वप्रथम, हम उपयुक्त प्रौद्योगिकी, उत्पादन व्यवस्था एवं प्रबंधन मॉडलों को सही समझ के प्रकाश में मूल्यांकित और विकसित करने के लिये प्रमुख मापदंडों की पहचान करने का प्रयत्न करेंगे। इसके पश्चात इस प्रकार की व्यवस्थाओं को कुछ विशिष्ट उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे।

मूल्यांकन के लिये समग्रात्मक मापदंड

(A Holistic Criteria for Evaluation)

आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्थायें प्रचलित वैश्विक-दृष्टि के प्रभाव में पहचानी गई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मानव द्वारा किये गये अविष्कार हैं। तदनुसार, इसी वैश्विक-दृष्टि से इनकी रचना और इसी दृष्टि पर आधारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिये इनका प्रयोग किया गया है। समग्र विकास की दृष्टि से प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्था के विकास को सुगम बनाने के लिये, यह आवश्यक होगा कि इन सभी प्रचलित आधुनिक प्रौद्योगिकियों एवं व्यवस्थाओं के विकल्प खोजे जायें और समग्र मानवीय लक्ष्य के अर्थ में इनके मूल्यांकन हेतु आवश्यक मापदंड भी बनाये जाये।

सामान्यतः समग्र विकास के अर्थ में आवश्यक प्रौद्योगिकियों एवं व्यवस्थाओं के निर्देशन हेतु तीन प्रमुख मापदंड हैं जो निम्नलिखित हैं –

(a) मानव की उचित आवश्यकताओं और सही जीवनशैली के अनुकूल
(b) पर्यावरण-अनुकूल, चक्रीय एवं परस्पर-संवर्धन को सुनिश्चित करने वाला
(c) मानव-अनुकूल अर्थात् सुरक्षित, किफायती और मानवीय क्षमताओं को बढ़ाने वाला

इसके अतिरिक्त, स्थानीय संसाधनों और विशेषज्ञताओं के बेहतर उपयोग के साथ-साथ आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने वाला भी हो। जहाँ तक संभव हो, उपलब्ध प्राकृतिक प्रक्रियाओं और व्यवस्थाओं के अनुरूप हो या कम से कम प्राथमिकता पर तो हो ही।

उपरोक्त विचार विमर्श के बाद, प्रौद्योगिकी, उत्पादन व्यवस्था एवं प्रबंधन मॉडलों के मूल्याँकन के लिये निम्नलिखित कुछ विशिष्ट मापदंड है:

प्रौद्योगिकी के लिये मापदंड

(Criteria for Technologies)

समग्र विकास के लिये उपरोक्त वर्णित सामान्य मापदंड को निम्नलिखित प्रकार से विशेषीकृत किया जा सकता है:

- वास्तविक मानवीय आवश्यकताओं के अनुकूल
- प्राकृतिक चक्र और व्यवस्थाओं के अनुरूप
- मानव-शरीर, पशु, पौधे एवं अन्य प्राकृतिक पदार्थों का सुविधाजनक एवं प्रभावी उपयोग

- सुरक्षा, प्रयोग में अनुकूलता एवं स्वास्थ्य-अनुकूल
- प्राथमिक रूप से स्थानीय संसाधनों एवं विशेषज्ञता से निर्मित
- अक्षय ऊर्जा स्रोतों(renewable energy resources) के उपयोग को बढ़ावा देने वाला
- कम कीमत एवं दक्षतापूर्ण ऊर्जा (energy efficient) का प्रयोग
- मानव में परस्पर सहयोग को प्रोत्साहन
- विकेंद्रीकरण को बढ़ावा
- उत्पादों में चक्रीयता, स्थायित्व और दीर्घकालिक उपयोग

उत्पादन व्यवस्थाओं के लिये मापदंड

(Criteria for Production Systems)

उत्पादन व्यवस्था के संदर्भ में निम्नलिखित प्रमुख प्रश्नों उत्तर पर विचार करने की आवश्यकता है:

- क्या उत्पादन करना है?
- कैसे उत्पादन करना है?
- किसके लिये उत्पादन करना है?
- कितना उत्पादन करना है?

किसी भी समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इन उत्पादन-व्यवस्थाओं को उपलब्ध स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों एवं विशेषज्ञताओं के आधार पर निर्धारित किया जायेगा। नि:संदेह, आवश्यकताओं को समग्र मानवीय लक्ष्य की अनुरूपता में ही पहचाना जायेगा।

उपयुक्त उत्पादन-व्यवस्था के निर्धारण हेतु विशिष्ट मापदंडों के रूप में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है:

- मानव, पशु, वायु, सौर, पृथ्वी, जल, पेड़-पौधे एवं खनिज पदार्थ इत्यादि के साथ-साथ स्थानीय स्रोतों एवं विशेषज्ञताओं का बेहतर और दक्षतापूर्ण उपयोग
- आर्थिक व्यवहार्यता और स्थायित्व
- स्थानीय उपभोग की प्राथमिकता
- स्थानीय उपलब्धता और उपभोग के अनुरूप उत्पादन पैटर्न का निर्धारण
- समाज के लिये अर्थपूर्ण रोजगार सृजन हेतु विकेंद्रीकृत व्यवस्था
- केंद्रीकृत विधि से बड़े पैमाने पर उत्पादन के बजाय अधिक से अधिक लोगों को उत्पादन प्रक्रिया से जुड़ने की सुगमता
- व्यक्तिगत रचनात्मकता और निपुणता की भावना को बढ़ावा
- मानव और पर्यावरण अनुकूल प्रौद्योगिकियों का उपयोग
- उत्पादन में वांछित गुणवत्ता की सुनिश्चितता
- सुरक्षा और स्वास्थ्य अनुकूल उत्पादन व्यवस्था
- रीसाइक्लिंग, संरक्षण और पुन: उपयोग की संभावना

प्रबंधन मॉडलों के लिये मापदंड

(Criteria for Management Models)

प्राथमिक प्रबंधन-मॉडल, संबंध आधारित होना आवश्यक है जो सहयोगात्मक हों, परस्पर-पूरकता एवं न्याय सुनिश्चित करने वाले हों न कि शासन और शोषण। प्रबंधन-व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है वह उत्पादन-व्यवस्था में लगे हुये लोगों एवं अपने उपभोक्ताओं की संतुष्टि पर भी ध्यान दे न सिर्फ लाभ कमाने पर। मानवीय प्रबंधन मॉडल हेतु निम्नलिखित मापदंडों को सम्मिलित किया जा सकता है:

- एक व्यवस्थित परिवार की तरह कार्यरत प्रबंधन इकाई
- सहयोगात्मक, उत्साहवर्धक और परस्पर-पूरक प्रबंधन इकाई
- मानव-श्रम एवं कौशल का उचित मूल्यांकन
- नियोक्ता-कर्मचारी एवं उपभोक्ताओं की संतुष्टि न कि अधिकाधिक लाभ
- उत्तरदायित्वों को साझा करने और भागीदारी को सुनिश्चित करने वाला प्रबंधन मॉडल
- प्रबंधन मॉडल में सम्मिलित लोगों में निरंतर मूल्यों का संवर्धन
- व्यक्तिगत योग्यता और परस्पर-पूरकता का एकीकरण

प्रचलित व्यवस्थाओं का विवेचनात्मक मूल्यांकन

(A Critical Appraisal of the Prevailing Systems)

भौतिकवादी वैश्विक परिदृश्य के प्रभाव में विकसित किये गये वर्तमान मॉडलों की विशेषताओं का परीक्षण करना आवश्यक है। जैसा कि पहले कहा गया है कि मानव के द्वारा किये गये समस्त अविष्कार एवं बनायी गयी संरचनायें और इनके उपयोग वर्तमान वैश्विक परिदृश्य से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। अतः वर्तमान समय की प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्थायें भी इसी प्रचलित वैश्विक परिदृश्य के अनुकूल बनी हैं। इस प्रकार से हम यह देख सकते हैं कि वर्तमान व्यवस्थायें जिनमें सर्वश्रेष्ठ अत्याधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी और विशिष्ट प्रौद्योगिकी का प्रयोग किया गया है फिर भी वे वातावरण-अनुकूलता एवं मानव-अनुकूलता को सुनिश्चित करने में विफल हैं।

वर्तमान व्यवस्थाओं के सबसे चिंताजनक लक्षण इनका बड़े पैमाने पर गैर-नवीकरणीय (non - renewable) ऊर्जा स्रोत एवं पदार्थों पर निर्भरता है जिसके कारण ये अस्थायी और सामयिक हैं। आधुनिक विकास मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन पर आश्रित है जिसका अप्रत्याशित रूप से बहुत ही तेज गति से प्रयोग हो रहा है। इससे एक तरफ तो संसाधनों के अभाव का संकट उत्पन्न होता है और दूसरी तरफ वातावरण में प्रदूषण एवं ग्लोबल वार्मिंग जैसी समस्यायें भी सामने आती हैं। इसका कारण यह है कि संसाधनों के प्रकृति में बनने की दर और मानव के द्वारा उनके उपयोग किये जाने की दर में कोई तालमेल नहीं है। आधुनिक प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्थाओं का एक अन्य अवांछनीय गुण यह है कि ये केंद्रीकृत मॉडल के रूप में हैं जो उत्पादन प्रक्रिया में निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों को, अत्यधिक यातायात एवं मानव, पशु और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के स्थान पर मानव निर्मित उपकरणों और यंत्रों के प्रयोग को बढ़ावा देते हैं। जिसके कारण प्रदूषण की समस्या होती है एवं मानव, पशु इत्यादि इस तरह के उत्पादन व्यवस्थाओं से धीरे-धीरे बाहर होने लग जाते हैं अथवा अनुपयोगी लगने लगते हैं।

ये व्यवस्थायें बहुत ही जटिल, आकार में बड़ी, महंगी एवं अत्यधिक ऊर्जाव्ययी होती जा रही हैं। बढ़ता हुआ मशीनीकरण एक तरफ तो अत्यधिक उत्पादन को प्रोत्साहित करता है और दूसरी तरफ भागीदारी में लगे हुये लोगों की संख्या कम से कम रखे जाने को बढ़ावा देता है। इस प्रकार की व्यवस्थायें शोषण आधारित और कर्मचारी एवं प्रबंधन वर्ग के बीच अंतर्विरोध की स्थिति को उत्पन्न करने वाली होती हैं। उच्च कोटि की विशेषतायें, अधिक गुणवत्ता, मानकीकरण, इत्यादि होने के बावजूद ये प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्थायें सामान्यतः मानव के सर्व-शुभ के अर्थ में सिद्ध नहीं हो पा रही हैं। यह भी

निंदनीय है कि इन समस्त प्रौद्योगिकियों की उन्नति के बावजूद, हम सब एक ऐसी स्थिति में पहुँच गये हैं जहाँ हमारा सम्पूर्ण ग्रह एक गंभीर खतरे में दिखाई देता है।

प्राकृतिक व्यवस्थाओं एवं पारंपरिक अभ्यासों से सीख

(Learning from the Systems in Nature and Traditional Practices)

यदि हम वास्तव में समग्र-व्यवस्था को समझना चाहते हैं तो, हमें प्राकृतिक-व्यवस्था एवं पारंपरिक-अभ्यासों से बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी में नवीनतम विकास और इनके विस्तृत उपयोग के साथ मानव में एक ऐसी मान्यता भी बनी है कि प्रकृति मूल रूप से शोषण के लिये ही है अतः प्रकृति को मानव अपने भोग के लिये नियंत्रित एवं शोषित कर सकता है। यह भी मान्यता है कि प्रकृति में व्यवस्थायें अभी अपने प्राथमिक चरण में हैं और इन्हें मानव निर्मित व्यवस्थाओं के द्वारा विकसित किये जाने की आवश्यकता है। वर्तमान में विकास को ऐसे ही देखा जा रहा है। इसी प्रकार से यह मान्यता भी है कि पारंपरिक-अभ्यास अब पुराने हो चुके हैं इन्हें अस्वीकार कर देना ठीक है। प्राकृतिक एवं पारंपरिक अभ्यासों को इस प्रकार की मान्यताओं की दृष्टि से देखने के कारण पिछले कुछ समय में मानवता की बहुत हानि हुई है। यह बिल्कुल सही समय है कि हम इन मान्यताओं का विवेचनापूर्ण ढंग से स्वयं में निरीक्षण करें और इन्हें सही समझ के प्रकाश में ठीक भी करें।

वास्तव में, प्रकृति केवल हमारी पोषक ही नहीं है बल्कि हमारे सीखने और समझने का स्थान भी है। मानव इस आत्मनिर्भर प्रकृति का अभिन्न अंग है इसलिये इसके साथ व्यवस्था में जीने के लिये इसकी कार्य प्रणाली और व्यवस्था को समझना अनिवार्य है। वस्तुतः प्रकृति की विभिन्न प्रक्रिया एवं उसमें उपलब्ध स्व-नियंत्रण, नियम और सिद्धांत; जिनके अनुसार यह प्रकृति स्व-व्यवस्थित रूप में चलती है; इन्हीं की खोज, मानव अपने गहन शोध एवं अनुसंधानों में करता रहा है। इसी प्रकार से प्रकृति की व्यवस्थाओं एवं प्राकृतिक चक्रों को समझकर, इनका अनुसरण मानव निर्मित तकनीकी एवं व्यवस्थाओं में करना आवश्यक है। केवल तभी हम समग्रता में जीने को सही से देख पायेंगे और इसके अनुसार अपने जीने को विकसित कर पायेंगे।

जहाँ तक पारंपरिक-अभ्यासों का प्रश्न है, यह सत्य है कि बढ़ती हुई सूचनायें, कौशल और परिवर्तित होती मानव की आवश्यकताओं के साथ यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि इन प्रौद्योगिकी और व्यवस्था में मानव के आवश्यकता की दृष्टि से बदलाव भी किया जाये। अतः इसको सुनिश्चित करने के लिये इनके गुण एवं दोषों का विवेचनात्मक मूल्यांकन करना आवश्यक है। उन विशेषताओं को भी पहचानना महत्वपूर्ण है जिन्होंने पारंपरिक-अभ्यासों को दीर्घकाल से ही मानवता की सेवा करने के योग्य बनाया है। अनेक पारंपरिक-अभ्यासों में वातावरण की अनुकूलता एवं मानव की अनुकूलता जैसी विशेषतायें पहले से ही हैं इन्हें पहचानना और बनाये रखना हमारे लिये बहुत महत्वपूर्ण है। तभी हम अपनी वर्तमान सूचनाओं एवं कौशलों का उपयोग वर्तमान व्यवस्थाओं को अधिक प्रभावी, दक्षतापूर्ण एवं अपनी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के अनुकूल बना पायेंगे।

उदाहरण के लिये हमें इन पारंपरिक-अभ्यासों से बहुत कुछ सीखना है, जैसे वातावरण-अनुकूल कृषि प्रौद्योगिकी, जल-प्रबंधन, वातावरण-संरक्षण, औषधियों का निर्माण, संरक्षण तकनीकें, कला से जुड़े अभ्यास इत्यादि। इसका आशय पीछे लौटना या वापस जाना नहीं है, बल्कि हमें इस बहुमूल्य ज्ञान और कौशल के भंडार को स्वयं के लिये उपयोगी बनाना है, ताकि हम सही दिशा में आगे बढ़ने के लिये अच्छी तरह से तैयार हो पायें।

अनेक पारंपरिक प्रौद्योगिकियाँ और व्यवस्थायें जिनमें उपरोक्त अति-आवश्यक विशेषतायें हैं और जो आधुनिक प्रौद्योगिकियों और व्यवस्थाओं के द्वारा प्रतिस्थापित होने से पहले शताब्दियों तक मानव के लिये उपयोगी बने रहे हैं, इनका विवरणात्मक और विवेचनापूर्ण मूल्यांकन करना आवश्यक है जिससे

वर्तमान समय में इनकी महत्वपूर्ण विशेषताओं को पहचाना जा सके और इनके अनुसार वर्तमान आधुनिक प्रौद्योगिकियों और व्यवस्थाओं में आवश्यक संशोधन किये जा सकें।

पारंपरिक प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्थाओं के कुछ विशिष्ट उदाहरण

(Typical Examples from Traditional Technologies and Systems)

इस संदर्भ में निम्नलिखित उदाहरण महत्वपूर्ण हैं –

- जल-संचयन एवं भण्डारण के लिये तालाब एवं अन्य इकाइयों का उपयोग
- पारंपरिक कृषि विधियाँ
- स्वास्थ्य के देखभाल की पारंपरिक एवं स्थानीय विधियाँ
- खाद्यान्न भण्डारण एवं भोजन के संरक्षण की विधियाँ
- योग, आयुर्वेद, प्राकृतिक-चिकित्सा आधारित स्वास्थ्य व्यवस्थायें
- धार्मिक संस्थाओं में प्रचलित लंगर (भोजन को साझा करना) व्यवस्था
- परम्परागत परिवार आधारित ग्रामीण उद्योग
- जजमानी व्यवस्था – संबंध आधारित ग्राम आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित करती ग्रामीण व्यवस्था
- ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग संबंधित अभ्यास

इस प्रकार के अन्य और उदाहरण हैं जो इस दिशा में हमारी दृष्टि के विकास में सहायक हो सकते हैं।

इस स्थान पर सही समझ के प्रकाश में आपका स्वयं में प्राकृतिक एवं पारंपरिक प्रौद्योगिकी और व्यवस्थाओं से संबंधित मान्यतायों का विश्लेषण और मूल्याँकन करना महत्वपूर्ण होगा।

समग्र सामुदायिक मॉडल को समझना– सभी स्तरों पर व्यवस्था के लिये कार्य करना

(Visualizing a Holistic Community Model – Working Towards Harmony at All Levels)

अभी तक ग्रहण की गई सही समझ के सन्दर्भ में यह देखना शिक्षाप्रद होगा कि किसी विशिष्ट समुदाय में समग्रता में जीने के अभ्यास, पहले से ही हो रहे हैं क्या? हमारे आस-पास ऐसे उदाहरण हो सकते हैं, जिनमें लोग पहले से ही समग्रता में एक–दूसरे के साथ एवं प्रकृति के साथ व्यवस्था में जी रहें हों। इनमें से अधिकांशतः अपनी सामुदायिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये आत्मनिर्भर मॉडल के रूप में हो सकते हैं और ऐसी व्यवस्थाओं को बनाये हुये हो सकते जो समग्र मानवीय लक्ष्य के अनुरूप हो। इस प्रकार से समग्रता में जीने का प्रयास कर रहे समुदायों द्वारा संचालित व्यवस्थाओं को विस्तृत रूप में देखना समग्र विकास के मॉडल हेतु, अनुसन्धान और शोध के लिये एक महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट होगा। मानवीय व्यवस्था के इस मॉडल को हम ग्राम स्तर पर 'ग्राम स्वराज्य मॉडल' कह सकते हैं।

यह उचित समय है कि हम सही समझ के प्रकाश में इस मानवीय व्यवस्था के मॉडल को ग्रामीण स्तर (ग्राम स्वराज्य) पर सार्थक बनाने का कार्य प्रारम्भ करें। तकनीकी एवं आर्थिक दृष्टि से, इन संभावनाओं का अध्ययन और इस प्रकार के अन्य मॉडलों की रचना हम समग्र मानवीय लक्ष्य को अपने लक्ष्य के रूप में ध्यान में रखते हुये कर सकते हैं। चूंकि इस तरह के मॉडलों में जहाँ तक संभव हो सके स्थानीय स्रोतों एवं स्थानीय लोगों की विशेषज्ञता को शामिल करना आवश्यक है, अतः इन मॉडलों में संसाधनों के संवर्धन पर ध्यानाकर्षण कराना भी आवश्यक होगा। इन मॉडलों में जैव-विविधता, पशुपालन, जल-संचयन, जैविक ईंधन के प्रभावी उपयोग; सौर, जल एवं पवन-ऊर्जा के स्रोत इत्यादि के उपयोगों को बढ़ावा देने को प्रोत्साहित करना सम्मिलित है। इसमें कृषि, कारीगरी और कृषि-उद्योग की गतिविधियों हेतु सतर्कता पूर्वक योजना बनाये जाने की आवश्यकता है। स्थानीय संसाधनों की उपलब्धता एवं आवश्यकताओं के अनुसार ही इस योजना को सम्पादित करने की आवश्यकता है। इस प्रकार की दृष्टि उपयुक्त प्रौद्योगिकियों, उत्पादन व्यवस्थाओं और इनकी गतिविधियों को सौहार्दपूर्ण ढंग से व्यवस्थित करने की प्रणालियों को पहचानने में और इनको विकसित करने में हमारी सहायता करती है। यह पाठकों पर छोड़ दिया गया है कि वे इस रचनात्मक अभ्यास को स्वयं करें और ग्रामीण स्तर (ग्राम स्वराज्य) पर मानवीय व्यवस्था को विकसित करने की वृहद दृष्टि से देखने का प्रयत्न करें। कई समुदायों और समूहों ने इस दिशा में गंभीरता पूर्वक कार्य करना शुरू कर दिया है, परिणामस्वरूप अनेक प्रौद्योगिकियाँ एवं व्यवस्थायें उभर कर सामने आ रही हैं किन्तु समग्रता में जीने की इन वैकल्पिक विधियों को पूरी तरह से साकार करना अभी भी शेष है।

वर्तमान में वातावरण एवं इससे जुड़ी अन्य समस्याओं का प्रमुख कारण जीवाश्म ईंधन और अन्य ऊर्जा स्रोतों का बड़े पैमाने पर होने वाला उपयोग है, जो कि अक्षय नहीं है। सम्पूर्ण विश्व में वैकल्पिक अक्षय प्रौद्योगिकियों (alternative renewable technologies) एवं संबंधित उत्पादन व्यवस्थाओं की ओर लोगों की रुचि बढ़ रही है। किन्तु समग्रता में जीने को पूरी तरह से संभव बनाने के लिये यह महत्वपूर्ण है कि सही समझ के प्रकाश में मानव अपनी आवश्यकताओं का ठीक-ठीक मूल्यांकन करे एवं उपयुक्त जीवन शैली को अपनाये। साथ ही साथ हमारे लिये यह भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि हम विभिन्न वैकल्पिक अक्षय प्रौद्योगिकियों और वातावरण के अनुकूल प्रौद्योगिकियों एवं व्यवस्थाओं पर आधारित केस-स्टडीज के द्वारा इस प्रकार के विचारों से परिचित भी हुआ जाये। वर्तमान समय में सही समझ के अनुरूप समग्रात्मक प्रौद्योगिकियों एवं व्यवस्थाओं के विकास हेतु अनुसंधान एवं प्रयासों की तरफ बढ़ने की प्यास मानव में दिखाई दे रही है। इससे संबंधित कुछ केस-स्टडीज के प्रमुख विषयों को नीचे दिया गया है:

केस-स्टडीज के विषय

(Topics for Case Studies)

समग्रात्मक प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्थाओं हेतु वर्तमान में किये जा रहे प्रयासों से परिचित होने के लिये निम्नलिखित बिंदुओं पर केस-स्टडी करना लाभप्रद होगा:

1. अक्षय एवं विकेंद्रीकृत ऊर्जा प्रौद्योगिकी
   (a) जैविक ईंधन आधारित ऊर्जा संरक्षण प्रौद्योगिकी जैसे कि -
      - सभी प्रकार के नमीयुक्त जैविक ईंधन जैसे कि पशु एवं मानव से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थ, रसोई से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थ, नमीयुक्त कृषि से प्राप्त अपशिष्ट पदार्थ, मल प्रवाह अपशिष्ट पदार्थ इत्यादि के अवायवीय पाचन (anaerobic digestion) से उत्पन्न जैव-गैस के उत्पादन एवं उपयोग हेतु व्यवस्था बनाना। इस जैव-रूपांतरण से स्लरी (slurry) के रूप में मूल्यवान जैविक खाद का उत्पादन भी होता है।

इसलिये स्लरी हैंडलिंग सिस्टम (slurry handling systems) का अध्ययन भी प्रासंगिक है।

- सभी प्रकार के शुष्क जैविक ईंधन जैसे कि लकड़ी, चारकोल, चावल की भूसी, लकड़ी की छीलन, सूखे कृषि अपशिष्ट पदार्थ इत्यादि के आंशिक दहन से उत्पन्न होने वाली प्रोड्यूसर गैस (producer gas) के उत्पादन और उपयोग हेतु व्यवस्था बनाना।
- विभिन्न वनस्पति तेलों के एस्टरीकरण (esterification) से प्राप्त बायोडीजल का विकेंद्रीकृत उत्पादन के लिये व्यवस्था बनाना।
- इंजनों के लिये कृषि अपशिष्ट पदार्थों से प्राप्त तरल ईंधन जैसे कि एथेनॉल का उत्पादन करने की विकेंद्रीकृत व्यवस्था बनाना।
- सभी प्रकार के खुले बायोमास से एक कॉम्पैक्ट/धुआं रहित ठोस ईंधन प्राप्त करने के लिये ब्रिकेटिंग(Briquetting) संबंधित टेक्नोलॉजी अपनाना।
- ऊर्जा दक्ष एवं धुआँ रहित चूल्हे बनाने की प्रौद्योगिकी।

(b) मानव और पशुओं की शारीरिक शक्ति के दक्षतापूर्ण उपयोग को सुविधाजनक बनाने के लिये यंत्र और औजार बनाना जैसे कि:

- मानव चालित कृषि औजार एवं घरेलू यंत्र बनाना।
- पशु (बैल) चालित सिंचाई पंप, ट्रैक्टर एवं अन्य कृषि उपकरण बनाना।
- पशु चालित गाड़ियों की उन्नत रचना करना।

(C) सौर ऊर्जा का दक्षतापूर्ण उपयोग के लिये यन्त्र निर्माण जैसे कि:

- सोलर वाटर हीटर, सोलर कुकर, सोलर ड्रायर इत्यादि
- सोलर फोटो वॉल्टिक (Solar Photo-voltaic) प्रणाली
- विकेन्द्रीकृत सौर विद्युत उत्पादन एवं प्रशीतन (refrigeration) प्रणाली

(d) जल पम्पिंग एवं विद्युत उत्पादन हेतु विकेन्द्रीकृत पवन ऊर्जा यन्त्र निर्माण

(e) लघु जल विद्युत-यांत्रिक शक्ति उत्पादन प्रणाली जिसमें जल ऊर्जा जैसे झरनों एवं ऊँचाई से गिरते हुये जल; बाँधों, नदियों एवं धाराओं में बहते हुये जल का उपयोग विकेंद्रीकृत ढंग से किया जा सके।

2. जल संरक्षण एवं जल भंडारण हेतु वर्षा जल का दक्षतापूर्ण उपयोग एवं पर्यावरण संरक्षण व्यवस्था।
3. हरित-भवन निर्माण सामग्री एवं ऊर्जा संरक्षण हेतु प्रौद्योगिकी एवं आर्किटेक्चर का प्रोत्साहन जैसे कि:
    - संपीड़ित/स्थिर (compressed/stabilized) मिट्टी-ब्लॉक और टेराकोटा टाइल (terracotta tiles) से भवन निर्माण।
    - बाँस आधारित आर्किटेक्चर
    - लॉरी बेकर (Laurie Baker's) सिद्धांत से कम कीमत की ईंटों का निर्माण इत्यादि
    - सौर आर्किटेक्चर आधारित ऊर्जा संरक्षण विधि से भवनों का गर्म या ठंडा वातावरण।
4. कार्बनिक/ प्राकृतिक कृषि तकनीकों को विकसित करना जिसमें वर्मी कंपोस्टिंग, जैविक खाद और जैविक कीटनाशकों के उत्पादन की प्रौद्योगिकी सम्मिलित हो।

5. छोटे स्तर पर विकेंद्रीकृत मल निस्तारण एवं अपशिष्ट जल पुनर्नवीकरण (waste water recycling) हेतु वातावरण-स्वच्छता तकनीकें
6. कम कीमत एवं ऊर्जा दक्ष प्रौद्योगिकियों का छोटे स्तर की प्रणालियों के लिये प्रयोग जैसे कि:
    - खाद्य प्रसंस्करण प्रणाली
    - औषधीय, वन एवं पशु आधारित (पंचगव्य) उत्पादों के लिये उत्पादन प्रणाली
    - बहु-उद्देशीय हस्त-कला और कारीगरी संबंधित कार्यों को सुविधाजनक बनाने के लिये प्रणाली
7. मानवीय संगठनात्मक/प्रबंधन मॉडल (Humanistic organizational/management models)
   अनेक तकनीकी संस्थाओं, कृषि विश्वविद्यालयों, सरकारी एजेंसियों एवं बड़ी संख्या में एनजीओ और सामाजिक, धार्मिक संगठनों तथा कुछ उत्साहित व्यक्तियों के द्वारा बड़े पैमाने पर उपरोक्त प्रौद्योगिकियों एवं प्रणालियों पर आधारित कार्य किये जा रहे हैं। उपरोक्त केस-स्टडीज के अध्ययन के संदर्भ में इनमें से कुछ से परिचित होना काफी लाभदायक होगा।

मुख्य बिंदु

(Salient Points)

- *मूल्यांकन का समग्र मापदंड मूल रूप से समग्र मानवीय लक्ष्य के सही अवलोकन से सुनिश्चित हो पाता है।*
- *समग्र व्यवस्था के लिये प्रमुख दिशा निर्देश निम्नलिखित हैं:*
    a. *उपयुक्त जीवन शैली अपनाने एवं अपनी वास्तविक आवश्यकताओं को पूरा करने की योग्यता होना*
    b. *मानव एवं वातावरण के अनुकूल होना*
    c. *स्थानीय उपभोग को प्राथमिकता देते हुये स्थानीय संसाधनों, स्थानीय विशेषज्ञताओं एवं मानव-शक्ति का प्रभावी उपयोग होना*
    d. *विकेंद्रीकृत संरचनाओं का होना*
- *अधिकतर प्रचलित व्यवस्थायें, वर्तमान वैश्विक-दृष्टि के प्रभाव में ही मानव द्वारा किये गये अनुसन्धान हैं। अतः आधुनिकतम विज्ञान और प्रौद्योगिकी का उपयोग करने के उपरांत भी ये निरंतरता में मानव के सर्व-शुभ के अर्थ में नहीं हो पाते हैं।*
- *प्रकृति की व्यवस्थाओं का एवं समग्रता में जीने से संबंधित परंपरागत अभ्यासों का सावधानी पूर्वक किया गया अध्ययन एवं मूल्यांकन वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप उपयुक्त व्यवस्थाओं के विकास में सहायक हो सकता है।*
- *हाल-फिलहाल में विकसित विभिन्न अक्षय और वातावरण-अनुकूल प्रौद्योगिकी एवं व्यवस्थाओं की स्थिति का और विशेषताओं की केस-स्टडी, इस दिशा में हो रहे शोध प्रयासों के लिये प्रेरणादायक रहेंगे ।*

अपनी समझ को जाँचें

(Test your Understanding)

अनुभाग-1: स्व-मूल्यांकन के लिये प्रश्न:

(Questions for Self Evaluation)

(क्या हमने इस अध्याय में दिये गये मूल प्रस्तावों को समझ लिया है?)

1. 'समग्रात्मक प्रौद्योगिकी' एवं 'समग्रात्मक प्रबंधन व्यवस्था' से आप क्या समझते हैं?
2. पिछले खण्ड (खण्ड-2) से ग्रहण की गई सही समझ किस प्रकार से प्रौद्योगिकीयों, उत्पादन व्यवस्थाओं एवं प्रबंधन मॉडलों के मूल्यांकन में समग्र मापदंड की पहचान करने में सहायक है ?
3. 'मूल्य', संरचना एवं प्रौद्योगिकी दोनों के उपयोग को प्रभावित करते हैं', क्या आप इससे सहमत हैं? अपनी प्रतिक्रिया के लिये तर्क भी दीजिये।
4. आपके विचार में किस तरह की गलती के कारण आधुनिक प्रौद्योगिकी के अंतर्गत निर्मित अनेकों यन्त्र, वातावरण एवं मानव अनुकूलता के विरोध में हो गये हैं? जबकि ये सभी विकास कार्य मानव के भले के लिये ही किये गये हैं, जिसमें मानव ने अपने कौशल का उच्च दक्षता के साथ प्रयोग भी किया है।

अनुभाग-2: स्व-अन्वेषण के लिये अभ्यास कार्य

(Practice Exercises for Self Exploration)

(विषय वस्तु को अपने जीने से जोड़ने के लिये कम से कम विचारों के स्तर पर ही सही, इन अभ्यासों को व्यक्तिगत तौर पर या समूह में विशेषकर परिवार एवं मित्रों के साथ अवश्य करें।)

1. वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये आपके अनुसार, समग्र प्रौद्योगिकी और उत्पादन प्रणालियों में बदलाव के लिये एक व्यावहारिक रणनीति क्या होगी? इस प्रक्रिया में प्रमुख चुनौतियों की पहचान करें और सुझाव दें कि इन्हें कैसे दूर किया जा सकता है?
2. 'ग्लोबल वार्मिंग' की समस्या को हल करने की दिशा में विश्वव्यापी प्रयास चल रहे हैं। क्या इन प्रयासों में सही समझ का अभाव है? यदि हाँ तो इनको स्पष्ट करें एवं इनको कैसे दूर करेंगे इस पर अपने विचार भी प्रस्तुत करें।

अनुभाग-3: प्रोजेक्ट एवं मॉडलिंग अभ्यास

(Project and Modelling Exercises)

इस अभ्यास 'अपनी समझ को जाँचे' के इस अनुभाग को इस पुस्तक को पूरा पढ़ने और सभी प्रस्तावों का स्वयं में अध्ययन करने के बाद आप दोबारा देखना चाहेंगे। इससे आपके अंदर कुछ (बहुत से) आहा!! वाले पल आयेंगे जब आपको यह संकेत मिलेगा कि आपने प्रस्ताव को समझ लिया है। जो भी आपने सीखा है, वह आपके द्वारा विभिन्न रचनात्मक विधियों (creative ways) से व्यक्त हो सकता हैं, जो अन्य व्यक्तियों को भी अच्छा लगेगा। यह भाग आपके अपनी समझ के अनुरूप रचनात्मक अभिव्यक्ति (Creative expressions) करने के लिये दिया गया है। नि:संदेह आप इसे समूह में भी कर

सकते हैं। यह रचनात्मक अभिव्यक्ति, स्केच, ड्राइंग, पेंटिंग, क्लेमॉडलिंग, मूर्तिकला, संगीत, कविता, चित्र परियोजना, सर्वे प्रश्नावली, ब्लॉग, सोशल मीडिया इत्यादि के माध्यम से भी हो सकती है। यह आपके अपने जीवन की कहानी है- और यह मायने रखती है। ऊपर कुछ संकेत दिये गये हैं लेकिन आप अपने तरीके से अपने आप को व्यक्त करने के लिये स्वतंत्र महसूस करें!

1. समग्रात्मक तकनीकों और प्रणालियों की सूची में से जो परंपरागत रूप में उपयोग होती रही हैं, लेकिन अब विलुप्त हो चुकी हैं, वर्तमान में उनकी क्षमता और प्रासंगिकता को समझने के लिये एक केस-स्टडी करें।
2. अध्याय के अंत में, विभिन्न तकनीकी क्षेत्रों में केस स्टडी करने के लिये कई विषयों का सुझाव दिया गया है। आप अपनी पसंद के अनुसार उनमें से किन्ही दो का चुनाव केस स्टडी करने के लिये कर सकते हैं।

अनुभाग-4: आपके प्रश्न

(Your Question)

अपने प्रश्नों एवं शंकाओं को अपनी नोटबुक में लिखिये। यदि अब तक के दिये गये प्रस्तावों का स्व-अन्वेषण से आपका कोई पुराना प्रश्न उत्तरित हुआ है तो कृपया उन प्रश्नों पर उत्तर मिल गया ऐसा निशान लगा लें। हम बाकी बचे हुये अनुत्तरित प्रश्नों को स्वयं के अध्ययन की प्रक्रिया में आगे आपसे चर्चा करना चाहेंगे।

अध्याय-16
सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की ओर यात्रा- आगे का मार्ग
Journey towards Universal Human Order – The Road Ahead

पुनरावृत्ति

(Recap)

अब हम इस पाठ्यक्रम के समापन की तरफ बढ़ रहे हैं। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपको सही समझ पर ध्यान दिलाना एवं इस सही समझ से आपके जीवन और व्यवसाय पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर आपके ध्यान को उन्मुख करना है। इस समापन के अवसर पर इस पाठ्यक्रम के मुख्य केन्द्रीय संदेश को दोहराना लाभप्रद होगा एवं उन सभी चरणों की संकल्पना पर चर्चा करना भी आवश्यक होगा जो हम सभी को परस्पर-पूरक विधि से इस वर्तमान परिस्थिति से सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की ओर ले जा सके।

मुख्य केन्द्रीय संदेश

(The Core Message)

इस पाठ्यक्रम के मुख्य केन्द्रीय संदेश को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

मानव की मूल चाहना निरंतर सुख और समृद्धि की पूर्ति के लिये 'स्वयं(मैं)' और शेष-प्रकृति के साथ-साथ निरंतर सुख और समृद्धि के बारे में सही समझ प्राप्त करना आवश्यक है। जिसके लिये अस्तित्व के सभी स्तरों पर प्रकृति सहज व्यवस्था को समझना आवश्यक है। वास्तव में, समग्र अस्तित्व सह-अस्तित्व के रूप में है। मानव का मुख्य लक्ष्य इस व्यवस्था और सह-अस्तित्व को समझना एवं इसके अनुरूप जीना है और स्वयं में तृप्त होना है। वर्तमान वैश्विक-परिदृश्य में इसे पूरी तरह से नजरंदाज किया गया हैं, जिसके कारण सुख और समृद्धि को मुख्य रूप से इंद्रिय भोग, अधिक से अधिक धन एवं सुविधा संग्रह के रूप में मान लिया गया है। ये गलत मान्यतायें जीवन के सभी क्षेत्रों में गंभीर समस्यायें पैदा कर रही हैं एवं ये निरंतर सुख और समृद्धि के अर्थ में भी नहीं हैं। इसलिये वैश्विक-परिदृश्य में व्याप्त मूल समस्या के स्थायी समाधान हेतु मानव को 'पशु-चेतना' से 'मानव-चेतना' में संक्रमण (परिमार्जन) अनिवार्य है। सही समझ के आधार पर संबंधों में मूल्यों को सही ढंग से समझा जा सकता है और इनका निर्वाह भी किया जा सकता है। साथ ही, सही समझ के प्रकाश में अपनी जीवनशैली को उपयुक्त प्रकार से व्यवस्थित किया जा सकता है एवं भौतिक-सुविधा की आवश्यकता को भी ठीक तरह से पहचाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त सही समझ के आधार पर मानव के आवश्यक सुविधाओं की पूर्ति के लिये मानव एवं पर्यावरण अनुकूल उत्पादन विधियों को अपनाया जा सकता है। मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु और स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के माध्यम से मानव-चेतना की ओर इस संक्रमण को व्यापक स्तर पर सुगमता से संभव बनाया जा सकता है।

इस पाठ्यक्रम में, सही समझ के ढांचे के रूप में एक प्रारम्भिक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। सही समझ को आत्मसात करने के लिये स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया शुरू कराने का प्रयास भी किया गया है। वास्तव

में, मानव-चेतना में जीना प्रत्येक मानव को सहज स्वीकार्य है एवं यही मानव का समग्र विकास भी है। इसके लिये निम्नलिखित को सुनिश्चित करना होगा:

व्यक्तिगत संक्रमण – पशु-चेतना से मानव-चेतना में एवं

सामाजिक संक्रमण – अमानवीय-समाज से मानवीय-समाज में

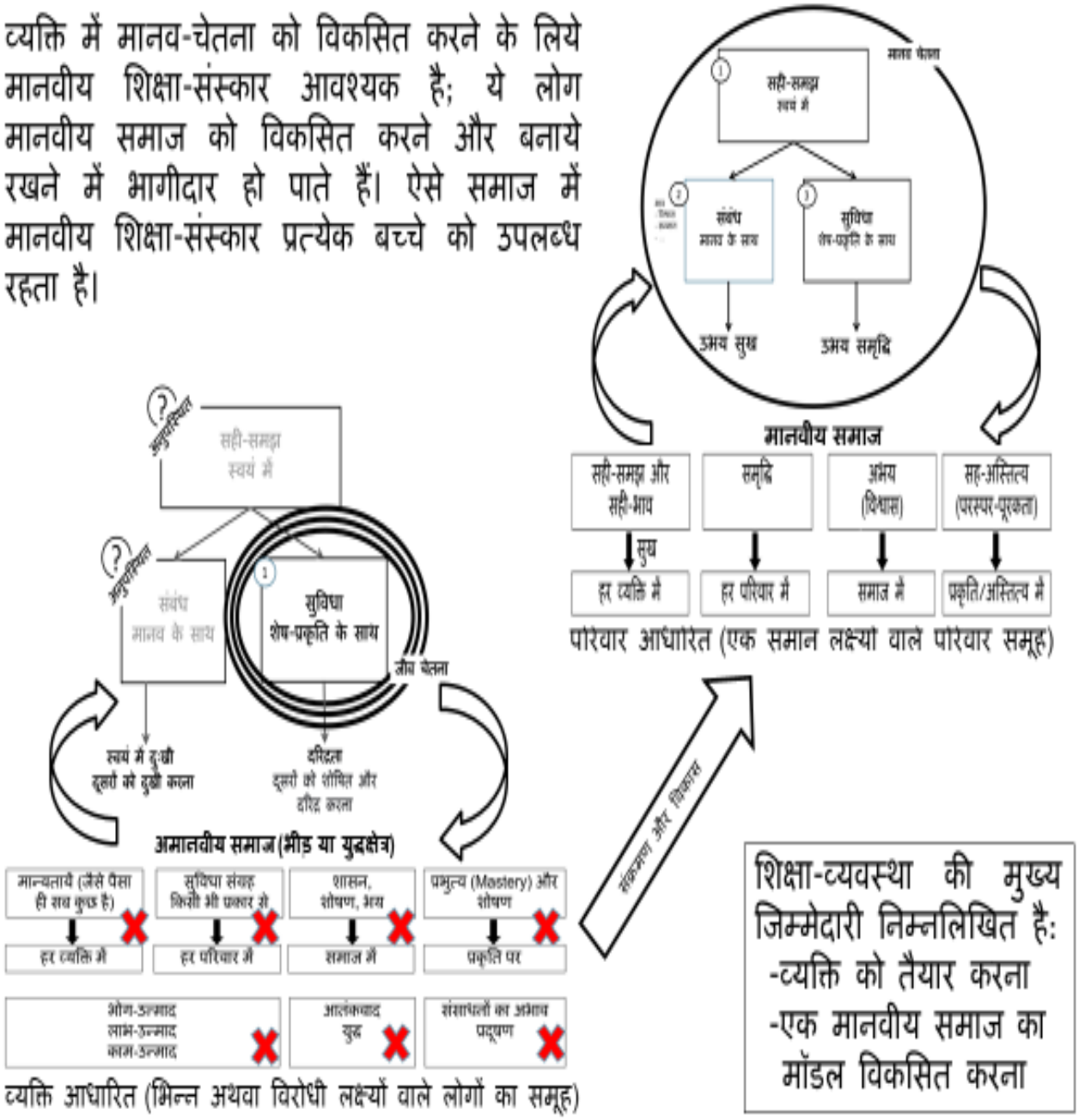

चित्र. 16-1. मानव-चेतना एवं सार्वभौम मानवीय व्यवस्था की ओर संक्रमण

सार्वभौम आधार पर मूल्य और नैतिक मानवीय आचरण का संक्षिप्त विवरण एवं अपने जीने में और व्यवसाय में इसके आशयों को समझने के पश्चात, आइये अब हम इस पाठ्यक्रम को समाप्त करने से पहले मानव के समग्रता में जीने की इस यात्रा के कुछ मुख्य चरणों को देखते हैं।

स्व-अन्वेषण की आवश्यकता का अवलोकन

(Appreciating the Need for Self-exploration)

इस यात्रा को शुरू करने का सबसे महत्वपूर्ण कदम स्व-अन्वेषण की आवश्यकता स्पष्ट होना एवं इसकी प्रक्रिया के बारे में आश्वस्त होना है। इस बात की गंभीरता पूर्वक विश्लेषण करने की आवश्यकता है कि 'वर्तमान में हम क्या हैं ' और 'वास्तव में हमें क्या होना सहज स्वीकार्य है'; हमें अपने पूर्वाग्रहों एवं मान्यताओं को जाँचने की आवश्यकता है एवं यह भी समझने की आवश्यकता है कि वर्तमान में हमारे निर्णयों को प्रेरित करने वाले स्रोत क्या-क्या हैं और इनके क्या परिणाम होते हैं। इन सब का विधिवत मूल्यांकन करना आवश्यक है ताकि हम मानव-चेतना की ओर संक्रमण को संभव बनाने के लिये आवश्यक प्रयासों को उचित प्राथमिकता दे सकें।

जब स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया से हम 'वास्तव में जैसा होना मुझे सहज स्वीकार्य है' और 'वर्तमान में जैसा मैं हूँ' के बीच एक बड़े अंतर को देख पाते हैं, तब हमें स्वयं के लिये सुधारात्मक कदम उठाने की तात्कालिक आवश्यकता स्पष्ट हो पाती है। इसलिये स्व-अन्वेषण के लिये तैयार होना, समग्रता में जीने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। आजकल ज्यादातर जैसा हम अपने आस-पास के लोगों के जीने के तौर तरीके और इसके तात्कालिक रूप से आने वाले आकर्षक परिणामों को देखते हैं; इसी सबसे हम प्रेरित होते रहते हैं। जो कुछ भी हमारी इंद्रियों को अधिक सुखद लगता है हम उसी का अनुसरण करने लगते हैं। इस प्रकार, चारों ओर बढ़ती समस्याओं के उपरांत भी, हम अपने मजबूत पूर्वाग्रहों और इंद्रिय आकर्षण के कारण एक सही विकल्प की तलाश करने के लिये ठीक से प्रेरित नहीं हो पाते हैं। वास्तव में, हम अपने वर्तमान वैश्विक-दृष्टिकोण का बचाव करने के लिये सतही तर्क खोजते रहते हैं और उसी तरह की यथास्थिति में बने रहते हैं। हमारी वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था में सही समझ का प्रयास प्राथमिक रूप से होता हुआ नहीं दिखाई देता। अत: स्व-अन्वेषण की आवश्यकता एवं प्रक्रिया को समझना मानव-चेतना की ओर संक्रमण का पहला कदम है।

विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था को समझने में सहयोग

(Facilitating the Understanding of Harmony at Various Levels)

स्व-अन्वेषण की आवश्यकता और प्रक्रिया की स्पष्टता के बाद, अब सही समझ की इस प्रक्रिया को सुविधाजनक बनाने हेतु आवश्यक साधनों एवं विधियों की खोज करना अगला महत्वपूर्ण कदम होगा। इसका आशय यह हुआ कि हमें समझने की प्रक्रिया के लिये एक उचित रूपरेखा तैयार करने की आवश्यकता है, जिससे हम जीने के विभिन्न स्तरों अर्थात् स्वयं से लेकर संपूर्ण प्रकृति/ अस्तित्व की व्यवस्था को ठीक तरह से समझ सकें, जैसा कि इस पाठ्यक्रम में चर्चा की गयी है। समग्रता को समझने और जीने की इस यात्रा को सहज बनाने के लिये उपयुक्त विषय वस्तु एवं प्रक्रिया के साथ-साथ मूल्य शिक्षा के आवश्यक संसाधनों को उपलब्ध कराना अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिससे कि मानव-चेतना की दिशा में संक्रमण की इस प्रक्रिया को प्रभावी बनाया जा सके।

मूल्य शिक्षा की विषय-वस्तु को हमारी समस्त शिक्षा अर्थात् औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों तरह की शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने की आवश्यकता है। मूल्य शिक्षा के लिये तर्कसंगत और सार्वभौम रूप से स्वीकार्य विषय-वस्तु और प्रक्रिया को विकसित करने, अन्य आवश्यक संसाधनों को तैयार करने एवं इस शिक्षा को प्रभावी ढंग से लागू करने हेतु शिक्षकों को भी बड़े पैमाने पर प्रशिक्षण देने की आवश्यकता होगी।

मूल्य शिक्षा को उचित प्राथमिकता देना, वर्तमान पाठ्यक्रम में इस विषय वस्तु को उचित स्थान दिलाना, आवश्यक संसाधनों को उपलब्ध कराना इत्यादि इसे सफलतापूर्वक लागू करने के लिये आवश्यक होंगे। मूल्य शिक्षा का यह आधारभूत पाठ्यक्रम इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। वास्तव में, सही समझ के प्रकाश में, अंततः हमें मूल्य शिक्षा और इसके स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया के माध्यम से वर्तमान पूरी शिक्षा-पद्धति को ही एक नया रूप देने की आवश्यकता होगी। तदनुसार सही समझ के प्रकाश में शिक्षा की सभी विधाओं में उचित बदलाव करना आवश्यक होगा। मूल्य शिक्षा के आने वाले परिणामों का मूल्यांकन नैतिकता में होने वाले विकास के आधार पर करना होगा अर्थात् परिणामों का मूल्याँकन अस्तित्व के विभिन्न स्तरों पर व्यवस्था में सह-अस्तित्व की स्पष्टता और तदनुसार हमारे दैनिक जीने की योग्यता में विकास के आधार पर करना होगा। वास्तविक रूप में, मानव में नैतिकता का यह विकास, उसके समग्रता में जीने की दिशा में अर्थात् निरंतर सुख और समृद्धि पूर्वक जीने की दिशा में अग्रणी होगा इसलिये हमें अपने सभी प्रयासों को इसी दिशा में केंद्रित करने की आवश्यकता है।

चरण 1 : व्यक्तिगत संक्रमण का चरण

(Step 1: Steps for Individual Transformation)

नैतिकता में विकास हेतु व्यक्तिगत स्तर पर संक्रमण के लिये दीर्घकालिक प्रयासों की आवश्यकता है (चित्र. 16-2. देखें)। मूल रूप में जिसका आशय, जीने के सभी चार स्तरों में अर्थात् मानव, परिवार, समाज और प्रकृति/ अस्तित्व में निहित अस्तित्व सहज व्यवस्था को समझना और तदनुसार व्यवस्था में जीना है। इसमें तीन महत्वपूर्ण उप-चरण सम्मिलित हैं।

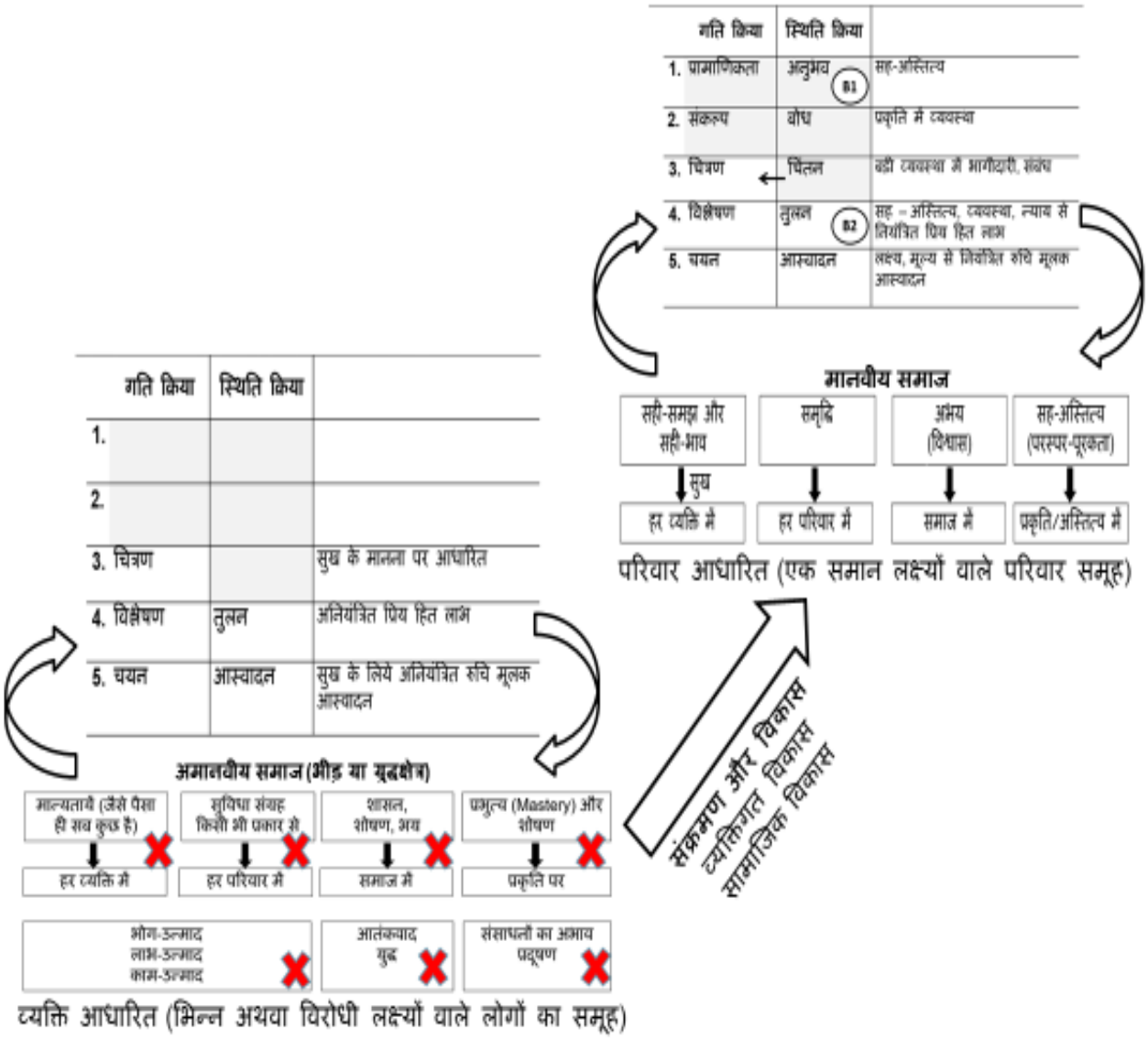

चित्र. 16.2 व्यक्तिगत संक्रमण और सामाजिक संक्रमण

ये तीन उप-चरण हैं:

1.1 प्रस्तावों (विशेष रूप से अध्याय 5 से 11 में दिये गये) को अपने अधिकार पर जाँचना अर्थात् अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर जाँच कर उनका स्व-सत्यापन करना। जिसका परिणाम स्वयं में सही समझ (व्यवस्था की समझ), सही-भाव (व्यवस्था का भाव) एवं सही-विचार (इसका विचार कि किस प्रकार व्यवस्था में जीना हो) के रूप में है। इसके बाद हमारा व्यवहार, कार्य एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी इसी व्यवस्था को समझने के आधार पर होगी।

1.2 स्वयं के प्रति सजगता; स्वयं में अपनी कल्पनशीलता (इच्छा, विचार एवं आशा) के प्रति हर-क्षण सजग रहना। इस सजगता के साथ, आप अपनी कल्पनाशीलता की विषय-वस्तु अर्थात् उन सभी संचित स्वीकृतियों को देख सकेंगे जो कि आपके संस्कार के रूप में आपमें है (संस्कार =

अभी तक की संचित इच्छा, विचार और आशा पर आधारित स्वीकृतियाँ; इसके लिये अध्याय-6 का संदर्भ लें)। ये स्वीकृतियाँ बहुत लंबे समय से आपके स्वयं में संग्रहित हो रही हैं, यहाँ तक कि ये संस्कार आपकी सजगता के बिना भी आप में संग्रहित होते रहते हैं।

1.3 अपनी कल्पनाशीलता अर्थात् अपने संस्कार के प्रति सजगता के साथ अब तीसरा चरण स्व-मूल्यांकन है अर्थात् अपनी सहज-स्वीकृति के आधार पर अपने संस्कारों का मूल्यांकन। जब आप पहले दो चरणों का स्वयं में अभ्यास करने में सहज महसूस करने लगें तभी इस तीसरे चरण को आरम्भ करें इसके पूर्व शुरू करना उचित नहीं होगा। प्रत्येक कल्पना के पीछे की मूल इच्छा को पहचानिये। यह इच्छा, भाव या लक्ष्य के रूप में होती है। जाँच कीजिये कि क्या यह भाव आपको सहज-स्वीकार्य है या नहीं, यह लक्ष्य आपकी सहज-स्वीकृति अर्थात् मानवीय मूल्यों के अनुरूप है या नहीं। यदि यह इनके अनुरूप है तो यह संस्कार हमें संगीत या व्यवस्था की ओर ले जाते हैं और इससे स्वयं में सुख होता है अन्यथा यह हमें अंतर्विरोध और अव्यवस्था की ओर ले जाते हैं, जिससे स्वयं में दुख होता है। स्व-मूल्यांकन आप के संस्कारों को सही करने में सहायता करता है; इस प्रक्रिया में जो संस्कार आपकी सहज-स्वीकृति के अनुरूप हैं वे सुदृढ़ होते जाते हैं और जो अनुरूप नहीं है वे कमजोर होते जाते हैं और अंततः समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार से आपके नये संस्कार पुराने संस्कारों की तुलना में आपकी सहज-स्वीकृति के साथ और अधिक संगीत में हो पाते हैं।

याद कीजिये कि [संस्कार (t) + वातावरण (t) + अध्ययन (t) = (संस्कार (t + 1)]

निःसंदेह, इन उप-चरणों में लम्बा समय लग सकता है, लेकिन एक-एक प्रस्ताव को जब आप स्वयं में जाँचने और स्व-सत्यापित करने एवं उसे अपने जीने में लाने में सक्षम होंगे तो उसी क्षण वह आपके लिये और आपके आस-पास के लोगों के लिये तृप्ति को सुनिश्चित करेगा। अर्थात् एक-एक संस्कार को जब आप स्व-मूल्यांकन करके सही के अर्थ में करने में सक्षम होंगे, तो वे आप के लिये और दूसरों के लिये उसी क्षण तृप्ति दायक सिद्ध होंगे। उदाहरण के लिये, जिस क्षण आप अपनी चाहना और योग्यता को अलग-अलग देख पायेंगे; उसी क्षण आपको चाहना पर विश्वास करना सहज हो जायेगा; जिससे उसी क्षण आपके स्वयं(मैं) में संगीत सुनिश्चित हो पायेगा और यह सहज रूप से आपके व्यवहार में आने लगेगा। निःसंदेह, विरोध के भाव के आधार पर किये गये पिछले व्यवहारों पर आधारित स्वीकृतियों का संग्रह, आपके संस्कार में शेष बना रह सकता है। और ये संस्कार अनुकूल समय आने पर फिर से सक्रिय हो सकते हैं, इसलिये अपने संग्रहित संस्कारों का स्व-मूल्यांकन करते रहना आवश्यक है। एक बार जब आप ऐसा करना शुरू कर देंगे तो आपका व्यवहार और अधिक सहज एवं परस्पर-पूरक हो जायेगा।

व्यक्तिगत स्तर पर इस तैयारी के साथ अब हम सामाजिक संक्रमण के बारे में बात कर सकते हैं। मानव के व्यक्तिगत संक्रमण के प्रयास अलग-अलग स्तरों पर सफल होते हैं। लगभग सभी स्तरों पर आने वाले परिणाम काफी उत्साहवर्धक रहते हैं। अब यहाँ पर जिस सामाजिक संक्रमण की बात कर रहे हैं वह मानव में हुये व्यक्तिगत संक्रमण का ही सामूहिक परिणाम है। इस दिशा में अधिकांश प्रयास होने अभी भी शेष हैं। हम आपको, व्यक्तिगत स्तर पर पहले कुछ कदम उठाने के लिये प्रस्तावित कर रहे हैं, आप अपनी योग्यता के आधार पर इन संभावनाओं को साकार करने के लिये प्रयास करें। उदाहरण के लिये आप स्वयं में संगीत के फैलाव के लिये चरण-बद्ध तरीके से अपने परिवार, पड़ोस, संस्थान इत्यादि को अपने प्रयासों में धीरे-धीरे शामिल कर सकते हैं।

चरण 2 : समग्रात्मक विकास के लिये जन जागरूकता

(Step 2: Creating Mass Awareness towards Holistic Development)

सही समझ और सही-भाव के आधार पर मूल्य शिक्षा की इस विषय वस्तु को अन्य लोगों के साथ साझा करने की स्वयं में इच्छा और योग्यता भी विकसित हो पाती है। ऐसा स्वाभाविक ही है जिसे आप स्वयं में भी देख सकते हैं। जैसे यदि आप अपने लिये कुछ उपयोगी पाते है तो आप इसे स्वाभाविक रूप से दूसरों के साथ साझा करना ही चाहते हैं! अतः साझा करना तार्किक रूप से अगला कदम है। वास्तव में अब आप अन्य लोगों में सही-समझ, सही-भाव और सही-विचार सुनिश्चित करने में सहायता कर रहे हैं।

इस चरण में दूसरे में स्व-अन्वेषण की प्रक्रिया को सुगम बनाने की दृष्टि से संवाद और चर्चा करते हैं। यह अनौपचारिक वार्ता के रूप में या औपचारिक कार्यशालाओं के रूप में हो सकता है। जिन व्यक्तियों के साथ यह साझा करना है उनमें निम्नलिखित लोग सम्मिलित हो सकते हैं:

- **परिवार के सदस्य एवं मित्र:** इससे परिवार में व्यवस्था सुनिश्चित होगी जिससे कि आप बड़ी व्यवस्था में और अधिक स्वतंत्रता के साथ भागीदारी कर पायेंगे। परिवार के सदस्य एवं मित्र भी समय, प्रयास एवं संसाधनों के रूप में अपना योगदान दे सकेंगे।
- **अर्थपूर्ण सामाजिक विकास हेतु प्रयास करने की तत्परता और रुचि रखने वाले लोग:** समाज में ऐसे अनेक लोग हैं जो समाज के शुभ के लिये प्रयासरत हैं। उनसे यह विषय वस्तु साझा करना उनकी दृष्टि के विस्तार में सहायक हो पायेगा; जिससे वे जो प्रयास कर रहे हैं उसे और अधिक प्रभावी ढंग से करने में सक्षम हो पायेंगे।
- **शिक्षाविद, अध्यापक एवं शैक्षणिक प्रशासक:** एक बार जब ये लोग इस विषय वस्तु की उपयोगिता और संभावनाओं को देख पायेंगे तो वे शिक्षा में मानवीय मूल्यों को लागू करने के लिये खुद को तैयार कर पायेंगे; एवं वे शिक्षा की विषय-वस्तु और इसकी प्रक्रिया को मानवीय बनाने में अधिक जिम्मेदारी से प्रयास करने में सक्षम हो पायेंगे।
- **प्रशासन से जुड़े व्यक्ति :** इस विषय वस्तु को नीति के स्तर पर समाविष्ट करवा पायेंगे।
- **कार्य स्थल पर आपके साथी:** ये लोग आपके कार्य स्थल पर सीखने की गतिविधियों का हिस्सा हो पायेंगे।

आरंभ करने के लिये, यह महत्वपूर्ण है कि इसे उन्हीं लोगों के साथ साझा किया जाये जो आपसे सुनने, समझने को पहले से ही इच्छुक हैं। यदि आप स्वयं पर पर्याप्त कार्य किये बिना ही इस कदम को उठाते हैं, तो दूसरे लोग आपको एक उपदेशक के रूप में मानने लगते है और आपकी बातों को प्रभावी तरह से स्वीकार नहीं कर पाते।

चरण 3 : मुख्य धारा की शिक्षा के मानवीयकरण की ओर गति

(Step 3: Moving towards Humanising the Mainstream Education)

जैसे-जैसे लोगों में जागरूकता बढ़ती है, उनके लिये उत्तरोत्तर मानवीय शिक्षा की तरफ बढ़ने का लक्ष्य प्रमुख होता जाता है जिसमें निम्नलिखित उप-चरण समाहित हैं:

3.1 स्कूल से लेकर उच्च-शिक्षा तक के वर्तमान पाठ्यक्रम में विभिन्न स्तरों पर मूल्य शिक्षा की उपयुक्त विषय-वस्तु सम्मिलित करना। यह प्रक्रिया सहज रूप से "सार्वभौमिक मूल्य शिक्षा का आधारभूत पाठ्यक्रम" के परिचय से प्रारंभ होती है जैसा कि हमने इस पुस्तक में प्रस्तावित किया है। इसे और प्रभावी बनाने के लिये निम्नलिखित वैकल्पिक पाठ्यक्रमों को भी धीरे-धीरे शुरू कर सकते हैं:

- मानव के बारे समझ
- सह-अस्तित्व रुपी अस्तित्व की समझ
- मानवीय संबंध, मूल्य और मानवीयता-पूर्ण आचरण
- सार्वभौम मानवीय व्यवस्था
- समग्रात्मक-विकास के लिये प्रौद्योगिकियां और प्रणालियाँ
- संबंध आधारित प्रबंधन

उपरोक्त के साथ-साथ इनसे जुड़े हुये सोशल-प्रोजेक्ट एवं सोशल-इंटर्नशिप को भी शुरू किया जा सकता है।

3.2 उपरोक्त प्रयासों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिये अधिकारिक एजेंसियाँ जैसे MHRD, UGC, AICTE, ICMR, एकेडमिक काउंसिल ऑफ़ यूनिवर्सिटी, स्कूल एजुकेशन बोर्ड इत्यादि सहायक होंगे।

3.3 इसके अलावा, बड़े पैमाने पर उपरोक्त सुझावों को लागू करने के लिये फैकल्टी डेवलपमेंट प्रोग्रामों को एवं विषय-वस्तु से सम्बन्धित संसाधनों को विकसित करना आवश्यक होगा। इसको साकार करने के लिये क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर मानवीय मूल्य संसाधन केंद्रों की स्थापना की जा सकती है।

3.4 अगला उप-कदम मुख्य-धारा की सम्पूर्ण शिक्षा को ही मानवीय अर्थात् मूल्य आधारित करने की दिशा में समर्पित अनुसंधान एवं विकास कार्यों को पर्याप्त बल प्रदान करना होगा। जो कि एक लम्बी प्रक्रिया है परंतु अति-आवश्यक है।

चरण 4: सामुदायिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं में समग्रता जीने के मॉडल को विकसित करना

(Step 4: Developing Models for Holistic Living in Educational Institutions and in the Community)

इसके साथ ही शिक्षण संस्थानों को, स्वैच्छिक संगठनों और सरकारी एजेंसियों के सहयोग से स्थानीय विकास कार्यक्रमों से जोड़ना जरूरी होगा। तदनुसार, उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसंधान एवं शोध के प्रयासों को समग्र-विकास के विभिन्न पहलुओं की ओर स्थानांतरित करने की आवश्यकता होगी, जिसके परिणामस्वरूप सार्वभौम मानवीय व्यवस्था में सहयोग करने के लिये वास्तविक जीने के मॉडल का विकास होगा।

क्या यह संक्रमण बहुत कठिन है?

(Is the Transition too Difficult?)

जब भी समग्रात्मक-शिक्षा की दृष्टि पर चर्चा की जाती है, तब इस तरीके की आशंकायें व्यक्त की जाती हैं कि वर्तमान में चल रहे प्रयास तो अलग दिशा में हैं जो दुनिया भर में गहराई से आरोपित भी हैं, ऐसे में क्या इस प्रस्तावित परिवर्तन को ला पाना संभव है, यह तो आदर्शवादी प्रतीत होता है। वास्तव में यह हम सभी के लिये एक गंभीर अध्ययन का मुद्दा है। यहाँ पर हम केवल यही

बताना चाहते हैं कि अभी तक मानव ने वह सब प्राप्त किया जो उसके विचार में उसे सही लगा। यदि हमको यह स्पष्ट हो जाता है कि, हमारी वैश्विक-दृष्टि में ही त्रुटि है तो हमें अपनी इस वैश्विक-दृष्टि को वास्तविकता के अर्थ में सुनिश्चित करने और इसके अनुरूप जीने का प्रयास करने से कोई भी रोक नहीं सकता है। हमें धीरे-धीरे धैर्यपूर्वक आगे बढ़ना है, क्योंकि मानवता को इस गंभीर त्रासदी से बचाने के लिये यह संक्रमण अपरिहार्य है।

सारांश

(Concluding Remarks)

इस पुस्तक को समाप्त करने से पहले, आइये देखें कि क्या हमें निम्नलिखित प्रस्तावों के बारे में पर्याप्त स्पष्टता हो पायी है:

निरंतर सुख और समृद्धि सर्व मानव हेतु सुनिश्चित करने के लिये मानव का मानव-चेतना में और वर्तमान समाज का मानवीय समाज में संक्रमण अति-आवश्यक है।

सही समझ पर केंद्रित मानवीय शिक्षा को बड़े पैमाने पर लागू करने के लिये निष्ठापूर्वक प्रयास करने की आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा में मूल्य शिक्षा का उचित पाठ्यक्रम लागू करके इसका आरम्भ किया जा सकता है। इस कार्य की आवश्यकता को ठीक से समझना होगा एवं इसकी आवश्यकता के अनुरूप प्रयास भी करना होगा। व्यक्तिगत स्तर पर मानव-चेतना में विकास को प्राथमिकता देनी होगी। इसके अलावा समग्रात्मक-विकास के लिये उचित मॉडलों, उचित नीतियों, कार्यक्रमों एवं प्रणालियाँ को विकसित करने की दिशा में भी प्रयास करना होगा।

हम सभी के लिये इस संभावित संक्रमण को सुनिश्चित करने में सक्रिय भागीदारी करने का यह एक बड़ा अवसर है!

परिशिष्ट A12-1: सार्वभौम मानव मूल्य

Appendix A12-1: Universal Human Values

मानव का मूल्य उसकी बड़ी व्यवस्था में भागीदारी है, अर्थात् अस्तित्व समग्र की प्रत्येक इकाई के साथ मानव की भागीदारी। यह भागीदारी प्रकृति सहज है अर्थात् इनके निर्वाह के लिये हमें कोई बल नहीं लगाना पड़ता। मानव इस भागीदारी को पूरी करने की प्रक्रिया में स्वयं भी सुखी होता है, और दूसरों को भी सुखी करता है, इसलिये इन मूल्यों के साथ जीना परस्पर-पूरक हो पाता है।

कुल मिलाकर, हम इन मूल्यों को अपने अंदर प्रेम के भाव के रूप में देख सकते हैं (अस्तित्व में सह-अस्तित्व के अनुभव के आधार पर)। प्रेम के इसी भाव की अभिव्यक्ति दूसरे मानव के साथ और शेष प्रकृति/ अस्तित्व की अन्य इकाइयों के साथ परस्पर-पूरकता के रूप में हो पाती है। बाहर हो रही इसी अभिव्यक्ति को करुणा कहा है। अतः प्रेम पूर्ण मूल्य है जो करुणा के रूप में व्यक्त होता है।

इसे विभिन्न स्तरों पर निम्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है:

'स्वयं(मैं)' और शरीर के संबंध में मानव मूल्य

Human Values pertaining to the Self and the Body)

मानव 'स्वयं' (चैतन्य) और 'शरीर' (जड़) का सह-अस्तित्व है। 'स्वयं' (चैतन्य) निरंतर क्रियाशील है। मेरी 'स्वयं' के अर्थ में भागीदारी (मूल्य) श्रेष्ठता के लिये प्रयास करना है, अर्थात् मानव के जीने के सभी स्तरों की व्यवस्था को समझना और व्यवस्था में जीना है।

'स्वयं' के लिये मेरी भागीदारी (मूल्य), 'स्वयं' की व्यवस्था को सुनिश्चित करने के अर्थ में निम्न प्रकार से की जा सकती है:

- 'स्वयं(मैं)' में सही समझ और सही-भाव सुनिश्चित करना। इसका अर्थ है संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व की समझ और भाव को 'स्वयं' में सुनिश्चित करना। अंततः यही सही समझ और सही-भाव मेरी कल्पनाशीलता के लिये मार्गदर्शक बन पाते हैं।
- यह सुनिश्चित करना कि मेरी कल्पनाशीलता सही समझ और सही-भाव से निर्देशित हो रही है जो कि मेरी सहज स्वीकृति पर आधारित हो। इस प्रकार यदि कल्पनाशीलता अन्य स्रोतों से जैसे मान्यता या संवेदना से प्रेरित हो रही है तो, इसका सही मूल्यांकन किया जा सकता है। अपने संस्कारों का मूल्यांकन तब तक करते रहना आवश्यक है, जब तक कि आपके सभी संस्कार आपकी सहज स्वीकृति के अनुरूप न हो जायें।

उपरोक्त दोनों को सुनिश्चित करने से, 'स्वयं' में व्यवस्था हो पाती है; अर्थात् "जैसा मैं हूँ" और "जैसा होना मुझे सहज-स्वीकार्य है" के बीच संगीत हो पाता है। जिससे 'स्वयं(मैं)' में निरंतर सुख सुनिश्चित हो पाता है। 'स्वयं' के अर्थ में यही मेरी भागीदारी (मूल्य) है।

जिसे मूल्यों के रूप में सुख, शांति, संतोष और आनंद कहा गया है।

शरीर के लिये मेरी भागीदारी (मूल्य); शरीर की व्यवस्था सुनिश्चित करने के अर्थ में निम्न प्रकार से सुनिश्चित की जा सकती है:

- 'स्वयं(मैं)' में संयम का भाव सुनिश्चित करना
- शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग को सुनिश्चित करना

• उपरोक्त के लिये आवश्यकता से अधिक सुविधा का उत्पादन या उपलब्धता

सुनिश्चित करना

इन तीनों को सुनिश्चित करने से, शरीर में व्यवस्था बनी रहती है। यह मेरे शरीर के अर्थ में मेरी भागीदारी (मूल्य) है।

जिसे मूल्य (भाव) के रूप में 'संयम' कहा गया है।

परिवार से संबंधित मानव मूल्य

(Human Values pertaining to the Family)

परिवार में, महत्वपूर्ण मुद्दा भावों का है। ये भाव एक स्वयं में दूसरे के स्वयं के लिये होते हैं।

मेरे परिवार के अर्थ में मेरी भागीदारी (मूल्य); परिवार में व्यवस्था सुनिश्चित करने, उभय-सुख सुनिश्चित करने, न्याय सुनिश्चित करने के अर्थ में है; इसके लिये निम्न प्रकार से प्रयास किया जा सकता है:

- अपने आप में सही भावों (विश्वास, सम्मान, स्नेह, ममता, वात्सल्य, श्रद्धा, गौरव, कृतज्ञता और प्रेम) को सुनिश्चित करना जिससे स्वयं में सुख होता है।
- इन भावों को दूसरे के साथ व्यक्त करना (साझा करना) और जब दूसरा इन भावों का सही मूल्यांकन करने में सक्षम होता है तो वह भी सुखी होता है, जिससे उभय सुख सुनिश्चित हो पाता है। परिवार के अर्थ में यही मेरी भागीदारी है, जिससे मेरे स्वयं के साथ-साथ दूसरे के 'स्वयं(मैं)' का भी विकास होता है।

परिवार में इस तैयारी के साथ हम बड़े समाज अर्थात् पास-पड़ोस में, समुदाय में और अधिक सार्थक रूप से भागीदारी करने के योग्य हो पाते हैं। जब 'स्वयं' पूर्णता के अर्थ में संबंध को पहचानने और स्वीकार करने के योग्य हो पाता है तब 'स्वयं' यह भी देख पाता है कि सभी मानव परिवार के सदस्य के रूप में ही हैं। सभी के साथ संबंध की स्वीकृति के इस भाव को ही प्रेम का भाव कहा जाता है, जो करुणा के रूप में अभिव्यक्त होता है। हमारे परिवार में यही हमारी भागीदारी (मूल्य) है।

नीचे दी गई तालिका में, 'स्वयं' में सही-भावों को 'स्थापित मूल्य' कहा गया है और इनकी अभिव्यक्ति को 'शिष्ट मूल्य' कहा गया है। इन शिष्ट मूल्यों के अभिव्यक्त होने के कुछ संकेतकों को भी इस तालिका में शामिल किया गया है।

स्थापित मूल्य	शिष्ट मूल्य	संकेतक

विश्वास	सौजन्यता	यह देख पाने की योग्यता कि दूसरे की चाहना (सहज स्वीकृति)भी उभय सुख के अर्थ में ही है अर्थात् सह-अस्तित्व के अर्थ में ही है। स्पष्ट रूप से स्वयं के लिये और दूसरे के लिये चाहना और योग्यता को अलग-अलग देख पाते हैं। अतः दोनों की चाहने पर विश्वास होने के साथ ही दोनों की योग्यता का मूल्यांकन कर एक दूसरे के विकास के अर्थ में कार्यक्रम बना पाते हैं। यदि दूसरे की योग्यता में कमी होती है तो उस पर झल्लाते नहीं हैं या गुस्सा नहीं करते बल्कि परस्पर विकास के लिये प्रयास कर पाते हैं।
सम्मान	सौहार्द्र	दूसरे का सही मूल्यांकन करने के योग्य हो पाते हैं; दूसरे भी मेरे जैसे हैं यह देख पाने के योग्य हो पाते हैं। साथ ही दोनों की योग्यता के सही मूल्यांकन के आधार पर एक दूसरे के साथ अपनी परस्पर-पूरकता को पहचान पाते हैं और इसका स्वयं की तरफ से निर्वाह करने के लिये तत्पर हो पाते हैं।
स्नेह	निष्ठा	दूसरे को अपना संबंधी स्वीकार पाते हैं और संबंधों के निर्वाह के अर्थ में स्वप्रेरित हो पाते हैं।
ममता	उदारता	संबंधों के निर्वाह के अर्थ में अपने संबंधी के शरीर के पोषण और संरक्षण के लिये तत्पर हो पाते हैं।
वात्सल्य	सहजता	संबंधों के निर्वाह के अर्थ में निष्ठापूर्वक, दूसरे के स्वयं के लिये मानवीय शिक्षा-संस्कार सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी स्वीकार पाते हैं; दूसरे के विकास के लिये अनुकूल वातावरण प्रदान करने को तत्पर हो पाते हैं; प्रतिकूल वातावरण में सुरक्षा प्रदान करने की तत्परता भी हो पाती है।
श्रद्धा	पूज्यता	दूसरे में श्रेष्ठता को देखने के योग्य हो पाते हैं। उत्साहपूर्वक स्वयं के विकास के अर्थ में श्रद्धेय से मिलने वाली प्रेरणा को स्वीकार पाते हैं।
गौरव	सरलता	श्रेष्ठता के अर्थ में किये गये दूसरों के प्रयासों की सराहना कर पाते हैं, दूसरों से प्रेरणा ले पाते हैं। अहंकार का अभाव अर्थात् स्वयं के अधिमूल्यन से मुक्त हो पाते हैं।
कृतज्ञता	सौम्यता	व्यवहार में शिष्टता; दूसरे के द्वारा स्वयं के विकास के अर्थ में किये गये प्रयास को निरंतरता में स्वीकारना अर्थात् सही-समझ, सही-भाव के साथ-साथ प्रदान की गई सुविधा के लिये निरंतर स्वीकृति का भाव हो पाता है।

प्रेम	अनन्यता	सभी के साथ सह-अस्तित्व में जीने की स्वीकृति हो पाती है (मानव और समग्र अस्तित्व में प्रत्येक इकाई के साथ)। सभी के साथ संबंध देख पाते हैं और संबंधों के निर्वाह के अर्थ में स्वयं को, शरीर को और सुविधाओं को अर्पित करने की निष्ठा हो पाती है।

समाज से संबंधित मानव मूल्य

Human Values pertaining to the Society

समाज, एक साथ रहने वाले परिवारों का समूह है, जो कि एक ही मानव लक्ष्य के लिये प्रयास रत है।

समाज में मेरी भागीदारी (मूल्य), समाज के बारे में स्पष्टता विकसित करना एवं समाज के लक्ष्य, कार्यक्रम और उससे संबंधित आयामों को विकसित करने के साथ-साथ परिवार-व्यवस्था में और फिर बड़ी समाज-व्यवस्था में भूमिका का निर्वहन करना है।

परिवार-व्यवस्था में, और फिर समाज-व्यवस्था में मेरी भागीदारी (मूल्य) निम्नलिखित हैं:

- परिवार के प्रत्येक सदस्य, विशेष रूप से अगली पीढ़ी के 'स्वयं(मैं)' में सही समझ और सही-भाव के विकास में सहयोग करके परिवार में सुख सुनिश्चित करना।
- परिवार के प्रत्येक सदस्य के शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग के माध्यम से परिवार में स्वास्थ्य सुनिश्चित करना।
- परिवार की सुविधा की आवश्यकता को पहचानने में एवं इसके उत्पादन, संरक्षण और सदुपयोग करने में सहयोग करके परिवार में समृद्धि सुनिश्चित करना।
- मानवीय व्यवस्था के एक या एक से अधिक आयामों में परिवार के एक या एक से अधिक सदस्यों को बड़े समाज में भागीदारी करने के अर्थ में सहयोग करना।

बड़े समाज में, मेरी भागीदारी (मूल्य) है:

- मानवीय-व्यवस्था के एक या एक से अधिक आयामों (शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम, उत्पादन-कार्य, न्याय-सुरक्षा और विनिमय-कोष) में अपनी भूमिका का निर्वहन करना

इस प्रकार, समाज के प्रत्येक व्यक्ति में सुख, हर परिवार में समृद्धि, समाज में अभय (विश्वास) और प्रकृति/ अस्तित्व में सह-अस्तित्व (परस्पर-पूरकता) सुनिश्चित हो पाती है। समाज के अर्थ में यही मेरी भागीदारी (मूल्य) है।

समाज में मेरी यह भागीदारी (मूल्य) धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा और करुणा के रूप में अभिव्यक्त होती है।

धीरता	धैर्य पूर्वक व्यवस्था को समझने और व्यवस्था में जीने के लिये निष्ठा (जीने के सभी स्तरों पर)

वीरता	धैर्य पूर्वक व्यवस्था में जीते हुये दूसरों को भी व्यवस्था पूर्वक जीने में सहयोग करने की निष्ठा (जीने के सभी स्तरों पर)
उदारता	व्यवस्था को समझने और जीने के अर्थ में अपने मन, तन, धन को अर्पित करने की निष्ठा (जीने के सभी स्तरों पर)
दया	व्यवस्था पूर्वक जीने के लिये पात्रता(योग्यता) तो है, पर वस्तु नहीं है, उसे वस्तु उपलब्ध करा देना
कृपा	व्यवस्था पूर्वक जीने के लिये आवश्यक वस्तु तो है पर पात्रता (योग्यता) नहीं है उसमें पात्रता को विकसित करने में सहयोग करना
करुणा	व्यवस्था पूर्वक जीने के लिये न तो आवश्यक पात्रता (योग्यता) है, न ही आवश्यक वस्तु, उसके विकास के अर्थ में बिना किसी शर्त पात्रता और वस्तु दोनों ही उपलब्ध कराने की तत्परता

प्रकृति से संबंधित मानव मूल्य

Human Values pertaining to Nature

प्रकृति इकाइयों का समूह है। इन्हें चार अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है, जिससे कि प्रत्येक इकाई की क्रिया, प्रकृति सहज धारणा(व्यवस्था), स्वभाव (व्यवस्था में भागीदारी) और अनुषंगीयता अनुसंगीयता अनुषंगियता को समझा जा सके। यह वर्गीकरण इकाइयों के साथ हमारी भागीदारी को पहचानने के अर्थ में हमें बुनियादी दिशा निर्देश प्रदान करती है। इस प्रकार, प्रकृति की किसी भी इकाई के साथ निर्वाह करते समय, हमारी भागीदारी (मूल्य) इनके साथ परस्पर-पूरकता के संबंध को सुनिश्चित करना है। हम इनके स्वभाव के अनुसार इनका सदुपयोग करते हुये इनके साथ परस्पर-पूरकता सुनिश्चित कर सकते हैं, जिससे कि वे अपनी प्रकृति सहज धारणा (व्यवस्था) और अनुषंगियता की निरंतरता को बनाये रख सकें।

इसलिये, शेष-प्रकृति के साथ निर्वाह करते समय, हमें इनका सदुपयोग, संरक्षण और संवर्धन सुनिश्चित करना होगा। जिसके परिणाम स्वरूप मानव में समृद्धि और शेष-प्रकृति की सुरक्षा (संरक्षण और संवर्धन) सुनिश्चित हो पाये। मानव द्वारा प्रदत्त उपयोगिता मूल्य और कला-मूल्य से भौतिक-सुविधाओं को इनके सदुपयोग के अनुकूल बना सकते हैं, अतः शेष-प्रकृति के संबंध में मानव की दो भागीदारी हैं- उपयोगिता मूल्य और कला मूल्य।

पहली तीन अवस्थायें तो स्वतः ही इस परस्पर पूरकता के संबंध का निर्वाह कर ही रही हैं। अतः हमारी भागीदारी का पहला भाग यह है कि हमें अपने स्वभाव (व्यवस्था में भागीदारी) के अनुसार जीने की योग्यता को विकसित करना है और यह तभी विकसित हो सकती है, जब हम मानवीय शिक्षा-संस्कार के माध्यम से स्वयं में व्यवस्था (अपनी सहज स्वीकृति के अनुसार) को सुनिश्चित कर सकें। इसी प्रकार, हम शेष-प्रकृति के साथ इस परस्पर-पूरकता रुपी अपनी भागीदारी के दूसरे भाग को भी सुनिश्चित कर सकते हैं – प्रकृति के साथ हमारी यही भागीदारी (मूल्य) है।

अस्तित्व से संबंधित मानव मूल्य

(Human Values pertaining to Existence)

जो कुछ भी है, वह अस्तित्व है। यह व्यापक में सम्पृक्त इकाइयों के रूप में है। इकाइयों के समूह को प्रकृति कहा जाता है, अतः हम अस्तित्व को शून्य में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में समझ सकते हैं। प्रकृति में मेरी भागीदारी (मूल्य) पहले ही परिभाषित की जा चुकी; इसलिये अब सिर्फ यह अनुभव करना शेष है कि 'अस्तित्व, सह-अस्तित्व है' और प्रकृति, शून्य में सम्पृक्त है। प्रत्येक इकाई शून्य के सह-अस्तित्व में क्रियाशील है; शून्य के सह-अस्तित्व में स्व-व्यवस्थित है; शून्य के सह-अस्तित्व में दूसरी इकाइयों के साथ अपने संबंध को पहचानती है और निर्वाह करती है। अस्तित्व में यही मेरी भागीदारी (मूल्य) है- सह-अस्तित्व का अनुभव (समझ) करना (और सह-अस्तित्व में जीना)।

शब्दकोष

(Glossary)

शब्द (वास्तविकता की ओर संकेत(	अर्थ (वास्तविकता का संक्षिप्त विवरण(
क्रिया	समय के साथ किसी इकाई में होने वाला परिवर्तन। 1) इकाइयाँ शून्य में ऊर्जित हैं, स्व-व्यवस्थित हैं और क्रियाशील हैं (अपने स्वभाव के अनुसार दूसरी इकाइयों के साथ संबंध का निर्वाह कर रही हैं)। 2) क्रियायें- भौतिक क्रिया, रासायनिक क्रिया और चैतन्य क्रिया के रूप में हो सकती हैं।
क्रियापूर्णता	'स्वयं(मैं)' की वह स्थिति, जिसमें 'स्वयं(मैं)'अपनी सारी क्रियाओं में जागृत होता है।
पशुचेतना-	वह व्यक्ति जो अपने आप को सिर्फ शरीर मानकरअपनी सभी आवश्यकताओं , को केवल भौतिक सुविधाओं से ही पूरा करने का प्रयास करता है (वह स्वयं में सही-समझ और संबंधों में सही-भाव के लिये प्रयास नहीं करता)।
मानना	स्वयं और दूसरों के प्रति स्वीकृति। इसकी दो संभावनायें हैं: • जानना के आधार पर मानना - स्वीकृति निश्चित होती है। मैं मानव
व्यवहार	एक मानव की दूसरे मानव के साथ परस्परता। यह परस्परता मुख्यतः भावों के आदानप्रदान के रूप में होती है।-
शरीर	) 'स्वयं'चैतन्य-इकाई(के सह-अस्तित्व में एक जड़-इकाई।
चरित्र	मानव द्वारा किया गया व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी।
सहअस्तित्व-	शून्य के संपृक्तता में परस्पर जुड़ी हुईअंतर्संबंधित इकाइयां। ,
आचरण	मानव का संपूर्ण जीनामानव का अपनी समझ और विचार के साथ व्यवहार ;, कार्य एवं बड़ी व्यवस्था में भागीदारी।
आचरण-पूर्णता	मानव का ऐसा आचरण जिसमें 'स्वयं(मैं)'अपनी सभी क्रियाओं (चिंतन बोध और अनुभव सहित में जागृति पूर्वक (व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी करता हो।

चैतन्यता	इकाइयाँ जिनमें जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह-करने की क्रियायें हैं। वर्तमान में मानव में मानने की क्रिया तो जागृत है किन्तु जानने की क्रिया जागृत हो भी सकती है और नहीं भी।
चेतना विकास	स्व') विकास-स्वयं ;(का विकास 'जानने के बिना सिर्फ मानने के आधार पर जीने के बजाय जानने और मानने के आधार पर जीने की उच्च क्षमता को
चक्रीय और परस्पर संवर्धन	एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें भाग लेने वाली सभी इकाइयाँ एक ,स्थिति से दूसरी स्थिति में परिवर्तित होती रहती हैंऔर इस प्रक्रिया में भाग लेने वाली सभी ; इकाइयों कासंवर्धन भी होता रहता है।
निश्चित मानवीय आचरण	मानवीय-चेतना पर आधारित आचरण। ऐसे आचरण में मानव का व्यवहार, कार्य और व्यवस्था में भागीदारी, संबंध, व्यवस्था और सह-अस्तित्व की समझ के आधार पर होती है; प्रत्येक मानव में इसके लिये सहज-स्वीकृति भी
दासता	यह निम्न में से किसी भी प्रकार की हो सकती है: a. शारीरिक विवशता के रूप में
परतंत्रता	दूसरे के द्वारा निर्देशित होना अथवा अपनी अंतर्विरोधी आशा, विचार या इच्छा के द्वारा निर्देशित होना
नैतिकता	निश्चित मानवीय आचरण की अभिव्यक्ति व्यवहार), कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारीके मूलभूत नियम/सिद्धांत ही नैतिकता है। (
नैतिक	नैतिकता के अनुरूप (ऊपर परिभाषित)।
नैतिक आचरण	नैतिकता के अनुरूप आचरण ऊपर)परिभाषित।(
नैतिक मानवीय आचरण	सही समझ, सही-भाव के साथ बड़ी व्यवस्था (बाहरी संसार) में-मानव की भागीदारी - जो कि नैतिकता (ऊपर परिभाषित) के अनुरूप हो।
अस्तित्व	जो कुछ भी है / जो कुछ भी होना है।
प्रयोगात्मकसत्यापन-	जीने में सत्यापन मानव के `साथ व्यवहार -में और शेषप्रकृति के साथ कार्य में।-
परिवार	एक दूसरे के लिये स्वीकृति का भाव रखने वाले व्यक्तियों का समूह, जो कि परस्परपूरकता के अर्थ में जीते हों।-

अभय	परस्परता में विश्वास और परस्पर-पूरकता।
निर्वाह	जो इकाई की निश्चित आवश्यकता को पूरा कर रहा हो।
सुख	व्यवस्था में होना।
संगीत	व्यवस्था सामंजस्य ,
स्वास्थ्य	(1) 'शरीर', 'स्वयं(मैं)' के अनुसार कार्य करता है। (2)शरीर' के अंग-प्रत्यंग में व्यवस्था बनी हुई है।'
मानव	'स्वयं(मैं)'और शरीर' का सह-अस्तित्व।'
मानव चेतना	मानव, जो अपने आप को 'स्वयं(मैं)'और 'शरीर' के सह-अस्तित्व के रूप में समझता हो; जो 'स्वयं(मैं)'की आवश्यकताओं को सही-समझ एवं सही-भाव से तथा 'शरीर' की आवश्यकताओं को सुविधाओं से पूरा करता हो। जो धीरता पूर्वक संबंधों में न्याय व्यवस्था ,और सह-अस्तित्व) परस्परपूरकता) - कानिर्वाह करता हो।
मानव लक्ष्य	सही) समझ और सही-भाव-सुख(, समृद्धि, अभय(विश्वास) , और सह अस्तित्व-)परस्पर-पूरकता।(
मानवीय मूल्य	अस्तित्व के सभी स्तरों पर मानव की स्वाभाविक भागीदारीधीरता -, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा।
मानवीय आचरण	मानव का अपने स्वभाव के अनुसार आचरण।
मानवीय समाज	एक ऐसा समाज जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी मानवलक्ष्य की पूर्ति हो पाये।-
मानवीय परंपरा	1. पीढ़ी दर पीढ़ी समग्र मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के साथ जीने वाले लोगों का समूह। 2. मानवीय आचरण, शिक्षा, संविधान और सार्वभौमिक मानवीय व्यवस्था और इनकी निरंतरता।
प्रकृति सहज धारणा	इकाई के होने की प्रकृति सहज व्यवस्था जो कि इकाई से अविभाज्य है।
अंतर्संयोजनात्मकता	साथसाथ होना और एक दूसरे से संबंधित होना।-
परस्परनिर्भरता-	परस्परता में एक दूसरे से जुड़े होना और एक दूसरे की-आवश्यकताओं की पूर्ति करना।

जानना	वास्तविकता जैसी है उसे सीधेसीधे वैसा ही देखना, उसकी संपूर्णता में देखना।-
ज्ञान	1. वास्तविकता की सही-समझ। वास्तविकता जैसी है उसे वैसा ही देखना, उसे संपूर्णता में देखना। 2. स्वयं का ज्ञान, अस्तित्व का ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण का ज्ञान।
बड़ी व्यवस्था	इकाई जिस व्यवस्था का भाग है वह व्यवस्था उस ,इकाई की बड़ी व्यवस्था है।
जड़	इकाइयाँ जिनमें सिर्फ पहचानना और निर्वाहकरना होता है- जिनमें जानने या) मानने की क्रिया नहीं होती है)। जिनकी आवश्यकतायें और क्रियायें सामयिक हैं।
परस्पर	साथ ,साथ-एक दूसरे के साथ।
परस्पर-पूरकता	एक इकाई का दूसरी इकाई के साथ संबंध में रहते हुये एक दूसरे ,की आवश्यकताओं की पूर्ति करना।
सहज स्वीकृति	स्वीकृति का सहज भावजो कि संबंध ,, व्यवस्था और सहअस्तित्व के अर्थ में हो।-
स्वभाव	किसी इकाई की बड़ी व्यवस्था में उसकी प्रकृति सहज भागीदारी।
प्रकृति	इकाइयों (जड़ और चैतन्य) का समूह।
भागीदारी	व्यवहार, कार्य या दूसरी इकाई के साथ किसी अन्य रूप में निर्वाह।
मान्यता	मानना जो कि अभी स्वसत्यापित नहीं हुआ है। मानना सही भी हो सकता है - और नहीं भी।
व्यवसाय	बड़ी व्यवस्था में भागीदारी जैसे उत्पादन, स्वास्थ्य, विनिमय इत्यादि व्यवस्थाओं में भागीदारी।
व्यावसायिक नैतिकता	निश्चित मानवीय आचरण के मूल सिद्धांतों की अभिव्यक्ति (व्यवहार कार्य और बड़ी व्यवस्था में भागीदारी(विशेष रूप से व्यवसाय के संबंध में जो भी हम करते हैं।

समृद्धि	आवश्यकता से अधिक भौतिक सुविधाओं के उपलब्ध होने का भाव या उत्पादन या कर पाने का भाव।
उद्देश्य	इकाई का स्वभाव।
वास्तविकता	जो भी है। वास्तविकतायें मूलतः तीन प्रकार की हैं – जड़, चैतन्य और शून्य
अनुभव	संपूर्ण वास्तविकता के सार को प्रत्यक्ष देखना। स्वयं में अस्तित्व को सहअस्तित्व - के रूप में देखना।
पहचानना	संबंध को देख पाना।
सही-भाव	सह-अस्तित्व, व्यवस्था और संबंध का भाव। विश्वास का भाव)आधार मूल्य(से लेकरप्रेम का भाव (पूर्ण मूल्य) तक]सभी नौ मूल्य।[
सही-समझ	जीने के चारों स्तरों पर व्यवस्था को समझनास्वयं से लेकर संपूर्ण-अस्तित्व - तक।
सदुपयोग	1. मानवीय लक्ष्य की पूर्ति के अर्थ में सुविधाओं का उपयोग। 2. मानवीय मूल्यों की पूर्ति के अर्थ में धन ('शरीर', 'स्वयं(मैं)' और सविधाओं) को अर्पित करने की क्रिया।
संस्कार	अभी तक की 'स्वयं(मैं)'में संग्रहित सभी इच्छा, विचार और आशा से प्राप्त स्वीकृतियां।
लक्ष्य	गंतव्य। जैसा हम होना चाहते हैं और जिसकी निरंतरता चाहते हैं हम सुखी होना चाहते हैं और सुख की निरंतरता चाहते हैं
'स्वयं(मैं)'	चैतन्य इकाई।
स्वान्वेषण	स्वयं में अध्ययन। अपनी सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में जाँच के उपरांत अपने व्यवहार और कार्य में प्रायोगिक सत्यापन।
स्वराज्य-	स्वयं में व्यवस्था का बाहरी संसार तक फैलाव।
स्व-व्यवस्थित	अपनी प्रकृति सहज धारणा के अनुसार होनाअर्थात् स्व-व्यवस्था में होना, ; निश्चित क्रम में होना, अपनेस्वभाव के अनुसार बड़ी व्यवस्था में भागीदारी
स्व-व्यवस्थित संगठन	किसी इकाई की आतंरिक स्व व्यवस्था या इकाई के होने का क्रम।-

संयम	1. शरीर के संदर्भ में - शरीर के पोषण, संरक्षण और सदुपयोग की जिम्मेदारी का भाव। 2. प्रकृति के संदर्भ में – चारों अवस्थाओं में नियमन।
स्वसत्यापन-	स्वयं के द्वारा अपनी ,सहज स्वीकृति के आधार पर स्वयं में सत्यापन के साथ-साथ संबंध, व्यवस्था और सहअस्तित्व के अर्थ में अपने जीने का प्रायोगिक -
संवेदना	शरीर के पाँचों संवेदी अंगों से मिलने वाली सूचना जिसे 'स्वयं(मैं)'पढ़ता है – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।
कौशल	प्रक्रियाओं को सीखना (तरीका या तकनीक) a. शेष-प्रकृति के साथ कार्य
समाज	परिवारों का ऐसा समूह जो एक दूसरे के साथ परस्पर पूरकता के अर्थ में जीते हों।
शून्य	एक सर्वव्यापी वास्तविकता, जिसमें प्रत्येक जड़ और चैतन्य इकाई सम्पृक्त है ,साम्य ऊर्जा है, पारदर्शी है।
सत्य	सार, जो नित्य वर्तमान है।
अखंड समाज	एक ऐसा समाज जिसके प्रत्येक व्यक्ति में दूसरे के लिये संबंध की स्वीकृति हो।
दुःख	अंतर्विरोध की स्थिति में जीने के लिये बाध्य होना।
सार्वभौम मानवीय व्यवस्था	एक ऐसा समाज जिसमें पीढ़ी दर पीढ़ी मानव लक्ष्य की पूर्ति होती हो।
मूल्य	किसी इकाई की बड़ी व्यवस्था में प्रकृति सहज भागीदारी।
विवेक	मानव लक्ष्य की स्पष्टता।
कार्य	मानव का शेष-प्रकृति पर किया गया श्रम जिसमें सुविधा का उत्पादन होता है।

संदर्भ

1. ए नागराज, 1999, जीवन विद्या एक परिचय, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
2. ए नागराज, 1999, व्यवहारवादीसमाजशास्त्र, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
3. ए नागराज, 2001, आवर्तनशील अर्थशास्त्र, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
4. ए नागराज, 2003, मानव व्यवहार दर्शन, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
5. ए नागराज, 2003, समाधानात्मकभौतिकवाद, जीवन विद्या प्रकाशन, अमरकंटक।
6. एन त्रिपाठी, 2003, मानव-मूल्य, न्यूऐजइंटरनेशनलप्रकाशक।
7. बीएलबाजपेई, 2004, इंडियन एथोस एंड मॉडर्नमैनेजमेंट, न्यू रॉयल क्लास नोट्सकं, लखनऊ। 2008पुनर्मुद्रण।
8. बी पी बनर्जी, 2005, फाउंडेशनऑफ़एथिक्सएंडमैनेजमेंट, एक्सेल बुक्स।
9. डीएचमीडोज, डेनिसएलमीडोज, जोर्गेनरैंडर्स, विलियमडब्ल्यूबेहरेंस॥, 1972, लिमिट्सटूग्रोथ - क्लब ऑफ रोम की रिपोर्ट, यूनिवर्स बुक्स।
10. ई एफशूमाकर, 1973, स्मॉलइजब्यूटीफुल: ए स्टडी ऑफ इकोनॉमिक्सऐजइफ पीपुलमैटरेड, ब्लॉन्ड एंड ब्रिग्स, ब्रिटेन।
11. ई जी सेबॉएर और रॉबर्टएल बेरी, 2000, फंडामेंटल ऑफ एथिक्स फॉर साइंटिस्ट्स एंड इंजीनियर्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. एफएओ, 2011, ग्लोबल फूड लॉसेस एंड फूड वेस्ट - एक्सटेंड, कॉज एंड प्रिवेंशन, आईएसबीएन978-92-5-107205-9, रोम।
13. एम फुकुओका, 1984, द वन-स्ट्रॉरिवोल्यूशन: एन इंट्रोडक्शनटूनेचुरलफार्मिंग, प्रकाशित (भारत में) फ्रेंड्सरूरल सेंटर, रसूलिया
14. इलिच, 1974, एनर्जी एंड इक्विटी, द ट्रिनिटी प्रेस, वॉर्सेस्टर, और हार्परकॉलिन्स, यूएसए।
15. भूटान के राजा जिग्मेखेसर, 2010, कोलकाता विश्वविद्यालय दीक्षांत समारोह में रॉयल एड्रेस, कोलकाता (5अक्टूबर, 2010)।
16. एम गोविंदराजन, एस नटराजन और वी। एस। सेंथिल कुमार, 2004, इंजीनियरिंग एथिक्स (मानव मूल्यों

सहित), पूर्वी अर्थव्यवस्था संस्करण, प्रेंटिसहॉल ऑफ इंडिया लि।

17. एम के गांधी, 1939, हिंद स्वराज, नवजीवनपब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद।

18. पी एल धर, आर गौड़, 1990, साइंसएंडहुमेनिज़्म, राष्ट्रमंडल प्रकाशक।

19. एस पालेकर, 2000, नेचुरलफार्मिंग का अभ्यास कैसे करें, प्रवीण (वैदिक) कृषि तंत्र शोध, अमरावती।

20. एस जॉर्ज, 1976, हाउ द अदरहाफडाइस, पेंगुइन प्रेस। 1986, 1991 को पुनः प्रकाशित किया गया।

प्रासंगिक वेबसाइट, सीडी और वृत्तचित्र

1. यूनिवर्सलह्यूमनवैल्यूज वेबसाइट, http://www.uhv.org.in/

2. AKTU वैल्यू एजुकेशन वेबसाइट, http://aktu.uhv.org.in/
3. स्टोरीऑफ़स्टफ, http://www.storyofstuff.com/
4. अलगोर, एन इनकनवीनिएंट ट्रुथ, 2006, पैरामाउंटक्लासिक्स, यूएसए
5. चार्लीचैपलिन, मॉडर्नटाइम्स, यूनाइटेड आर्टिस्ट्स, यूएसए
6. आईआईटी दिल्ली, मॉडर्नटेक्नोलॉजी - द अनटोल्डस्टोरी
7. आनंद गांधी, राइटहियरराइटनाउ, 2003, साइकिलवालाप्रोडक्शन
(नोट: इस पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिये एक शिक्षक-मैनुअल भी उपलब्ध है)

विद्यार्थियों को ऐसी तालीम दी जानी चाहिए जिससे वे संसार के महान धर्मों को आदर के साथ सीख सकें।

-महात्मा गांधी

राष्ट्र-गीत

वन्दे मातरम्

श्री बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय : आनन्दमठ

वन्दे मातरम्, वन्दे मातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्।
शस्य श्यामलाम् मातरम्। वन्दे मातरम्।।
शुभ्रज्योत्स्नाम् पुलकित यामिनीम्।
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्।।
सुहासिनीम् सुमधुरभाषिणीम्।
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। वन्दे मातरम्।।

भारत का संविधान

अध्याय IV A

मूल कर्तव्य

Article 51A

मूल कर्तव्य--भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह--

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्र्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले;

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।